ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २१

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री जोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

निरयावलिकासूत्र

[कप्पिया, कप्पवडिंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा]

□

सन्निधि

उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

□

आद्य संयोजक तथा प्रधान सम्पादक

(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

□

अनुवादक—सम्पादक

देवकुमार शास्त्री

□

प्रकाशक

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

❑ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुँवरजी 'अर्चना'

❑ सम्पादक मण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

❑ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

❑ द्वितीय संस्करण
वीरनिर्वाण संवत् २५२०
विक्रम संवत् २०५०
जनवरी, १९९४

❑ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति,
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१
फोन : ५००८७

❑ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

❑ मूल्य : ४३) रुपये

Published on the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

NIRAYĀVALIKĀ SŪTRA

[Kappiā, Kappavadinsiā, Pupphiā, Pupphachūliā, Vahnidasā]

Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi Rev. (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Deokumar Shastri

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 21

Direction
Mahasati Shri Umravkunwarji 'Archana'

Board of Editors
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Acharya Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

Promotor
Munishri Vinayakumar 'Bhima'

Second Edition
Vir-Nirvana Samvat 2520
Vikram Samvat 2050, Jan. 1994.

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
Pin—305 901
Phone : 50087

Printer
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

Price : Rs. 43/-

समर्पण

जो ज्ञान और चारित्र की समन्वित मूर्ति थे,
जिनका हृदय अलौकिक माधुर्य से ओतप्रोत था,
उन महान् मनीषी

पू. मुनिश्री मांगीलालजी म.सा.

की स्मृति में सविनय सादर समर्पित

— मन्त्री

द्वितीय संस्करण-प्रकाशन के अर्थ सहयोगी

१. श्री हरकचन्दजी बेताला, डेह, इन्दौर

श्री आगम-प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित निरयावलिका सूत्र के इस द्वितीय संस्करण के विशिष्ट अर्थ सहयोगी श्री हरकचन्दजी बेताला का जन्म वि. संवत् १९७० में नागौर (राजस्थान) जनपद के डेह ग्राम निवासी श्री सुगनचंदजी बेताला के यहाँ हुआ। आपकी मातुश्री का देहान्त आपकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। आपका लालन-पालन श्री अमोलकचन्दजी के दत्तक पुत्र के रूप में हुआ।

धर्मप्रेमी, उदार हृदय एवं सरल स्वभावी श्री हरकचन्दजी बचपन से ही अत्यन्त प्रतिभाशाली रहे हैं। लगभग १३ वर्ष की अल्पायु में ही आप अर्थोपार्जन के लिये आसाम चले गए थे। आपने वहां टंगला व गोहाटी में व्यापार-व्यवसाय प्रारम्भ किया तथा अपनी सहज प्रतिभा से निरन्तर प्रगति कर आगे बढ़ते गये। आपने व्यावसायिक क्षेत्र में अच्छी ख्याति अर्जित की।

वर्तमान में आपका स्थायी निवास इन्दौर में है। वहाँ के दाल-मिल उद्योगपतियों में आपका प्रमुख स्थान है। इन्दौर के अतिरिक्त दाहोद तथा कानपुर में भी आपकी दाल-मिलें हैं।

बाल्यकाल में शिक्षण के योग्य साधन न मिल पाने से आप स्वयं तो सामान्य स्कूली शिक्षा ही प्राप्त कर पाये किन्तु शिक्षा के प्रति विशिष्ट लगाव के कारण आपने अपने पुत्र-पौत्रादि के लिए उच्च लौकिक शिक्षण की व्यवस्था की। आपके पुत्र श्रीमान् सागरमलजी बेताला श्री आगम प्रकाशन समिति के अध्यक्ष हैं। एक पुत्र डॉक्टर हैं एवं एक चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट हैं।

अपने श्रम एवं बुद्धि-चातुर्य से उपार्जित धन का सामाजिक एव धार्मिक संस्थाओं के उन्नयन हेतु आप खुले दिल से उपयोग करते हैं। आप अ. भा. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेन्स द्वारा संचालित "जीवन-प्रकाशन-योजना" तथा महावीर स्वास्थ्य केन्द्र इन्दौर के संरक्षक हैं। श्री इन्दौर स्थानकवासी जैन श्रावक संघ ने आपकी जन-सेवा का आदर-सम्मान करने के लिये आपको 'समाज-शिरोमणि' की उपाधि से विभूषित किया है।

आपके आठ पुत्र हैं। आपके समान ही आपके आठों पुत्र भी धार्मिक आचार-विचार वाले और सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन से सक्रिय सहयोग देने को तत्पर रहते हैं। पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध आपका परिवार श्री-सम्पन्न एवं इन्दौर का प्रतिष्ठित परिवार है। आपकी तरह ही आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती चूकी बाई भी धार्मिक आचार-विचार और सरल स्वभाव वाली महिला थी। कुछ दिन पूर्व ही उनका स्वर्गवास हो गया है।

आपने इस सूत्र के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन में विशिष्ट अर्थ-सहयोग प्रदान किया है। आशा है भविष्य में भी समिति को आपकी ओर से इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

—मन्त्री

द्वितीय संस्करण—प्रकाशन के अर्थ सहयोगी

२. श्री बादलचंदजी मेहता, इन्दौर

श्री बादलचंदजी मेहता का जन्म ९ जनवरी १९३० को रणबांकुरों के प्रदेश राजस्थान के कडलू ग्राम मे हुआ।

धर्मपरायण माता-पिता की देख-रेख में आपका बाल्यकाल ग्राम में ही बीता। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् आपने जब व्यवसाय के क्षेत्र में कदम रखा तब मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर को अपना व्यावसायिक कार्यक्षेत्र चुना। आपकी पैनी सूझबूझ और व्यवसाय के मर्म को समझने की दूरदृष्टि के साथ आपने इन्दौर में प्रथम दाल मिल की स्थापना की तथा इस क्षेत्र में निरंतर उन्नति करते रहे। यही नहीं, आपने अन्य कई व्यक्तियों को इस क्षेत्र में आने की प्रेरणा भी दी, जिससे अल्पकाल में ही इन्दौर दाल-व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र बन गया। आपको इस उद्योग के संरक्षक के रूप में जाना जाता है।

व्यवसाय के क्षेत्र में तो आप अग्रणी रहे ही, धार्मिक, सामाजिक और जन-सेवा की प्रवृत्तियों में भी आप तन-मन-धन से सक्रिय सहयोग देते थे। इन्दौर नगर की प्रसिद्ध सामाजिक संस्थाओं—श्री महावीर स्वास्थ्य केन्द्र, महावीर जैन स्वाध्यायशाला तथा श्री जैनदिवाकर विद्या निकेतन की स्थापना में आपने सराहनीय भूमिका निभाई। व्यावसायिक क्षेत्र में निरंतर आपकी ख्याति फैल गई तथा उसी प्रकार आपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों में सर्वात्मना योग देने की कीर्ति भी उपार्जित की। शुभ कार्यों में सदैव अर्जित अर्थ को विनियोजित करते रहे। अर्थोपार्जन में आप जितने प्रवीण थे उससे अधिक पारमार्थिक कार्यों में दान देने को तत्पर रहते थे। आप व्यवहार कुशल तो थे ही, निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी भी थे।

ऐसे समाज-सेवी, मिलनसार श्री बादलचंदजी का अचानक दिनांक ७-३-९३ को स्वर्गवास हो गया।

आपके पश्चात् पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध आपके परिजन भी धार्मिक आचार-विचार वाले एवं सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन से सहयोग देने में तत्पर रहते हैं।

—मन्त्री

प्रकाशकीय

निरयावलिकासूत्र का यह द्वितीय संस्करण है। यह उपांग वर्ग का आगम ग्रन्थ है। इसमें पाँच आगमों का समावेश है—१. कप्पिया २. कप्पवडिंसिया ३. पुप्फिया ४. पुप्फचूलिया और ५ वण्हिदसा। कप्पिया का अपर नाम निरयावलिया-निरयावलिका है। सामान्य रूप से ये पांचों सूत्र निरयावलिका के नाम से जाने जाते हैं। परन्तु ये पृथक-पृथक् सूत्र हैं, जो इनके उत्क्षेप और निक्षेपों से स्पष्ट है।

ये पांचों सूत्र कथा प्रधान हैं। निरयावलिका में मगध सम्राट श्रेणिक के नरकगामी काल आदि १० पुत्रों का वर्णन किया गया है। कप्पवडिंसिया नामक दूसरे सूत्र में काल आदि दस पुत्रों के पद्म आदि दस पुत्रों के स्वर्गगमन का वर्णन है। पुप्फिया और पुप्फचूलिया में क्रमशः देवों और देवियों के जीवनवृत्त है। वण्हिदसा में यदुवंशीय राजकुमारों की जीवनी है।

इन पांचों उपांग सूत्रों की मुख्य विशेषता यह है कि बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी होती है। इसलिए लघुकाय होने पर भी इतिहास संशोधकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण हैं।

आगमों के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन जैन वाङ्मय के मूल ग्रन्थों का प्रचार करने की दृष्टि से किया जा रहा है। साथ ही समिति का यह भी लक्ष्य है कि दिवंगत श्रद्धेय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म. ने जिस पावन भावना से आगम प्रकाशन का उद्देश्य निर्धारित किया है वह पूर्ण हो एवं हम उनके असीम उपकारों से यत्किंचित उऋण हो सकें।

अन्त में समिति अपने सभी सहयोगियों का सधन्यवाद आभार मानती है और विश्वास है कि अपना सहकार देकर हमें कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहेंगे।

रतनचंद मोदी	**जी. सायरमल चोरडिया**	**अमरचंद मोदी**
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामंत्री	मंत्री

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

आदि-वचन

(प्रथम-संस्करण से)

विश्व के जिन दार्शनिकों—दृष्टाओं/चिन्तकों ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनों तथा पद्धतियों पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामों से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारों—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत: निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियां ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत: सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का संकलन नहीं किया जाता, वह बिखरे सुमनों की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, संघीय जीवन पद्धति में धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहंत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्हीं के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर संकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनों की मुक्त वृष्टि जब मालारूप में ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत हैं।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा में "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहंतों के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशांग में समाहित होते हैं और द्वादशांग/आचारांग-सूत्रकृतांग आदि के अंग-उपाग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशांगी में भी बारहवां अंग विशाल एवं समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत: एकादशांग का अध्ययन साधकों के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, लिखने के साधनों का विकास भी अल्पतम था, तब आगमों/शास्त्रों/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कंठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत: इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दों का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमों का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणों के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एवं जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एवं संजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमों को लिपि-बद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुतः आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी; पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृति दुर्बलता, प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विछिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की पावन धारा संकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह, तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमों की प्राचीन चूणियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश में आई और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनों को सुविधा हुई। फलतः आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमो के प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणों एवं पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही। स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रो का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष १५ दिन में पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एवं आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात:स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य में आगमों का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलांक की टीकाओं से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह संस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध संस्करणों में प्राय: शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठों में व वृत्ति में कहीं-कहीं अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिए दुरूह तो हैं ही। चूंकि गुरुदेवश्री स्वयं आगमों के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हें आगमों के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत: वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमों का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्यज्ञान वाले श्रमण-श्रमणी एवं जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तड़प कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-संकल्प साकार नहीं हो सका, फिर भी मेरे मन में प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल में आचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज, श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्म-दिवाकर आचार्य श्री आत्मारामजी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरों ने आगमों की हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि में सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा में बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानों ने उसे बहुत ही सराहा किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस में व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान में आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान में तेरापंथी सम्प्रदाय में आचार्य श्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गुंजाइश है, तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो में वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो में उनकी कार्यशैली की विशदता एवं मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम-साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, विश्रुत मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा में स्वयं भी कार्य कर रहे है तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहंगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज प्राय: सभी विद्वानों की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कहीं आगमों का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम-मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा संस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस का यह दृढ़ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलालजी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नहीं होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म. "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एवं प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०; स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुंवरजी म० की सुशिष्याएं महासती दिव्यप्रभाजी, एम. ए., पी-एच. डी.; महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकुंवरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, स्व० पं० श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एवं श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियों का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिंहजी लोढ़ा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप में हो आता है, जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। चार वर्ष के अल्पकाल में ही पन्द्रह आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनि-जनों के सद्भाव-सहकार के बल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

□□

निरयावलिका : एक समीक्षात्मक अध्ययन

(प्रथम संस्करण से)

जैन साहित्य का प्राचीनतम भाग आगम है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने अपने आप को निहारा और सम्पूर्ण लोक को भी निहारा। उन्होंने सत्य का प्रतिपादन किया। वे सत्य के व्याख्याकार थे, कुशल प्रवचनकार थे। उन्होंने बन्ध, बन्धहेतु, मोक्ष और मोक्षहेतु का रहस्य उद्घाटित किया। इस कारण वे तीर्थंकर कहलाये। तीर्थंकर शब्द में तीर्थ शब्द व्यवहृत हुआ है। तीर्थ शब्द के अनेक अर्थों में से एक अर्थ प्रवचन है। इस दृष्टि से प्रवचन करने वाला तीर्थंकर कहलाता है। दीघनिकाय के सामञ्ञफलसुत्त में छह तीर्थंकरों का उल्लेख हुआ है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में कपिल आदि को तीर्थंकर लिखा है। सूत्रकृतांग चूर्णि में भी प्रवचनकार के अर्थ में तीर्थंकर शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] पर यहाँ पर यह स्मरण रखना होगा कि जैन परम्परा में सामान्य वक्ता के लिए तीर्थंकर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। विशिष्ट महापुरुष, जो उत्कृष्ट पुण्यप्रकृति के धनी होते हैं, उन्हीं के लिए तीर्थंकर शब्द व्यवहृत है। तीर्थंकर के प्रवचन के आधार पर धर्म की आराधना करने वाले श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका को तीर्थ कहा जाता है। श्रमण भगवान् महावीर के पावन प्रवचन आगम के रूप मे विश्रुत हैं।

भगवान् महावीर के पावन प्रवचनों को उनके प्रधान शिष्य गौतम आदि ग्यारह गणधरों ने सूत्र रूप में गूंथा—जिससे आगम के दो विभाग हो गए—सूत्रागम और अर्थागम। भगवान् का पावन उपदेश अर्थागम और उसके आधार पर की गई सूत्ररचना—सूत्रागम है। यह आगमसाहित्य आचार्यों के लिए निधि बन गया, इसलिए इसका नाम गणिपिटक हुआ। उस गुम्फन के मौलिक भाग बारह हुए, जो द्वादशाङ्गी के नाम से जाना और पहचाना जाता है।

अंग और उपांग : एक चिन्तन

प्राचीन काल से आगमों का विभाजन अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के रूप में चला आ रहा है। आचार्य देववाचक ने अंगबाह्य का कालिक और उत्कालिक के रूप में विवेचन किया है। आज वर्तमान में जो उपांग-साहित्य उपलब्ध है उसका समावेश अंगबाह्य में किया जा सकता है। उपांग आगम-ग्रन्थों का निर्धारण कब हुआ, इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है। मूर्धन्य मनीषियों का मन्तव्य है कि जब आगम-पुरुष की कल्पना की गई तब अंगस्थानीय शास्त्रों की परिकल्पना की गई। उस समय उपांग भी अमुक-अमुक स्थानों पर प्रतिष्ठापित करने के लिए परिकल्पित किये गये।

हम पूर्व में बता चुके हैं कि अंगसाहित्य की रचना गणधरों ने की है। उनके स्वतंत्र विषय हैं। उपांग साहित्य के रचयिता स्थविर हैं। उनके अपने विषय हैं। अतः विषय, वस्तुविवेचन आदि की दृष्टि से अंग, उपांगों से भिन्न हैं। उदाहरण के रूप में *अन्तकृद्दशा* का उपांग *निरयावलिया-कल्पिका* है। उपांग का विषय विश्लेषण प्रस्तुतीकरण आदि की दृष्टि से अंग के साथ सम्बद्ध होना चाहिये पर उस प्रकार का सम्बन्ध यहां नही है।

---

१. (क) परं तत्र तीर्थकरः —सूत्रकृतांग चूर्णि पृष्ठ ४७
(ख) वयं तीर्थकरा इति —वही—पृष्ठ ३२२

अनुत्तरोपपातिकदशा का उपांग कल्पावतंसिका है। इसी प्रकार प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद के उपांग क्रमशः पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा है। यदि गहराई से देखा जाय तो ये उपांग अंगों के वास्तविक पूरक नहीं हैं, तथापि इनकी प्रतिष्ठापना किस दृष्टि से की गई है, यह आगममनीषियों के लिये चिन्तनीय और गवेषणीय है।

हमारी दृष्टि से वेदों के गम्भीर अर्थ को समझने के लिए वेदांगों की परिकल्पना की गई जो शिक्षा व्याकरण, छन्द शास्त्र, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प के नाम से प्रसिद्ध है।[2] इनके सम्यक् अध्ययन के बिना वेद के रहस्य को समझना कठिन है और उसे बिना समझे याज्ञिक रूप में उसका क्रियान्वयन सम्भव नहीं। वेदांग के अतिरिक्त वेदों के पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र, ये चार उपांगों की भी कल्पना की गई।[3] और यह कल्पना वेदों के अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये की गई जिसके फलस्वरूप वेदाध्ययन में अधिक सुगमता हुई। इसी तरह से जैन मनीषियों ने अंग के साथ उपांग की कल्पना की हो और एक-एक अंग के साथ एक-एक उपांग का सम्बन्ध स्थापित किया हो। तर्क-कौशल, वाद-नैपुण्य की दृष्टि से परस्पर तालमेल और संगति बिठाई जा सकती है पर उपांग में पूरकता का जो विशेष गुण होना चाहिये उसका प्रायः इनमें अभाव है।

नाम बोध

निरयावलिया (निरयावलिका) श्रुतस्कन्ध में पांच उपांग समाविष्ट हैं, जो इस प्रकार हैं—(१) निरयावलिका या कल्पिका (२) कल्पावतंसिका (३) पुष्पिका (४) पुष्पचूलिका और (५) वृष्णिदशा। विज्ञों का अभिमत है कि ये पाँचों उपांग पहले निरयावलिका के नाम से ही थे, फिर १२ उपांगों का १२ अंगों से सम्बन्ध स्थापित करते समय उन्हे पृथक्-पृथक् गिना गया। प्रो. विन्टरनित्ज का भी यही अभिमत है।

जिस आगम मे नरक में जाने वाले जीवों का पंक्तिबद्ध वर्णन हो वह निरयावलिया है। इस आगम में एक श्रुतस्कन्ध है, बावन अध्ययन हैं, पाँच वर्ग हैं, ग्यारह सौ श्लोक प्रमाण मूल पाठ है। निरयावलिया के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन हैं। इनमें काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह, रामकण्ह, पिउसेनकण्ह, महासेनकण्ह का वर्णन है।

सम्राट् श्रेणिक : एक अध्ययन

प्राचीन मगध के इतिहास को जानने के लिये यह उपांग बहुत ही उपयोगी है। इसमें सम्राट् श्रेणि

---

२. छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते॥
—पाणिनीय शिक्षा, ४१-४२

३. (क) संस्कृतहिन्दी कोष : आप्टे, पृष्ठ २१४
(ख) Sanskrit-English Dictionary, by Sir Monier M. Williams, Page 213.
(ग) पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।
—याज्ञवल्क्य स्मृति, १-३

के राज्यकाल का निरूपण हुआ है। सम्राट् श्रेणिक का जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में क्रमशः 'श्रेणिक भिंभिसार' और 'श्रेणिक बिंबिसार' इस प्रकार सयुक्त नाम मुख्य रूप से मिलते हैं। जैन दृष्टि से श्रेणियों की स्थापना करने से उनका श्रेणिक नाम पड़ा।[४] बौद्ध दृष्टि से पिता के द्वारा अट्ठारह श्रेणियों का स्वामी बनाये जाने के कारण वह श्रेणिक बिंबिसार के रूप में विश्रुत हुआ।[५] जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में श्रेणियों की संख्या अट्ठारह ही मानी गई है।[६] श्रेणियों के नाम भी परस्पर मिलते-जुलते हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में नव-नारू,[७] नव-कारू[८] श्रेणियों के अट्ठारह भेदों का विस्तार से निरूपण है। किन्तु बौद्धसाहित्य में श्रेणियों के नाम इस प्रकार व्यवस्थित प्राप्त नही हैं। 'महावस्तु' में श्रेणियों के तीस नाम मिलते हैं[९], उनमें से बहुत से नाम 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' में उल्लिखित नामो से मिलते-जुलते हैं। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने विविध ग्रन्थों के आधार से सत्ताईस श्रेणियों के नाम दिये हैं, पर वे निश्चय नहीं कर पाये कि अट्ठारह श्रेणियो के नाम कौन से हैं।[१०] सम्भव है उन्होने जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का अवलोकन न किया हो। यदि वे अवलोकन कर लेते तो इस प्रकार उनके अन्तर्मानस में शंका उद्बुद्ध नही होती। कितने ही विज्ञों का यह भी अभिमत है कि राजा श्रेणिक के पास बहुत बड़ी सेना थी और वे सेनिय गोत्र के थे इसलिये उनका नाम श्रेणिक पड़ा।[११]

जैन साहित्य में राजा श्रेणिक की महारानियाँ

जैन साहित्य के अनुसार राजा श्रेणिक की पच्चीस रानियाँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्तकृद्दशांग[१२] में (१) नन्दा (२) नन्दमती (३) नन्दोत्तरा (४) नन्दिसेणिया (५) मरुया (६) सुमरिया (७) महामरुता (८) मरुदेवा (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमना (१३) भूतदत्ता (१४) काली (१५) सुकाली (१६) महाकाली (१७) कृष्णा (१८) सुकृष्णा (१९) महाकृष्णा (२०) वीरकृष्णा (२१) रामकृष्णा (२२) पितुसेनकृष्णा और (२३) महासेनकृष्णा। इन तेईस रानियों ने सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् भगवान्

---

४. श्रेणी: कायति श्रेणिको मगधेश्वर:।

—अभिधानचिन्तामणि:, स्वोपज्ञवृत्ति:, मर्त्य काण्ड, श्लोक ३७६

५. स पित्राष्टादशसु श्रेणिस्ववतारित., अतोऽस्य श्रेण्यो विम्बिसार इति ख्यात:॥

—विनयपिटक, गिलगिट मैन्युस्क्रिप्ट।

६. जम्बूद्वीपपण्णत्ति, वक्ष. ३; जातक, मूगपक्ख जातक, भा. ६।

७-८ कुंभार, पट्टइल्ला, सुवण्णकारा, सूवकारा य।
गधव्वा, कासवग्गा, मालाकारा, कच्छकरा॥१॥
तंबोलिया य एए नवप्पयारा या नारुश्रा भणिश्रा।
अह णं णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि॥२॥
चम्मयरु, जंतुपीलग, गंछिअ, छिपाय, कंसारे य।
सीवग, गुआर, भिल्लग, धीवर वण्णइ अट्ठदस॥३॥

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

९. महावस्तु भाग ३, पृष्ठ ११३ तथा ४४२-४४३

१०. Corporate Life in Ancient India, Vol. II, P. 18

११. Dictionary of Pali Proper Names, Vol. II, pp. 286-1284

१२. अन्तकृद्दशांग, वर्ग ७, अ. १ सू. १३. वर्ग ८ अ. १-१०

महावीर के नेतृत्व में आर्हती दीक्षा ग्रहण की थी। ज्ञाताधर्मकथा[13] में श्रेणिक की एक रानी धारिणी का भी उल्लेख है। दशाश्रुतस्कन्ध[14] में महारानी चेलना का वर्णन है जिसका रूप अद्भुत और अनूठा था। जिसके दिव्य रूप को निहार कर भगवान् महावीर की श्रमणियाँ ठगी-सी रह गईं और वे निदान करने को तत्पर हो गईं। निशीथचूर्णि[15] में श्रेणिक की एक रानी का नाम अपतगन्धाप्राप्त होता है पर यह नाम बहुत ही कम प्रसिद्ध है।

बौद्ध साहित्य में महारानियाँ

बौद्ध साहित्य विनयपिटक में राजा श्रेणिक की पांच सौ रानियों का उल्लेख है।[16] कहा जाता है कि बिम्बिसार श्रेणिक को एक बार भगंदर का भयंकर रोग हुआ, राजा उस रोग से अत्यधिक व्यथित हो गया। जीवक कुमारभृत्य ने राजा को ऐसा लेप लगाया जिससे राजा रोग से मुक्त हो गया। राजा की प्रसन्नता का कोई पार नहीं रहा। राजा ने अपनी पाँच सौ रानियों को बढ़िया वस्त्राभूषणों से अलंकृत करवाया और पाँच सौ ही रानियों के वस्त्राभूषण उतरवाकर जीवक को उपहारस्वरूप दे दिये। विज्ञों का यह भी मंतव्य है कि वे पाँच सौ महिलायें राजा की ही रानियाँ हों, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता।

जातक के अनुसार राजा प्रसेनजित की भगिनी कौशला देवी का पाणिग्रहण राजा बिम्बिसार के साथ हुआ था और प्रसेनजित ने एक लाख कार्षापण की आय वाला एक गांव दहेज के रूप में दिया था।[17] थेरीगाथा अट्ठकथा के अनुसार राजा श्रेणिक का विवाह मद्रदेश की राजकन्या खेमा के साथ हुआ था। राजकुमारी को अपने रूप पर अत्यन्त घमण्ड था। यह तथागत बुद्ध से प्रतिबुद्ध होकर बुद्धशासन में प्रव्रजित हुई थी।[18] थेरीगाथा के अनुसार उज्जयिनी की पद्मावती गणिका भी श्रेणिक की पत्नी थी।[19] अमितायुर्ध्यान सूत्र के अभिमतानुसार वैदेही वासवी बिम्बिसार की रानी थी और शीलवा, जयसेना भी उनकी रानियाँ थी।[20]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन साहित्य में श्रेणिक की रानियों के जो नाम उपलब्ध हैं, वे नाम बौद्ध साहित्य में प्राप्त नहीं हैं और जो नाम बौद्ध साहित्य में हैं वे जैन साहित्य में नहीं मिलते है। सभव है परम्परा की दृष्टि से यह भेद हुआ हो।

जैन साहित्य में श्रेणिक के पुत्र

जैन साहित्य में सम्राट् श्रेणिक के छत्तीस पुत्रों का उल्लेख मिलता है। उन छत्तीस पुत्रों में राज्य का उत्तराधिकारी राजकुमार कूणिक था। इनके नामों की सूची इस प्रकार है—(१) जाली (२) मयाली

१३. ज्ञाताधर्मकथासूत्र अ. १ सू. ८ (पत्र १४-१)
१४. दशाश्रुतस्कन्ध, दसवीं दशा
१५. निशीथचूर्णि सभाष्य, भा. १, पृष्ठ १७
१६. महावग्ग ८-१-१५
१७. (क) जातक, २-४०३ (ख) Dictionary of Pali Proper Names, Vol. II, p. 286
(ग) संयुक्त निकाय, अट्ठकथा
१८. थेरीगाथा-अट्ठकथा, १३९-१४३
१९. थेरीगाथा, ३१-३२
२०. Dictionary of Pali Proper Names, Vol. III, p. 286

(३) उवयाली (४) पुरिमसेण (५) बारिसेण (६) दीहदन्त (७) लट्ठदन्त (८) वेहल्ल (९) वेहायस (१०) अभयकुमार (११) दीहसेण (१२) महासेण (१३) लट्ठदन्त (१४) गूढ़दन्त (१५) शुद्धदन्त (१६) हुल्ल (१७) दुम (१८) दुमसेण (१९) महादुमसेण (२०) सीह (२१) सीहसेण (२२) महासीहसेण (२३) पुण्णसेण (२४) कालकुमार (२५) सुकाल कुमार (२६) महाकाल कुमार (२७) कण्ह कुमार (२८) सुकण्ह कुमार (२९) महाकण्ह कुमार (३०) वीरकण्ह कुमार (३१) रामकण्ह कुमार (३२) सेणकण्ह कुमार (३३) महासेणकण्ह कुमार (३४) मेघ कुमार (३५) नन्दीसेन और (३६) कूणिक।

इन राजकुमारों में से २३ राजकुमारों ने आर्हती दीक्षा ग्रहण कर उत्कृष्ट संयम की आराधना की और वे अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए। मेघ कुमार भी श्रमण धर्म को स्वीकार कर अन्त में अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। नन्दीसेन भी श्रमण बनकर साधना के पथ पर आगे बढ़े। इस प्रकार पच्चीस राजकुमारों के दीक्षा लेने का वर्णन है। ग्यारह राजकुमारों ने साधनापथ को स्वीकार नही किया और वे मृत्यु को प्राप्त कर नरक में उत्पन्न हुए।

निरयावलिया के प्रथम वर्ग में श्रेणिक के दस पुत्रों का नरक में जाने का वर्णन है। श्रेणिक की महारानी चेलना से कूणिक का जन्म हुआ। कूणिक के सम्बन्ध में हम औपपातिकसूत्र की प्रस्तावना में बहुत विस्तार से लिख चुके हैं, अतः जिज्ञासु पाठक विशेष परिचय के लिये वहाँ देखें।[२१] कूणिक के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग प्रस्तुत आगम में है। कूणिक अपने लघु भ्राता काल कुमार, सुकाल कुमार आदि के सहयोग से अपने पिता श्रेणिक को बन्दी बनाकर कारागृह में रखता है। क्योंकि उसके अन्तर्मानस में यह विचार घूम रहे थे कि राजा श्रेणिक के रहते हुए मैं राजसिंहासन पर आरूढ नही हो सकता, अतः उसने यह उपक्रम किया था। कूणिक अत्यन्त आह्लादित होता हुआ अपनी माँ को नमस्कार करने पहुंचा, पर माँ अत्यन्त चिन्तित थी। कूणिक ने कहा—माँ! तुम चिन्ता-सागर में क्यों डुबकी लगा रही हो? मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, राजा बन गया हूँ, तथापि तुम चिन्तित हो! मुझे अपनी चिन्ता का कारण बताओ। माँ ने कहा—तुझे धिक्कार है। तूने अपने पिता को कारागृह में बन्द किया है। जबकि तेरे पिता का तुझ पर अपार स्नेह था। जब तू मेरे गर्भ में आया तो मुझे राजा श्रेणिक के उदर का मांस खाने का दोहद पैदा हुआ। दोहद पूर्ण न होने से मैं उदास रहने लगी। मेरी अंगपरिचारिकाओं से राजा श्रेणिक को वह बात ज्ञात हो गई तथा महाराज श्रेणिक ने अभय कुमार के सहयोग से मेरा दोहद पूर्ण किया। मुझे बहुत ही बुरा लगा, मैने सोचा—जो गर्भ में जीव है वह गर्भ मे ही पिता का मांस खाने की इच्छा करता है तो जन्म लेने के बाद पिता को कितना कष्ट देगा! यह कल्पना कर ही मैं सिहर उठी और मैंने गर्भ नष्ट करने का प्रयत्न किया। पर सफल न हो सकी। तेरे जन्म लेने पर मैंने घूरे (रोडी) पर तुझे फिकवा दिया। पर जब यह बात राजा श्रेणिक को ज्ञात हुई तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए, उन्होंने तुझे तुरन्त मंगवाया। घूरे पर पड़े हुए तेरे असुरक्षित शरीर पर कुक्कुट ने चोंच मार दी जिससे तेरी अंगुली पक गई और उसमें से मवाद निकलने लगा। अपार कष्ट से तू चिल्लाता था। तब तेरी वेदना को शान्त करने के लिये तेरे पिता अंगुली को मुँह में रखकर चूसते, जिससे तेरी वेदना कम होती और तू शान्त हो जाता। ऐसे महान् उपकारी पिता को तूने यह कष्ट दिया है!

कूणिक के मन मे पिता के प्रति प्रेम उद्बुद्ध हुआ। उसे अपनी भूल का परिज्ञान हुआ। वह हाथ मे परशु लेकर पिता की हथकड़ी-बेडी तोड़ने के लिये चल पड़ा। राजा श्रेणिक ने दूर से देखा कि कूणिक हाथ मे परशु लिए आ रहा है तो समझा कि अब मेरा जीवनकाल समाप्त होने वाला है। पुत्र के हाथों मृत्यु प्राप्त हो, इससे तो यही श्रेयस्कर है कि मैं स्वयं कालकूट विष खाकर अपने प्राणों का अन्त कर लूँ।

२१. औपपातिकसूत्र, प्रस्तावना, पृष्ठ २०-२४ (आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)

बौद्ध साहित्य में अजातशत्रु का प्रसंग

राजा श्रेणिक और अजातशत्रु (कूणिक) का यह प्रसंग बौद्धसाहित्य में भी मिलता है परन्तु दोनों में कुछ अन्तर है। बौद्धपरम्परा के अनुसार वैद्य ने राजा की बाहु का रक्त निकलवाकर महारानी के दोहद की पूर्ति की। महारानी को ज्योतिषी ने बताया कि यह पुत्र पिता को मारने वाला होगा अतः रानी उस गर्भस्थ शिशु को किसी भी प्रकार से नष्ट करने का प्रयास करने लगी। वह मन ही मन खिन्न थी कि इस बालक के गर्भ मे आते ही पति के मांस को खाने का दोहद हुआ है, इसलिये इस गर्भ को गिरा देना ही श्रेयस्कर है। महारानी ने गर्भपात के लिए अनेक प्रयास किये पर वह सफल न हो सकी। जन्म लेने पर नवजात शिशु को राजा के कर्मचारी राजा के आदेश से महारानी के पास से हटा देते हैं, जिससे महारानी उसे मार न दे। कुछ समय के बाद महारानी को सौंपते हैं। पुत्रप्रेम से महारानी उसमें अनुरक्त हो जाती है। एक बार अजातशत्रु की अंगुली में फोड़ा हो गया। बालक वेदना से कराहने लगा जिससे कर्मकर उसे राज सभा में ले जाते हैं। राजा अपने प्यारे पुत्र की अगुली मुख में रख लेता है, फोड़ा फूट जाता है। पुत्रप्रेम में पागल बना हुआ राजा उस रक्त और मवाद को निगल जाता है।

अजातशत्रु जीवन के उषाकाल से ही महत्त्वाकाक्षी था। देवदत्त उसकी महत्त्वाकांक्षा को उभारता था। अतएव अपने पूज्य पिता को वह धूमगृह (लोहकर्म करने का गृह) में डलवा देता है। धूमगृह में कौशल देवी के अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता था। देवदत्त ने अजातशत्रु को कहा — अपने पिता को शस्त्र से न मारें, उन्हे भूखे और प्यासे रखकर मारें। जब कौशल देवी राजा से मिलने को जाती तो उत्संग में भोजन छुपा कर ले जाती और राजा को दे देती। अजातशत्रु को ज्ञात होने पर उसने कर्मकरों से कहा—मेरी माता को उत्संग बाध कर मत जाने दो। तब महारानी जूड़े मे भोजन छिपाकर ले जाने लगी। उसका भी निषेध हुआ। तब वह सोने की पादुका में भोजन छुपा कर ले जाने लगी, जब उसका निषेध किया गया तो महारानी गन्धोदक से स्नान कर शरीर पर मधु का लेप कर राजा के पास जाने लगी। राजा उसके शरीर को चाट कर कुछ दिनों तक जीवित रहा। अजातशत्रु ने अन्त मे अपनी माता को धूमगृह में जाने का निषेध किया।

राजा श्रेणिक अब श्रोतापत्ति के सुख के आधार पर जीने लगा तो अजातशत्रु ने नाई को बुलाकर कहा—मेरे पिता के पैरों को तुम पहले शस्त्र से छील दो, उस पर नमकयुक्त तेल का लेपन करो और फिर खैर के अगारे से उसे सेको। नाई ने वैसा ही किया जिससे राजा का निधन हो गया।

जैन परम्परा की दृष्टि से माता से पिता के प्रेम की बात को सुनकर कूणिक के मन मे पिता की मृत्यु से पूर्व ही पश्चात्ताप हो गया था। जब कूणिक ने देखा—पिता ने आत्यहत्या कर ली है तो वह मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा। कुछ समय के बाद जब उसे होश आया तो वह फूट-फूटकर रोने लगा—मै कितना पुण्यहीन हूँ, मैंने अपने पूज्य पिता को बन्धनो मे बाँधा और मेरे निमित्त से ही पिता की मृत्यु हुई है। वह पिता के शोक से संतप्त होकर राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी पहूँचा और उसे मगध की राजधानी बनाया।

तुलनात्मक अध्ययन

बौद्धदृष्टि से जिस दिन बिम्बिसार की मृत्यु हुई, उस दिन अजातशत्रु के पुत्र हुआ। संवादप्रदाताओं ने लिखिति रूप से संवाद प्रदान किया। पुत्र-प्रेम से राजा हर्ष से नाच उठा। उसका रोम-रोम प्रसन्न हो उठा। उसे ध्यान आया—जब मैं जन्मा था तब मेरे पिता को भी इसी तरह आह्लाद हुआ होगा। उसने कर्मकारों से

कहा—पिता को मुक्त कर दो। संवाददाताओं ने राजा के हाथ में बिम्बिसार की मृत्यु का पत्र थमा दिया। पिता की मृत्यु का संवाद पढ़ते ही वह आँसू बहाने लगा और दौड़कर माँ के पास पहुँचा। माँ से पूछा—माँ ! क्या मेरे पिता का भी मेरे प्रति प्रेम था ? माँ ने अंगुली चूसने की बात कही। पिता के प्रेम की बात को सुनकर वह अधिक शोकाकुल हो गया और मन ही मन दुःखी होने लगा।

कूणिक का दोहद, अंगुली में व्रण, कारागृह आदि प्रसंगों का वर्णन जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं में प्राप्त है। परम्परा में भेद होने के कारण कुछ निमित्त पृथक् हैं। जैन परम्परा की घटना 'निरयावलिका' की है और बौद्ध परम्परा में यह घटना 'अट्ठकथाओं' में आई है। पं. दलसुख मालवणिया निरयावलिका की रचना वि. सं. के पूर्व की मानते हैं[२२] और अट्ठकथाओं का रचनाकाल वि. की पांचवीं शती है।[२३]

जैन परम्परा के साहित्य में भी कूणिक की क्रूरता का चित्रण है किन्तु बौद्ध परम्परा जैसा नहीं। बौद्ध परम्परा में अजातशत्रु अपने पिता के पैरों को छिलवाता है और उसमें नमक भरवाकर अग्नि से सेक करवाता है। यह है उसका दानवीय रूप। जैन परम्परा में श्रेणिक को कूणिक के द्वारा कारागृह में डालने की बात तो कही है पर पिता को अमानवीय तरीके से क्षुधा से पीडित कर मारने की बात नहीं कही। जैन दृष्टि से श्रेणिक ने स्वय ही मृत्यु को वरण किया है तो बौद्धपरम्परा में श्रेणिक अपने पुत्र अजातशत्रु द्वारा मरवाया गया।[२४]

महाशिला कंटक संग्राम

पिता की मृत्यु के पश्चात् कूणिक राज्य का संचालन करने लगा। उसका सहोदर लघुभ्राता वेहल्ल कुमार था। सम्राट श्रेणिक ने अपने पुत्र वेहल्ल कुमार को सेचनक हाथी और अठारहसरा हार दिया था, जिसका मूल्य श्रेणिक के पूरे राज्य के बराबर था।[२५] प्रस्तुत आगम में हार और हाथी का प्रसंग 'वेहल्ल कुमार के साथ बताया गया है जबकि भगवतीसूत्र की टीका, निरयावलिया की टीका, भरतेश्वरबाहुबली वृत्ति प्रभृति ग्रन्थो में हल्ल और वेहल्ल इन दोनों के साथ इस घटना को जोड़ा गया है।

अनुत्तरोपपातिक में वेहल्ल और वेहायस को चेलना का पुत्र बताया गया है और हल्ल को धारिणी का पुत्र। निरयावलिका वृत्ति और भगवती वृत्ति में हल्ल और वेहल्ल को चेलना का पुत्र लिखा है। आगम-मर्मज्ञों को इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है। कूणिक ने अपना राज्य ग्यारह भागों में बांटा था। कालकुमार, सुकाल कुमार आदि भाइयो को राज्य का हिस्सा दिया था, पर हल्ल, वेहल्ल को नही। वेहल्ल कुमार सेचनक हस्ती पर आरूढ़ होकर अपने अन्त.पुर के साथ गंगा नदी के तट पर जलक्रीड़ा के लिए जाता है। उसकी आनन्दक्रीड़ा को निहार कर कूणिक की पत्नी पद्मावती के मन में हार-हाथी प्राप्त करने की भावना जागृत हुई। उसने पुनः-पुनः कूणिक को कहा कि हार-हाथी भाई से प्राप्त करो। कूणिक ने तब वेहल्ल को बुलाकर कहा—मुझे हार-हाथी दे दो। उसने कहा—मुझे ये दोनो पिता ने दिए हैं। वेहल्ल कुमार को लगा—कूणिक मुझसे हार-हाथी छीन लेगा। अतः वह कूणिक के भय से अपनी वस्तुओं को लेकर अपने नाना चेटक के पास वैशाली पहुँच गया। कूणिक को जब ज्ञात हुआ तो उसने दूत भेजा। चेटक ने कहा—शरणागत

---

२२. आगमयुग का जैनदर्शन, सन्मतिज्ञानपीठ आगरा १९६६, पृ. २९ —पं. दलसुख मालवणिया

२३. आचार्य बुद्धघोष—महाबोधिकसभा, सारनाथ, वाराणसी, १९५६

२४. धर्मकथानुयोग : एक समीक्षात्मक अध्ययन—प्रस्तावना—पृष्ठ ११७ (ले. देवेन्द्रमुनि शास्त्री)

२५. आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। यदि कूणिक हार और हाथी के बदले आधा राज्य दे तो हम हार और हाथी लौटा सकते हैं। कूणिक को यह संदेश प्राप्त हुआ तो उसे अत्यन्त क्रोध आया। वह अपने दसों भाइयों की सेना को लेकर वैशाली पहुँचा। कूणिक की सेना में तेतीस सहस्र हस्ती, तेतीस सहस्र अश्व, तेतीस सहस्र रथ और तेतीस करोड़ पदाति थे।

राजा चेटक ने नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी, इन अट्ठारह काशी-कोशल राजाओं को बुलाकर उनसे परामर्श किया। सभी ने कहा—शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है। वे सभी युद्ध के मैदान में आ गए। चेटक की सेना में सत्तावन सहस्र हाथी, सत्तावन सहस्र अश्व, सत्तावन सहस्र रथ और सत्तावन करोड़ पदाति सैनिक थे। राजा चेटक भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किए थे। उसने एक विशेष नियम भी ले रखा था कि मैं दिन मे एक ही बार बाण चलाऊँगा। उसका बाण कभी भी निष्फल नहीं जाता था।[२६] प्रथम दिन अजातशत्रु कूणिक की ओर से कालकुमार सेनापति होकर सामने आया। उसने गरुड़ व्यूह की रचना की। भयंकर युद्ध हुआ। राजा चेटक ने अमोघ बाण का प्रयोग किया और कालकुमार जमीन पर लुढ़क पड़ा। इसी तरह एक-एक कर दस भाई सेनापति बनकर आए और वे सभी राजा चेटक के अचूक बाण से मरकर नरक में उत्पन्न हुए। उस समय भगवान् महावीर चम्पा नगरी में थे। उनकी माताओं को ज्ञात हुआ कि हमारे पुत्र युद्ध के मैदान में मर चुके हैं, अतः वे सभी आर्हती दीक्षा ग्रहण कर लेती हैं। भगवती सूत्र मे उसके पश्चात् रथमूसल सग्राम और महाशिला कंटक संग्राम का उल्लेख है। ये दोनों संग्राम आधुनिक विश्व-युद्ध की तरह घोर विनाशकर्त्ता थे।

बौद्ध साहित्य में वैशालीनाश का प्रसंग

बौद्ध साहित्य में भी यह प्रकरण कुछ भिन्न प्रकार से उल्लिखित है—गंगातट के एक पट्टन के सन्निकट पर्वत मे रत्नों की खान थी।[२७] अजातशत्रु और लिच्छिवियों में यह समझौता हुआ था कि आधे-आधे रत्न परस्पर ले लेंगे। अजातशत्रु ढीला था। आज या कल करते हुए वह समय पर नही पहुँचता। लिच्छवी सभी रत्न लेकर चले जाते। अनेक बार ऐसा होने से उसे बहुत ही क्रोध आया पर गणतन्त्र के साथ युद्ध कैसे किया जाय? उनके बाण निष्फल नहीं जाते।[२८] यह सोचकर वह हर बार युद्ध का विचार स्थगित करता रहा, पर जब वह अत्यधिक परेशान हो गया तब उसने मन ही मन निश्चय किया कि मैं वज्जियों का अवश्य विनाश करूँगा। उसने अपने महामन्त्री 'वस्सकार' को बुलाकर तथागत बुद्ध के पास भेजा।[२९]

वज्जी-लिच्छवी-चिन्तनीय

तथागत बुद्ध ने कहा—वज्जियो में सात बातें हैं—

१. सन्निपात-बहुल है अर्थात् वे अधिवेशन में सभी उपस्थित रहते हैं। २. उनमें एकमत है। जब सन्निपात भेरी बजती है तब वे चाहे जिस स्थिति में हों, सभी एक हो जाते हैं। ३ वज्जी अप्रज्ञप्त (अवैधानिक)

---

२६. चेटकराजस्य तु प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शरं मुञ्चति अमोघबाणश्च।

— निरयावलिका सटीक, पत्र ६-१

२७. बुद्धचर्या (पृष्ठ ४८४) के अनुसार—पर्वत के पास बहुमूल्य सुगन्ध वाला माल उतरता था।

२८. (क) दीघनिकाय अट्ठ कथा (सुमंगल विलासिनी) खण्ड २, पृ. ५२६

(ख) Dr. B. C. Law ; Budhoghosa, Page III (घ) हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ ११८

२९. दीघनिकाय, महापरिनिव्वाणसुत्त, २।३ (१६)

बात को स्वीकार नहीं करते और वैधानिक बात का उच्छेद नहीं करते। ४. वज्जी वृद्ध व गुरुजनों का सत्कार-सम्मान करते हैं। ५. वज्जी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों के साथ न तो बलात्कार करते हैं और न बलपूर्वक विवाह करते हैं। ६. वज्जी अपनी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते। ७. वज्जी अर्हतों के नियमों का पालन करते हैं, इसलिये अर्हत् उनके वहाँ पर आते रहते हैं। ये सात नियम जब तक वज्जियों में हैं और रहेंगे, तब तक कोई भी शक्ति उन्हें पराजित नहीं कर सकती।[30]

प्रधान अमात्य 'वस्सकार' ने आकर अजातशत्रु से कहा—और कोई उपाय नहीं है, जब तक उनमें भेद नही पड़ता, तब तक उनको कोई भी शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती। वस्सकार के संकेत से अजातशत्रु ने राजसभा में 'वस्सकार' को इस आरोप से अमात्य पद से पृथक् कर दिया कि यह वज्जियो का पक्ष लेता है। वस्सकार को पृथक् करने की सूचना वज्जियों को प्राप्त हुई। कुछ अनुभवियों ने कहा—उसे अपने यहाँ स्थान न दिया जाये। कुछ लोगों ने कहा—नही, वह मगधों का शत्रु है, इसलिये वह हमारे लिये बहुत ही उपयोगी है। उन्होने 'वस्सकार' को अपने पास बुलाया और उसे 'अमात्य' पद दे दिया। वस्सकार ने अपने बुद्धि बल से वज्जियों पर अपना प्रभाव जमाया। जब वज्जी गण एकत्रित होते, तब किसी एक को वस्सकार अपने पास बुलाता और उसके कान में पूछता—क्या तुम खेत जोतते हो? वह उत्तर देता—हाँ, जोतता हूँ। महामात्य का दूसरा प्रश्न होता—दो बैल से जोतते हो या एक बैल से?

दूसरे लिच्छवी उस व्यक्ति से पूछते—बताओ, महामात्य ने तुम्हें एकान्त में ले जाकर क्या कहा? वह सारी बात कह देता। पर वे कहते—तुम सत्य को छिपा रहे हो। वह कहता—यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है तो मैं क्या करूँ? इस प्रकार एक-दूसरे में अविश्वास की भावना पैदा की गई और एक दिन उन सभी में इतना मनोमालिन्य हो गया कि एक लिच्छवी दूसरे लिच्छवी से बोलना भी पसन्द नहीं करता। सन्निपात भेरी बजाई गई, किन्तु कोई भी नहीं आया। 'वस्सकार' ने अजातशत्रु को प्रच्छन्न रूप से सूचना भेज दी। उसने ससैन्य आक्रमण किया। भेरी बजायी गयी पर कोई भी तैयार नहीं हुआ। अजातशत्रु ने नगर में प्रवेश किया और वैशाली का सर्वनाश कर दिया।[31]

जैन और बौद्ध दोनों ही परम्पराओ ने मगधविजय और वैशाली के नष्ट होने के विवरण प्रस्तुत किए हैं। जैन दृष्टि से चेटक अट्ठारह गणदेशों का नायक था। बौद्ध परम्परा उसे केवल प्रतिपक्षी ही मानती है। जैन दृष्टि से कूणिक के पास तेतीस करोड सेना थी तो चेटक के पास सत्तावन करोड़ सेना थी। दोनों ही युद्धों में एक करोड अस्सी लाख मानवों का सहार हुआ। बौद्ध दृष्टि से युद्ध का निमित्त रत्नराशि है। जैन परम्परा ने जैसे चेटक का प्रहार अमोघ बताया है वैसे ही बौद्ध ग्रन्थों की दृष्टि से वज्जी लोगों के प्रहार अचूक थे। नगर की रक्षा का मूल आधार जैन दृष्टि से स्तूप को माना है तो बौद्ध दृष्टि से पारस्परिक एकता, गुरुजनों का सम्मान आदि बताया गया है। जितना व्यवस्थित वर्णन जैन परम्परा में है उतना बौद्ध परम्परा में नहीं हो पाया है। वैशाली की पराजय में दोनों ही परम्पराओं में छद्म भाव का उपयोग हुआ है। वैशाली का युद्ध कितने समय तक चला? इस सम्बन्ध मे जैन दृष्टि से एक पक्ष तक तो प्रत्यक्ष युद्ध हुआ और कुछ समय प्राकार-भंग में लगा। बौद्ध दृष्टि से 'वस्सकार' तीन वर्ष तक वैशाली में रहा और लिच्छिवियों में भेद उत्पन्न करता रहा। डा. राधाकुमुद मुखर्जी के अभिमतानुसार युद्ध की अवधि कम से कम सोलह वर्ष तक की है।[32]

---

३०. दीघनिकाय, महापरिनिब्बाणसुत्त, २।३ (१६)

३१. दीघनिकाय अट्ठकथा, खण्ड १, पृष्ठ ५२३

३२. हिन्दू सभ्यता, पृष्ठ १८९ —राधाकुमुद मुखर्जी

जैन साहित्य में नरक

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में रणक्षेत्र में मरने वाले व्यक्ति की देवगति मानी है। वीर रस के कवियों ने इस बात को लेकर हजारों कविताएँ लिखी हैं। उन कविताओं का एक ही उद्देश्य था कि योद्धा रणक्षेत्र में पीछे न हटें। यदि योद्धा रणक्षेत्र में पीछे हट गया तो उसकी पराजय निश्चित है। इसलिए उसके सामने स्वर्ग की रंगीन कल्पनाएँ प्रस्तुत की जाती थीं। किन्तु जैन धर्म ने इस प्रकार की रंगीन कल्पना नहीं दी। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि रणक्षेत्र में जो वीर मृत्यु को वरण करता है वह नरक, तिर्यंच आदि किसी भी गति में पैदा हो सकता है। क्योंकि युद्ध में कषाय की तीव्रता होती है और जहाँ कषाय की तीव्रता होती है, वहाँ जीवों की सुगति सम्भव नहीं है। जैन परम्परा में स्वर्ग और नरक दोनों का ही वर्णन विस्तार के साथ उपलब्ध है। नरक के सात भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—१. रत्नप्रभा २. शर्कराप्रभा ३. वालुप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तमःप्रभा ७. महातमःप्रभा (तमतमाप्रभा)।[३३] नरक शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य अकलङ्क देव ने लिखा है असाता-वेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त हुई शीत व उष्ण आदि की वेदना से जो नरों को—जीवों को—शब्द कराते है—रुलाते हैं वे नरक कहलाते हैं। अथवा जो पाप करने वाले प्राणियो को अतिशय दुःख को प्राप्त कराते हैं उन्हे नरक कहा जाता है।[३४]

नारकों का निवास स्थान अधोलोक में है। ये सातों नरक समश्रेणि में न होकर एक दूसरे के नीचे हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई समान नही है पर नीचे-नीचे की भूमि की लम्बाई-चौड़ाई एक दूसरी से अधिक है। सातवें नरक की लम्बाई-चौडाई सबसे अधिक है। ये सातों भूमियाँ एक दूसरे से सटी हुई नही हैं। एक-दूसरी के बीच अन्तराल है। उस अन्तराल मे घनोदधि, घनवात, तनुवात आदि हैं।

बौद्ध साहित्य में नरकनिरूपण

बौद्ध परम्परा के जातकअट्ठकथा के अनुसार नरक आठ है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. सजीव २. कालसुत ३. संघात ४. जालरौरव ५. धूमरौरव ६. महाअवीचि ७. तपन ८. पतापन।[३५] दिव्यावदान मे नरक के यही नाम मिलते हैं पर जालरौरव के स्थान पर रौरव और धूमरौरव के स्थान पर महारौरव, ये नाम मिलते हैं।[३६]

संयुत्तनिकाय,[३७] अगुत्तरनिकाय[३८] और सुत्तनिपात[३९] में नरकों के दस नाम आये हैं—१. अब्बुद २. निरब्बुद ३. अबब ४ अटट ५. अहह ६. कुमुद ७. सोगन्धिक ८. उप्पल ९. पुण्डरीक १० पदुम।

---

३३ भगवती सूत्र, शतक १, उद्देशक ५

३४. नरान् कायन्तीति नरकाणि। शीतोष्णासद्वेद्योदयापादितवेदनया नरान् कायन्ति शब्दायन्त इति नरकाणि, नृणन्तीति वा। अथवा पापकृतः प्राणिनः आत्यन्तिकं दुःखं नृणन्ति नयन्तीति नरकाणि।

—तत्त्वार्थराजवार्तिक २।५०।२-३

३५. जातक अट्ठकथा, खण्ड ५, पृष्ठ २६६-२७१

३६ दिव्यावदान ६७

३७ सयुत्तनिकाय ६।१।१०

३८. अगुत्तरनिकाय (P.T.S) खण्ड ५, पृष्ठ १७३

३९. सुत्तनिपात, महावग्ग, कोकालियसुत्त ३।३६

अट्ठकथा के अभिमतानुसार ये नरकों के नाम नहीं हैं अपितु नरक में रहने की अवधि के नाम हैं। मज्झिमनिकाय[४०] आदि में नरकों के पाँच नाम मिलते हैं। जातक अट्ठकथा,[४१] सुत्तनिपात अट्ठकथा[४२] आदि में नरक के लोहकुम्भीनिरय आदि नाम मिलते हैं।

वैदिक परम्परा में नरक निरूपण

वैदिक परम्परा के आधारभूत ग्रन्थ ऋग्वेद आदि में नरक आदि का उल्लेख नहीं हुआ है। किन्तु उपनिषद्साहित्य में नरक का वर्णन है। वहाँ उल्लेख है— नरक में अन्धकार का साम्राज्य है, वहाँ आनन्द नामक कोई वस्तु नहीं है। जो अविद्या के उपासक हैं, आत्मघाती हैं, बूढ़ी गाय आदि का दान देते हैं, वे नरक मे जाकर पैदा होते हैं। अपने पिता को वृद्ध गायों का दान देते हुए देखकर बालक नचिकेता के मन में इसलिये सक्लेश पैदा हुआ था कि कहीं पिता को नरक न मिले। इसीलिये उसने अपने आप को दान में देने की बात कही थी।[४३] पर उपनिषदों में नरक कहाँ है ? इस सम्बन्ध में कोई वर्णन नहीं है और न यह वर्णन है कि उस अन्धकार लोक से जीव निकल कर पुनः अन्य लोक में जाते हैं या नही।

योगदर्शन व्यासभाष्य[४४] में १. महाकाल २. अम्बरीष ३. रौरव ४. महारौरव ५. कालसूत्र ६ अन्धतामिस्र ७. अवीचि, इन सात नरको के नाम निर्दिष्ट है। वहाँ पर जीवों को अपने कृत कर्मों के कटु फल प्राप्त होते हैं। नारकीय जीवों की आयु भी अत्यधिक लम्बी होती है। दीर्घ-आयु भोग कर वहाँ से जीव पुनः निकलते हैं। ये नरक पाताल लोक के नीचे अवस्थित हैं।[४५] योगदर्शन व्यासभाष्य की टीका मे इन नरकों के अतिरिक्त कुम्भीपाक आदि उप-नरको का भी वर्णन है। वाचस्पति ने उनकी संख्या अनेक लिखी है पर भाष्य वार्तिककार ने उनकी संख्या अनन्त लिखी है।

श्रीमद्भागवत[४६] में नरकों की सख्या अट्ठाईस है। उनमें इक्कीस नरकों के नाम इस प्रकार हैं— १. तामिस्र २. अन्धतामिस्र ३. रौरव ४. महारौरव ५. कुम्भीपाक ६. कालसूत्र ७. असिपत्रवन ८. सूकरमुख ९. अन्धकूप १०. कृमिभोजन ११. संदेश १२. तप्तसूर्मि १३. वज्रकण्टशाल्मली १४. वैतरणी १५. पूयोद १६. प्राणरोध १७. विशसन १८. लालाभक्ष १९. सारमेयादन २०. अवीचि २१. अयःपान।

इन इक्कीस नरकों के अतिरिक्त भी सात नरक और हैं, ऐसी मान्यता भी प्रचलित है। ये इस प्रकार हैं—१. क्षार-कर्दम २. रक्षोगण-भोजन ३. शूलप्रोत ४. दन्दशूक ५. अवटनिरोधन ६. पयोवर्तन ७. सूचीमुख।

इस प्रकार जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परा मे नरको का निरूपण है। नरक जीवों के दारुण कष्टों को भोगने का स्थान है। पापकृत्य करने वाली आत्माएँ नरक में उत्पन्न होती हैं। निरयावलिका में, युद्धभूमि मे मृत्यु को प्राप्त कर नरक में गए श्रेणिक के दस पुत्रो का दस अध्ययनों में वर्णन है। जबकि उनके अन्य

४०. मज्झिमनिकाय, देवदूत सुत्त
४१. जातक अट्ठकथा, खण्ड ३, पृ. २२, खण्ड ५ पृ. २६९
४२. सुत्तनिपात अट्ठकथा, खण्ड १, पृ. ५९
४३. कठोपनिषद् १. १. ३; बृहदारण्यक ४. ४. १०-११; ईशावास्योपनिषद् ३-९
४४. योगदर्शन-व्यासभाष्य, विभूतिपाद २६
४५. गणधरवाद, प्रस्तावना, पृष्ठ १५७
४६. श्रीमद्भागवत (छायानुवाद) पृ. १६४, पंचमस्कंध २६, ५-३६

भ्राता श्रमणधर्म को स्वीकार कर स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए थे। उनकी माताएँ भी श्रमण धर्म को स्वीकार कर मुक्त हुई थीं। पुत्र और माताओं के नाम भी एक सदृश हैं। इस प्रकार निरयावलिका सूत्र यहाँ पर समाप्त होता है।[४७] इस उपांग में मगधनरेश श्रेणिक और उनके वंशजों का विस्तृत वर्णन है। कूणिक का जीवन-परिचय है। वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक के साथ कूणिक के युद्ध का वर्णन है। पुत्र के प्रति पिता का अपार स्नेह भी इसमें वर्णित है, जिससे यह उपांग बहुत ही आकर्षक बन गया है।

कप्पवडंसिया : कल्पावतंसिका

कल्प शब्द का प्रयोग सौधर्म से अच्युत तक जो बारह स्वर्ग है, उनके लिए प्रयुक्त हुआ है।[४८] देवो में उत्पन्न होने वाले जीवों का जिसमें वर्णन है वह कल्पावतंसिका है। इस उपाग में दस अध्ययन हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं --१. पउम, २. महापउम, ३. भद्द, ४. सुभद्द, ५. पउमभद्द, ६. पउमसेन, ७. पउमगुल्म, ८. नलिनी-गुल्म, ९. आणद, १०. नंदन।

निरयावलिका में राजा श्रेणिक के पुत्र कालकुमार, सुकालकुमार आदि दस राजपुत्रों का वर्णन है। उन्ही दस राजकुमारों के दस पुत्रों का वर्णन कल्पावतसिका मे है। दसों राजकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पावन प्रवचन को सुनकर श्रमण बनते हैं। अग साहित्य का गहन अध्ययन करते है। उग्र तप की साधना कर जीवन की साध्य बेला में पडितमरण को वरण करते हैं। सभी स्वर्ग मे जाते हैं। इस प्रकार इस उपाग मे व्रताचरण से जीवन के शोधन की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। जहाँ पिता कषाय के वशीभूत होकर नरक मे जाते है, वहाँ उन्ही के पुत्र सत्कर्मों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं। उत्थान और पतन का दायित्व मानव के स्वयं के कर्मों पर आधृत है। मानव साधना से भगवान् बन सकता है वही विराधना से नरक का कीट भी बन जाता है।

जैन साहित्य में स्वर्ग

भारतीय साहित्य मे जहाँ नरक का निरूपण हुआ है वहाँ स्वर्ग का भी वर्णन है। जैन दृष्टि से देवों के मुख्य चार भेद हैं -- १. भवनपति, २. व्यंतर, ३. ज्योतिष्क और ४. वैमानिक। इनके अवान्तर भेद निन्यानवै है। आगमसाहित्य में उनके सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है। ये देव कहाँ पर रहते है? उनकी कितनी देवियाँ होती हैं? किस प्रकार का वैभव होता है? कितना आयुष्य होता है?[४९] आदि-आदि सभी प्रश्नों पर बहुत ही विस्तार से विवेचन किया गया है।

बौद्ध साहित्य में स्वर्ग

बौद्धपरम्परा मे भी स्वर्ग के सम्बन्ध में वर्णन उपलब्ध है। तथागत बुद्ध से जब कभी कोई जिज्ञासु स्वर्ग के सम्बन्ध मे जिज्ञासा व्यक्त करता तो तथागत बुद्ध उन जिज्ञासुओ से कहते—परोक्ष पदार्थों के सम्बन्ध में चिन्ता न करो।[५०] जो दु:ख और दु:ख के कारण हैं, उनके निवारण का प्रयत्न करो। जब बौद्धधर्म ने दर्शन का

---

४७ एव सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नायव्वा पढमसरिसा, णवर मानाओ सरिसणामा। णिरयावलियाओ समत्ताओ। —निरयावलिया समाप्तिप्रसग

४८ तत्त्वार्थसूत्र ४-३

४९ भगवती, जीवाभिगम, लोकप्रकाश, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र भाष्य, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थ देखें।

५०. (क) दीघनिकाय तेविज्जसुत्त (ख) मज्झिमनिकाय चूलमालुंक्य सुत्त ६३

रूप लिया जब स्वर्ग और नरक का चिन्तन उनके लिये आवश्यक हो गया। बौद्ध विज्ञों ने कथाओं के माध्यम से स्वर्ग, नरक और प्रेत योनि का वर्णन बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। अभिधम्मत्थसंग्रह में सत्त्वों की दृष्टि से कामावचर, रूपावचर और अरूपावचर इन तीन भूमियों के रूप में विभाजन किया है।

तावतिंस, याम, तुसित, निम्मानरति, परिनिम्मितवसवत्ति नाम के देवनिकायों का समावेश कामावचार भूमि में मिलता है।

रूपावचार भूमि में सोलह देवनिकायों का समावेश है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. ब्रह्मपारिसज्ज २. ब्रह्मपुरोहित ३. महाब्रह्म ४. परित्ताभ ५. अप्पमाणाभ ६. आभस्सर ७. परित्तसुभा ८. अप्पमाणसुभा ९. सुभकिण्हा १०. वेहप्फला ११. असञ्ञसत्ता १२. अविहा १३. अतप्पा १४. सुदस्सा १५. सुदस्सी १६. अकनिट्ठा।

अरूपावचार भूमि में उत्तरोत्तर अधिक अधिक सुख वाली चार भूमि हैं—१. आकासानंचायतन २. विञ्ञाणञ्चायतन ३. अकिंचञ्ञायतन ४. नेवसञ्ञाना सञ्ञायतन।

बौद्धों ने देवलोकों के अतिरिक्त प्रेत योनि भी मानी है। पेतवत्थु[५१] ग्रन्थ में उनकी दिलचस्प कथाएं भी हैं। दीघनिकाय के आटानाटिय सुत्त में लिखा है—चुगलखोर, खूनी, लुब्ध, तस्कर, दगाबाज आदि व्यक्ति प्रेतयोनि मे जन्म ग्रहण करते हैं। प्रेत पूर्व जन्म के मकान की दीवार के पीछे चौक में मार्ग में आकर खड़े होते हैं जहाँ पर भोग की व्यवस्था होती है। यदि लोग उनका स्मरण करके भी उन्हे भोग नहीं चढ़ाते हैं तो वे बहुत ही दुःखी होते हैं और जो उन्हें भोग देते हैं, उन्हें वे आशीर्वाद प्रदान करते हैं। प्रेतों के शरीर में सदा जलन होती रहती है। वे सदा भ्रमणशील होते हैं। इनके अतिरिक्त पाली ग्रन्थों में खुप्पिपास, कालञ्जक उतूपजीवी आदि प्रेत जातियो का भी उल्लेख है।[५२]

वैदिक साहित्य में स्वर्ग

वेदों में देव-देवियों का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद आदि के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मानव ने प्राकृतिक वैभव को निहार कर उसमें देव और देवियों की कल्पना की। उषा को देवताओं की माता कहा है।[५३] उसके बाद उषा को द्यु की पुत्री भी मानी है।[५४] अदिति और दक्ष को भी देवताओं के माता-पिता माना गया है।[५५] तो कहीं पर सोम को अग्नि सूर्य इन्द्र विष्णु द्यु और पृथ्वी का जनक कहा है। देवताओं में परस्पर पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी बताया गया है। देव उत्पन्न होते हैं। देवता अमर भी हैं, अमरता उनका स्वाभाविक धर्म भी है, यह उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। देव सोम का पान करके अमर बनते है। यह भी बताया गया है—अग्नि और सविता उन्हें अमरत्व प्रदान करती हैं। देवता नीतिसम्पन्न हैं, वे प्रामाणिक और चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों की रक्षा करते हैं, अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं। शक्ति सौन्दर्य और तेज के वे अधिपति हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में देवताओं का एक निश्चित क्रम निरूपित नहीं है।

सभी देवों का निवास द्युलोक में ही माना गया है। वैदिक ऋषियों ने लोक को तीन भागों में विभक्त किया है। द्यो, वरुण, सूर्य, मित्र, विष्णु दक्ष प्रभृति देव द्युलोक में रहते हैं। इन्द्र, मरुत, रुद्र, पर्जन्य, आपः आदि देव अन्तरिक्ष में निवास करते हैं। अग्नि सोम बृहस्पति आदि देवो का निवास पृथिवी है।

---

५१. पेतवत्थु १-५

५२. Buddhist Conception of Spirits, p. 24

५३. देवानां माता —ऋग्वेद १-११३-१९ ५४. ऋग्वेद १-३०-२२

५५. देवानां पितरं —ऋग्वेद २-२६-३

जो मानव वर्त्तमान जीवन में शुभ कृत्य करता है, वह मानव स्वर्गलोक में जाता है। वहाँ पर उसे प्रचुर मात्रा में अन्न और सोम मिलता है जिससे उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।[५६] कितने ही व्यक्ति विष्णुलोक[५७] में जाते हैं तो कितने ही व्यक्ति वरुणलोक[५८] में जाते हैं। वरुणलोक सर्वोच्च स्वर्ग है।[५९] बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मलोक का आनन्द सर्वाधिक माना है।[६०] बृहदारण्यक[६१] छान्दोग्योपनिषद्[६२] और कौषीतकी उपनिषद्[६३] में देवयान और पितृयान मार्गों का विशद वर्णन है।

पौराणिक युग में तीनों लोकों मे देवों का निवास माना गया है। आचार्य व्यास ने योगदर्शन व्यासभाष्य[६४] के अनुसार पाताल, जलधि और पर्वतों मे असुर, गन्धर्व किन्नर, किंपुरुष, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, अपस्मारक, अप्सरस्, ब्रह्म राक्षस, कृष्माण्ड, विनायक निवास करते हैं। भूलोक के सभी द्वीपो में पुण्यात्मा देवों का निवास है। सुमेरु पर्वत पर देवो के उद्यान हैं। सुधर्मा नाम की देवसभा है, सुदर्शन नामक नगरी है, उस नगरी में वैजयन्त नामक प्रासाद है। अन्तरिक्ष लोक के देवों में ग्रह, नक्षत्र, तारागण आते हैं। त्रिदश, अग्निष्वात्ता, याम्या, तुषित, अपरिनिर्मितवशवर्ती, परिनिर्मितवशवर्ती, महेन्द्र स्वर्ग में इन छह देवों का निवास है। कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अंजनाभ, प्रचिताभ, ये पाच देव निकाय प्रजापति लोक में रहते हैं। ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, ब्रह्ममहाकायिक और अमर, ये चार देव निकाय ब्रह्मा के प्रथम जनलोक में रहते हैं। आभास्वर महाभास्वर, सत्यमहाभास्वर ये तीन देव निकाय ब्रह्मा के द्वितीय तपोलोक मे रहते है। अच्युत, शुद्धनिवास, सत्याभ, संज्ञा-संज्ञी, ये चार देव निकाय ब्रह्मा के तृतीय सत्य लोक मे रहते हैं।

पहले ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन देव माने गए और उसके पश्चात् तेतीस प्रधान देव माने गए। फिर अक्षपाद आदि ने देवो की सख्या तेतीस करोड़ मानी। इस प्रकार देवो के तथा स्वर्ग के सम्बन्ध मे वैदिक परम्परा के महर्षियों की धारणा रही है।[६५] गहराई से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इन धारणाओ में समय-समय पर परिवर्तन और विकास हुआ है। यह स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य मे देव और देवलोक की चर्चाएँ अतीतकाल से ही थी। जैन परम्परा के वाङ्मय में उसका जो व्यवस्थित क्रम मिलता है, उतना व्यवस्थित क्रम न बौद्ध परम्परा के साहित्य में है और न ही वैदिक परम्परा के साहित्य में।

कल्पावतंसिका उपांग मे श्रेणिक के दस पौत्रों की कथाएँ हैं, जिन्होने अपने सत्कृत्यों से स्वर्ग प्राप्त किया था। इसमे व्रताचरण की उपयोगिता बताई है। पिताओं के नरक में रहने पर भी पुत्रों का सत्कर्म से स्वर्गलाभ बताया गया है। पिता का जीवन पतन की ओर बढ़ा और पुत्रों का जीवन उत्थान की ओर। पुरुषार्थ

---

५६. ऋग्वेद ९-११३-७

५७. ऋग्वेद १-१-५४

५८. ऋग्वेद ७-८-५

५९. ऋग्वेद १०-१४-८; १०-१५-७

६०. बृहदारण्यक उपनिषद्, ४-३-३३

६१. बृहदारण्यक उपनिषद् ५-१०-१

६२. छान्दोग्योपनिषद् ४-१५, ५-६; ५।१०।१-६

६३. कौषीतकी १।२-४

६४. योगदर्शन व्यास-भाष्य, विभूतिपाद, २६

६५. हिन्दू धर्म कोश, डा. राजबली पाण्डेय पृ. ३२६, देवता शब्द

से व्यक्ति अपने जीवन के नक्शे को बदल सकता है, यह इस उपांग में स्पष्ट किया गया है। श्रमण भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध के समय मगध में एकतन्त्रीय राज्यप्रणाली थी। यह आगम उस युग की सामाजिक स्थिति को जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

पुप्फिया : पुष्पिका

तृतीय उपांग पुष्पिका है। इस उपांग में भी चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बहुपुत्रिक, पूर्णभद्र, मणिभद्र, दत्त, शिव, बल और अनादृत, ये दस अध्ययन हैं।

प्रथम अध्ययन में वर्णित है—भगवान् महावीर एक बार राजगृह में विराज रहे थे। उस समय ज्योतिष्क इन्द्र चन्द्र भगवान् के दर्शन हेतु आया। उसने विविध प्रकार के नाट्य किये। गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने उसके पूर्व भव का कथन किया। इसी प्रकार दूसरे अध्ययन में सूर्य के भगवान् के समवसरण में विमान सहित आगमन, नाट्य विधि और भगवान् का पूर्वभवकथन आदि का वर्णन है।

तीसरे अध्ययन में शुक्र महाग्रह का वर्णन है। इस अध्ययन में भगवान् महावीर के दर्शन हेतु शुक्र आया और पूर्ववत् नाट्यविधि दिखाकर पुन: अपने स्थान पर लौट गया। भगवान् ने उसके पूर्वभव का कथन करते हुए कहा—यह वाराणसी में सोमिल नामक ब्राह्मण था। वेदशास्त्रो में निष्णात था। एक बार भगवान् पार्श्व वाराणसी पधारे। सोमिल, भगवान् पार्श्व के दर्शन हेतु गया और उसने भगवान् से प्रश्न किये—भगवन्! आपकी यात्रा है? आपके यापनीय है? सरिसव, मास और कुलत्थ भक्ष्य हैं या अभक्ष्य? आप एक हैं या दो है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर भगवान् ने स्याद्वाद की भाषा में दिया।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह सोमिल जिसने भगवान् पार्श्व से प्रश्न किये और भगवतीसूत्र के १८वें शतक के १०वें उद्देशक में वर्णित सोमिल ब्राह्मण, जिसने इसी प्रकार के प्रश्न भगवान् महावीर से किये थे, दोनों दो भिन्न व्यक्ति थे। क्योंकि भगवान् पार्श्व से प्रश्न करने वाला सोमिल ब्राह्मण वाराणसी का था और महावीर से प्रश्न करने वाला सोमिल ब्राह्मण वाणिज्यग्राम का था। काल व घटना की दृष्टि से भी दोनों पृथक्-पृथक् ही सिद्ध होते हैं। नामसाम्य से भ्रम में पड़ना उचित नहीं।

भगवान् पार्श्व के वाराणसी से विहार करने के पश्चात् सोमिल कुसंगति के कारण पुन: मिथ्यात्वी बन गया और उसने दिशाप्रोक्षक तापसों के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। प्रस्तुत कथानक में चालीस प्रकार के तापसों का विवरण प्राप्त होता है। उनमें से कितने ही तापस इस प्रकार थे—

१. केवल एक कमण्डलु धारण करने वाले।
२. केवल फलो पर निर्वाह करने वाले।
३. एक बार जल में डुबकी लगाकर तत्काल बाहर निकलने वाले।
४. बार-बार जल में डुबकी लगाने वाले।
५. जल में ही गले तक डूबे रहने वाले।
६. सभी वस्त्रों, पात्रों और देह को प्रक्षालित रखने वाले।
७. शख-ध्वनि कर भोजन करने वाले।
८. सदा खड़े रहने वाले।
९. मृग-मांस के भक्षण पर निर्वाह करने वाले।
१०. हाथी का मांस खाकर रहने वाले।

११. सदा ऊँचा दण्ड किये रहने वाले।
१२. वल्कल-वस्त्र धारण करने वाले।
१३. सदा पानी में रहने वाले।
१४. सदा वृक्ष के नीचे रहने वाले।
१५. केवल जल पर निर्वाह करने वाले।
१६. जल के ऊपर माने वाली शैवाल खाकर जीवन चलाने वाले।
१७. वायु भक्षण करने वाले।
१८. वृक्ष-मूल का आहार करने वाले।
१९. वृक्ष के कन्द का आहार करने वाले।
२०. वृक्ष के पत्तों का आहार करने वाले।
२१. वृक्ष की छाल का आहार करने वाले।
२२. पुष्पों का आहार करने वाले।
२३. बीजों का आहार करने वाले।
२४. स्वतः टूट कर गिरे पत्रों-पुष्पों और फलों का आहार करने वाले।
२५. दूसरों के द्वारा फैंके हुए पदार्थों का आहार करने वाले।
२६. सूर्य की आतापना लेने वाले।
२७. कष्ट सहकर शरीर को पत्थर जैसा कठोर बनाने वाले।
२८. पंचाग्नि तापने वाले।
२९. गर्म बर्तन पर शरीर को परितप्त करने वाले।

ये तापसों के विविध रूप और साधना के ये विविध प्रकार इस बात के द्योतक हैं कि उस युग में तापसों का ध्यान कायक्लेश और हठयोग की ओर अधिक था। वे सोचते थे—यही मोक्ष का मार्ग है। भगवान् पार्श्वनाथ ने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार की हठयोग-साधना का खण्डन किया था। भगवान् ने कहा—तप के साथ ज्ञान आवश्यक है। अज्ञानियों का तप ताप है। इन तापसों का किन दार्शनिक परम्पराओं से सम्बन्ध था, यह अन्वेषणीय है। मैंने औपपातिकसूत्र और ज्ञातासूत्र की प्रस्तावना में तापसों के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है, अतः विशेष जिज्ञासु उन प्रस्तावनाओं का अवलोकन करें।

चतुर्थ अध्ययन में बहुत ही सरस और मनोरंजक कथा है। जब भगवान् महावीर राजगृह में थे तब बहुपुत्रिका नाम देवी समवसरण में आती है और वह अपनी दाहिनी भुजा से १०८ देवकुमारो को और बांयी भुजा से १०८ देवकुमारियों को निकालती है, तथा अन्य अनेक बालक-बालिकाओं को निकालती है और नाटक करती है। गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् उसका पूर्व भव सुनाते हैं—भद्र नाम सार्थवाह की पत्नी सुभद्रा थी। वंध्या होने से वह बहुत खिन्न रहती थी और सदा मन में यह चिन्तन करती थी कि वे माताएँ धन्य हैं जो अपने प्यारे पुत्रों पर वात्सल्य बरसाती हैं और सन्तानजन्य अनुपम आनन्द का अनुभव करती हैं। मै भाग्यहीन हूँ। एक बार वाराणसी में सुव्रता आर्या अपनी शिष्याओं के साथ आई। सन्तानोत्पत्ति के लिए आर्यिकाओं से सुभद्रा ने उपाय पूछा। आर्यिकाओं ने कहा—इस प्रकार का उपाय वगैरह बताना हमारे नियम के प्रतिकूल है। आर्यिकाओ के उपदेश से सुभद्रा श्रमणी बनी पर उसका बालकों के प्रति अत्यन्त स्नेह था। वह बालकों का उबटन करती, शृंगार करती, भोजन कराती, जो श्रमणमर्यादाओं के प्रतिकूल था। वह सद्गुरुनी की आज्ञा की अवहेलना कर

एकाकी रहने लगी। वह बिना आलोचना किए आयु पूर्ण कर सौधर्म कल्प में बहुपुत्रिका देवी हुई। वहाँ से वह सोमा नामक ब्राह्मणी होगी। उसके सोलह वर्ष के वैवाहिक जीवन में बत्तीस सन्तान होगी, जिससे वह बहुत परेशान होगी। वहाँ पर भी श्रमणधर्म को ग्रहण करेगी। मृत्यु के पश्चात् देव होगी और अन्त में मुक्त होगी।

इस प्रकार इस कथा में कौतूहल की प्रधानता है। सांसारिक मोह-ममता का सफल चित्रण हुआ है। कथा के माध्यम से पुनर्जन्म और कर्मफल के सिद्धान्त को भी प्रतिपादित किया गया है।

स्थानाङ्ग में वर्णन

स्थानांग सूत्र के १०वें स्थान में दीर्घदशा के दश अध्ययन इस प्रकार बताये हैं—१. चन्द्र २ सूर्य ३. शुक्र ४. श्रीदेवी ५. प्रभावती ६. द्वीपसमुद्रोपपत्ति ७. बहुपुत्री मन्दरा ८. स्थविर सम्भूतविजय ९. स्थविर पक्ष्म १०. उच्छ्वास-निःश्वास।[६६]

आचार्य अभयदेव ने दीर्घदशा को स्वरूपतः अज्ञात बतलाया है और दीर्घदशा के अध्ययनों के सम्बन्ध में कुछ सम्भावनायें प्रस्तुत की हैं।[६७] नन्दी की आगम-सूची में भी इनका उल्लेख नहीं है। दीर्घदशा में आते हुए पांच अध्ययनों का नामसाम्य निरयावलिका के साथ है। दीर्घदशा में चन्द्र, सूर्य, शुक्र और श्रीदेवी अध्ययन हैं, तो निरयावलिका में चन्द्र तीसरे वर्ग का पहला अध्ययन है। सूर्य, तीसरे वर्ग का दूसरा अध्ययन है। शुक्र, तीसरे वर्ग का तीसरा अध्ययन है। श्रीदेवी चौथे वर्ग का पहला अध्ययन है। दीर्घदशा मे बहुपुत्री मन्दरा सातवाँ अध्ययन है तो निरयावलिका में बहुपुत्रिका, यह तीसरे वर्ग का चौथा अध्ययन है।

आचार्य अभयदेव ने स्थानांग वृत्ति में निरयावलिका के नामसाम्य वाले पांच और अन्य दो अध्ययनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। और शेष तीन अध्ययनों को अप्रतीत कहा है।[६८] आचार्य अभयदेव के अनुसार इन अध्ययनों का संक्षेप मे विवरण इस प्रकार है —

चन्द्र—भगवान् महावीर राजगृह में समवसृत थे। ज्योतिष्कराज चन्द्र का आगमन, नाट्यविधि का प्रदर्शन। गौतम गणधर की जिज्ञासा पर महावीर ने कहा—वह पूर्वभव में श्रावस्ती नगरी में अंगति नामक श्रावक था। पार्श्वनाथ के पास दीक्षित हुआ। श्रामण्य की एक बार विराधना की, वहाँ से मर कर यह चन्द्र हुआ।

सूर्य—यह पूर्वभव मे श्रावस्ती नगरी में सुप्रतिष्ठित नाम का श्रावक था। पार्श्वनाथ के पास संयम लिया। विराधना करके सूर्य हुआ।

शुक्र—शुक्र गृह भगवान् को नमस्कार कर लौटा। गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने कहा—यह पूर्वभव में वाराणसी में सोमिल ब्राह्मण था। दिक्प्रोक्षक तापस बना। विविध तप करने लगा। एक बार उसने यह प्रतिज्ञा की —जहाँ कहीं मैं गड्ढे मे गिर जाऊँगा, वही प्राण छोड़ दूंगा। इस प्रतिज्ञा को लेकर काष्ठमुद्रा से मुँह को बाँध कर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। पहले दिन एक अशोक वृक्ष के नीचे होम आदि से निवृत्त होकर बैठा था। उस समय एक देव ने वहाँ प्रकट होकर कहा— अहो सोमिल ब्राह्मण महर्षे ! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है। पांच दिनों तक भिन्न-भिन्न स्थानों में उसको यही देववाणी सुनाई दी। पांचवें दिन उसने देव से पूछा—मेरी

---

६६. स्थानाङ्ग १० सू. ११९

६७. दीर्घदशाः स्वरूपतोऽनवगता एव, तदध्ययनानि तु कानिचिन्नरकावलिकाश्रुतस्कन्धे उपलभ्यन्ते।
—स्थानाङ्ग, पत्र ४८५

६८. शेषाणि त्रीण्यप्रतीतानि। —स्थानांगवृत्ति, पत्र ४८६

प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है ? उत्तर में देव ने कहा—तुमने अपने गृहीत अणुव्रतों की विराधना की है । अभी भी समय है । उसे पुनः स्वीकार करो । देव के कहने से तापस ने वैसा ही किया । श्रावकत्व का पालन कर यह शुक्र देव बना है ।

श्रीदेवी—एक बार श्रीदेवी भगवान् महावीर को वन्दन करने के लिए राजगृह में आई । जब वह नाटक दिखाकर लौट गई तो गणधर गौतम ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पूछा । भगवान् ने कहा—राजगृह में सुदर्शन श्रेष्ठी की ज्येष्ठ पुत्री का नाम भूता था । वह पार्श्वनाथ के पास प्रव्रजित हुई पर उसका अपने शरीर पर ममत्व था । वह उसकी सार-सम्भाल में लगी रहती । उसने अतिचार की आलोचना नहीं की । मरकर सौधर्म देवलोक में देवी हुई ।

बहुपुत्रिका—यह देवी भगवान् को वन्दन करने राजगृह में आई । भगवान् ने इसका पूर्वभव बताते हुए कहा—वाराणसी नगरी में भद्र सार्थवाह था । सुभद्रा उसकी भार्या थी । वह वन्ध्या थी । उसके मन में सन्तान की प्रबल इच्छा थी । साध्वियाँ एक बार भिक्षा के लिए गई । उनसे पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा । उन्होंने धर्म की बात कही । वह प्रव्रजित हुई । दीक्षित होने पर भी वह बालकों से बहुत प्यार करती । अतिचार का सेवन किया । मरकर सौधर्म मे देवी हुई ।

प्रस्तुत उपांग में जो चरित्र हैं वे कथा की दृष्टि से सांगोपांग नहीं है । कथा का उतना ही भाग दिया गया है जितने से उनके नायकों के परलोक के जीवन पर प्रकाश पडता है । वर्तमान जीवन का चित्रण बहुत ही कम हुआ है । जीवन के मर्मस्थल को यत्र-तत्र छूआ गया है । साधकों की साधना इतनी अधिक प्रबल है कि उसमें कथातत्त्व दब गया है । तथापि यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस उपाग की कथाओं से स्वसमय और परसमय का ज्ञान सहज हो जाता है ।

पुप्फचूला : पुष्पचूला

इस उपांग के भी दस अध्ययन हैं । इन दस अध्ययनों के नाम इस प्रकार हैं—१. श्रीदेवी २. ह्रीदेवी ३. धृतिदेवी ४. कीर्तिदेवी ५. बुद्धिदेवी ६. लक्ष्मीदेवी ७. इलादेवी ८. सुरादेवी ९ रसदेवी १० गन्धदेवी ।

प्रथम अध्ययन की कथा का सार इस प्रकार है—एक बार भगवान् महावीर राजगृह नगर में विराजमान थे । श्रीदेवी सौधर्म कल्प से दर्शनार्थ आई । उसने दिव्य नाटक किए । गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने कहा—पूर्वभव में यह सुदर्शन श्रेष्ठी की भूता नामक पुत्री थी । युवावस्था मे भी वह वृद्धा दिखाई देती थी जिससे उसका पाणिग्रहण नही हो सका । भगवान् पार्श्व का आगमन हुआ । भूता ने महासती पुष्पचूलिका के पास श्रमण धर्म स्वीकार किया । परन्तु भूता रात-दिन अपने शरीर को सजाने में लगी रहती । पुष्पचूलिका आर्यिका ने उसे बताया कि यह श्रमणाचार नही है । इन पापों की आलोचना कर तुम्हे शुद्धिकरण करना चाहिए । परन्तु उसने आज्ञा की अवहेलना की और पृथक् रहने लगी । बिना आलोचना किए मरकर यह श्रीदेवी हुई । तत्पश्चात् वह महाविदेह में जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करेगी ।

इसी प्रकार अवशिष्ट नौ अध्ययनों ह्री देवी, धृति देवी, कीर्ति देवी आदि का वर्णन है । वे सभी सौधर्म कल्प मे निवास करने वाली थीं । वे सभी पूर्व भव में भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्या पुष्पचूला के पास दीक्षित हुई थीं और सभी शौच-क्रिया प्रधान थी । शरीर आदि की शुद्धि पर उनका विशेष लक्ष्य था । ये सभी देविया देवलोक से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र से सिद्धि प्राप्त करेंगी ।

इस प्रकार उपांग में भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित होने वाली दस श्रमणियों की चर्चा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपांग का अत्यधिक महत्त्व है। वर्तमान युग में भी साध्वियों का इतिहास मिलने में कठिनता हो रही है तो इस उपांग में भगवान् पार्श्व के युग की साध्वियों का वर्णन है। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि जितनी भी विशिष्ट शक्तियां हैं, उनकी अधिष्ठात्री देवियां हैं।

वण्हिदसा (वृष्णिदशा)

नन्दी चूर्णि के अनुसार प्रस्तुत उपांग का नाम अंधकवृष्णिदशा था। बाद में उसमें से 'अधक' शब्द लुप्त हो गया। केवल वृष्णिदशा ही अवशेष रहा। आज यह उपांग इसी नाम से विश्रुत है। इस उपांग में वृष्णिवंशीय बारह राजकुमारों का वर्णन बारह अध्ययनों के द्वारा किया गया है। उन अध्ययनों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१. निषध कुमार, २. मातली कुमार, ३. वह कुमार, ४. वेहकुमार, ५. प्रगति (पजय) कुमार, ६. ज्योति (युचिकि) कुमार, ७. दशरथ कुमार, ८. दृढ़रथ कुमार, ९. महाधनु कुमार, १०. सप्तधनु कुमार, ११. दशधनु कुमार, १२. शतधनु कुमार।

द्वारका में वासुदेव श्रीकृष्ण का राज्य था। राजा बलदेव की रानी रेवती थी। उसने निषध कुमार को जन्म दिया। भगवान् अरिष्टनेमि एक बार द्वारका में पधारे। उनका आगमन सुन श्रीकृष्ण ने सामुदानिक भेरी द्वारा भगवान् के आगमन की उद्घोषणा करवायी और सपरिवार दल-बल सहित वे वन्दना के लिये गये। निषध कुमार भी भगवान् को नमस्कार करने के लिये पहुंचा। निषध कुमार के दिव्य रूप को देखकर भगवान् अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य वरदत्त मुनि ने उसके दिव्यरूप आदि के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने बताया कि रोहीतक नगर में महाबल राजा राज्य करता था। उसकी रानी पद्मावती से वीरांगद नाम का पुत्र हुआ। युवावस्था में वह मनुष्य सम्बन्धी भोगो को भोग रहा था। एक बार सिद्धार्थ आचार्य उस नगर में आये। उनका उपदेश श्रवण कर वीरांगद ने श्रवण-प्रव्रज्या ग्रहण की। अनेक प्रकार के तपादि अनुष्ठान किए और ११ अङ्गों का अध्ययन किया। इस प्रकार ४५ वर्ष तक श्रमणपर्याय का पालन किया। उसके बाद दो मास की संलेखना कर पापस्थानकों की आलोचना और शुद्धि करके समाधिभाव से कालधर्म प्राप्त करके ब्रह्म नामक पांचवें देवलोक मे देव हुआ। वहां देवायु पूर्ण करके यहां यह निषध कुमार के रूप में उत्पन्न हुआ है और ऐसी मानुषी ऋद्धि प्राप्त की है। यह निषध कुमार भगवान् अरिष्टनेमि के समीप अनगार होकर कालान्तर मे निर्वाणप्राप्त हुए।

इसी प्रकार अन्य अध्ययनों में भी प्रसंग हैं। इस प्रकार वृष्णिदशा का समापन हुआ।[६९]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वृष्णिदशा में यदुवंशीय राजाओं के इतिवृत्त का अंकन है। इसमें कथा-तत्त्वो की अपेक्षा पौराणिक तत्त्वों का प्राधान्य है। भगवान् अरिष्टनेमि का महत्त्व कई दृष्टियों से प्रतिपादित किया गया है। इसमें आए हुए यदुवंशीय राजाओं की तुलना श्रीमद् भागवत में आए हुए यदुवंशीय चरित्रों से की जा सकती है। हरिवंश पुराण के निर्माण के बीज भी यहां पर विद्यमान हैं। वृष्णिवंश की, जिसका आगे जाकर हरिवंश नामकरण हुआ, स्थापना हरि नामक पूर्व पुरुष से हुई, इसलिये स्पष्ट है कि वृष्णिवंश, हरिवंश का ही एक अंग है।

प्रस्तुत उपांग के उपसंहार में लिखा है—निरयावलिका श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ। उपांग समाप्त हुए।

---

६९. एवं सेसा वि एकारस अज्झयणा नेयव्वा संगहणीअणुसारेणं अहीणमइरित्तं एक्कारससु वि।

—वृष्णिदशा सूत्र, अन्तिम अंश

निरयावलिका उपांग का एक ही श्रुतस्कन्ध है। इसके पाँच वर्ग हैं। ये पाँच वर्ग पाँच दिनों में उपदिष्ट किये जाते हैं। पहले से चौथे तक के वर्गों में दस-दस अध्ययन हैं और पांचवें वर्ग में बारह अध्ययन हैं। निरयावलिका श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।[७०]

यहाँ यह चिन्तनीय है कि निरयावलिका के उपसंहार में निरयावलिका की समाप्ति की सूचना दी गई। पुनः वृष्णिदशा के अन्त में भी निरयावलिका के समाप्त होने की सूचना दी गई है। दो बार एक ही बात की सूचना कैसे आई? इस सूचना में उपांग समाप्त हुए यह भी सूचन किया गया है। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि वर्तमान में जो पृथक्-पृथक् कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा, ये पाँचों उपांग किसी समय एक ही उपांग के रूप में प्रतिष्ठित थे।

व्याख्यासाहित्य

कथाप्रधान होने के कारण निरयावलिका पर न निर्युक्तियाँ लिखी गई, न भाष्य और न चूर्णियों का ही निर्माण हुआ। केवल श्रीचन्द्रसूरि ने संस्कृत भाषा में निरयावलिका कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूला और वृष्णिदशा पर संक्षिप्त और शब्दार्थस्पर्शी वृत्ति लिखी है। श्रीचन्द्रसूरि का ही अपर नाम पार्श्वदेवगणि था। ये शीलभद्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने विक्रम संवत् ११७४ में निशीथचूर्णि पर दुर्गपद व्याख्या लिखी थी और श्रमणोपासकप्रतिक्रमण, नन्दी, जीतकल्प बृहच्चूर्णि आदि आगमों पर भी इनकी टीकाएँ हैं। प्रस्तुत आगमों की वृत्ति के प्रारम्भ में आचार्य ने भगवान् पार्श्व को नमस्कार किया—

> पार्श्वनाथं नमस्कृत्य प्रायोऽन्यग्रन्थवीक्षिता।
> निरयावलिश्रुत स्कन्ध-व्याख्या काचित् प्रकाश्यते॥

वृत्ति के अन्त में वृत्तिकार ने न स्वयं का नाम दिया है, न अपने गुरु का ही निर्देश किया है, न वृत्ति के लेखन का समय ही सूचित किया है। ग्रन्थ की जो मुद्रित प्रति है उसमें 'इति श्रीचन्द्रसूरि विरचित निरयावलिका-श्रुतस्कन्धविवरणं समाप्तमिति। श्रीरस्तु।' इतना उल्लेख है। वृत्ति का ग्रन्थमान ६०० श्लोक प्रमाण है।

दूसरी संस्कृत टीका का निर्माण किया है स्थानकवासी जैन परम्परा के आचार्य घासीलालजी महाराज ने। उनकी टीका सरल और सुबोध है। इस टीका में राजा कूणिक के पूर्वभव का भी वर्णन है। और भी कई प्रसंग हैं। इन दो संस्कृत टीकाओं के अतिरिक्त इन आगमों पर अन्य कोई सस्कृत टीकाएँ नही लिखी गई हैं।

सन् १९२२ में आगमोदय समिति सूरत ने चन्द्रसूरिकृत वृत्ति सहित निरयावलिका का प्रकाशन किया। इससे पूर्व, सन् १८८५ में आगमसंग्रह बनारस से चन्द्रसूरिकृत वृत्ति, गुजराती विवेचन के साथ, एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। सन् १९३२ में श्री पी. एल. वैद्य, पूना एवं सन् १९३४ में ए. एस. गोपाणी और वी. जे. चोकसी अहमदाबाद द्वारा प्रस्तावना के साथ वृत्ति प्रकाशित की गई। वि. स. १९९० में मूल व टीका के गुजराती अर्थ के साथ जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर द्वारा एक संस्करण प्रकाशित हुआ। सन् १९३४ में गुर्जर ग्रन्थ कार्यालय अहमदाबाद से भावानुवाद निकला। वीर सं. २४४५ मे हिन्दी अनुवाद के साथ हैदराबाद से आचार्य अमोलक ऋषि जी म. ने एक संस्करण निकाला था। सन् १९६० मे जैन शास्त्रोद्धारक समिति, राजकोट से आचार्य घासीलालजी महाराज ने संस्कृत व्याख्या हिन्दी और गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित करवाया। पुप्फभिक्खुजी

७०. निरयावलिया, (वहिन्दसा), अन्तिम भाग

ने सन् १९५४ में ३२ आगमों के साथ इन आगमों का भी प्रकाशन करवाया। इस तरह निरयावलिका और शेष उपांगों का समय-समय पर प्रकाशन हुआ है।

प्रस्तुत संस्करण

श्रमणसंघीय युवाचार्य मधुकर मुनिजी महाराज के कुशल नेतृत्व में आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा ३२ आगमों के प्रकाशन का महान् कार्य चल रहा है। इस आगम प्रकाशन माला से अभी तक अनेक आगम विविध विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं। जिन आगमों की मूर्धन्य मनिषियों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, उसी आगम माला के प्रकाशन की कड़ी की लड़ी में निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूला और वृष्णिदशा इन पाँचों उपांगों का एक जिल्द में प्रकाशन हो रहा है। इसमें शुद्ध मूलपाठ है, अर्थ है और परिशिष्ट हैं। इसके अनुवादक और सम्पादक हैं—देवकुमार जैन, जो पहले अनेक ग्रन्थों का सम्पादन कर चुके हैं। सम्पादन का श्रम यत्र-तत्र मुखरित हुआ है। साथ ही सम्पादनकलाममंज्ञ, लेखन-शिल्पी पंडित शोभाचन्दजी भारिल्ल की सूक्ष्म-मेधा-शक्ति का चमत्कार भी दृग्गोचर होता है।

प्रस्तावना लिखते समय स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक व्यवधान उपस्थित हुए जिनके कारण चाहते हुए भी अधिक विस्तृत प्रस्तावना मैं नहीं लिख सका। इस आगम मे ऐसे अनेक जीवन-बिन्दु हैं जिनकी तुलना अन्य ग्रन्थों के साथ सहज की जा सकती है। इन आगमों में भगवान् महावीर, भगवान् पार्श्व और भगवान् अरिष्टनेमि के युग के कुछ पात्रों का निरूपण है। तथापि संक्षेप में कुछ पंक्तियाँ लिख गया हूँ। आशा है जिज्ञासुओं के लिए ये पंक्तियाँ सम्बल रूप में उपयोगी होंगी। परम श्रद्धेय राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी उपाध्याय पूज्य, गुरुदेव श्री पुष्कर-मुनिजी महाराज के हार्दिक आशीर्वाद के कारण ही आगम साहित्य में अवगाहन करने के सुनहरे क्षण प्राप्त हुए हैं, जिसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि पूर्व आगमों की तरह ये आगम भी पाठकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ की तरह उपयोगी सिद्ध होंगे।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

जैन स्थानक
मदनगंज
दि. ६-११-८३

विषयानुक्रम

प्रथम वर्ग : कल्पिका (निरयावलिका)

प्रथम अध्ययन

द्वितीय वर्ग : कल्पावतंसिका

तृतीय वर्ग : पुष्पिका

तृतीय अध्ययन

चतुर्थ अध्ययन : बहुपुत्रिका देवी

पंचम अध्ययन : पूर्णभद्र देव

षष्ठ अध्ययन : मणिभद्र देव

अध्ययन ७ से १०

चतुर्थ वर्ग : पुष्पचूलिका

पंचम वर्ग : वह्निदशा

निरयावलियाओ

निरयावलिका

।। निरयावलियाओ ।।

१

प्रथम वर्ग : कल्पिका

प्रथम अध्ययन

राजगृहनगर, चैत्य, अशोकवृक्ष, पृथ्वीशिलापट्टक

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था। रिद्धित्थिमियसमिद्धे गुणसिलए चेइए। [वण्णओ] असोगवरपायवे पुढविसिलापट्टए ।।

[१] उस काल अर्थात् चौथे आरे में और उस समय में अर्थात् भगवान् महावीर जब इस धरा पर विचरण कर रहे थे, राजगृह नाम का नगर था। वह धन-धान्य, वैभव आदि ऋद्धि-समृद्धि से सम्पन्न था। वहाँ उसके उत्तर-पूर्व में गुणशिलक चैत्य था। उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिये।[1] वहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था और उसके नीचे एक पृथ्वीशिलापट्टक रखा था। औपपातिक सूत्र के अनुसार इनका वर्णन समझ लेना चाहिए।[2]

विवेचन—इस सूत्र में औपपातिक सूत्र के अतिदेशपूर्वक नगर आदि का वर्णन करने का संकेत किया है। उसका संक्षेप में सारांश इस प्रकार है—

राजगृहनगर—भवनादि वैभव से सम्पन्न, सुशासित, सुरक्षित एवं धन-धान्य से समृद्ध था। वहाँ नगर-जन और जानपद प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते थे। निकटवर्ती कृषिभूमि अतीव रमणीय थी। उसके चारों ओर पास-पास ग्राम बसे हुए थे। सुन्दर स्थापत्य कला से सुशोभित चैत्यों और पण्यतरुणियों के सन्निवेशों का वहाँ बाहुल्य था। तस्करों आदि का अभाव होने से नगर क्षेमरूप सुख-शांतिमय था। सुभिक्ष होने से भिक्षुओं को वहाँ सुगमता से भिक्षा मिल जाती थी। वह नट-नर्तक आदि मनोरंजन करने वालों से व्याप्त-सेवित था। उद्यानों आदि की अधिकता से नन्दन-वन-सा प्रतीत होता था। सुरक्षा की दृष्टि से वह नगर खात, परिखा एवं प्राकार से परिवेष्टित था। नगर में शृंगाटक—सिंघाड़े जैसे आकार वाले त्रिकोणाकार, चौराहे तथा राजमार्ग बने थे। वह नगर अपनी सुन्दरता से दर्शनीय, मनोरम और मनोहर था।

---

१. औप. पृष्ठ ४, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

२. औप. पृष्ठ १२, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

गुणशिलक चैत्य—नगर के बाहर ईशान कोण में था। वह चैत्य अत्यन्त प्राचीन था, विख्यात था। भेंट के रूप में प्रचुर धन-सम्पत्ति उसे प्राप्त होती थी। जनसमूह द्वारा प्रशंसित था। छत्र, ध्वजा, घंटा, पताका आदि से परिमंडित था। उसका आँगन लिपा-पुता था और दीवालों पर लम्बी-लम्बी मालाएँ लटकी रहती थी। वहाँ स्थान-स्थान पर गोरोचन, चंदन आदि के थापे लगे हुए थे। काले अगर आदि की धूप की मघमघाती महक से वहाँ का वातावरण गंधवर्तिका जैसा प्रतीत होता था। नट, नर्तक, भोजक; मागध-चारण आदि यशोगायकों से व्याप्त रहता था। दूर-दूर तक के देशवासियों में उसकी कीर्ति बखानी जाती थी और बहुत से लोग वहाँ मनौती पूर्ण होने पर 'जात' देने आते थे। वे उसे अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, कल्याणकारक, मंगलरूप एवं दिव्य मानकर विशेष रूप से उपासनीय मानते थे। विशेष पर्व-त्यौहारों पर हजारों प्रकार की पूजा-उपासना वहाँ की जाती थी। बहुत से लोग वहाँ आकर जय-जयकार करते हुए उसकी पूजा-अर्चना करते थे।

वनखण्ड—वह गुणशिलक चैत्य चारों ओर से एक वनखण्ड से घिरा हुआ था। वृक्षों की सघनता से वह काला, काली आभावाला, शीतल, शीतल आभावाला, सलौना एवं सलौनी आभावाला दिखता था। वहाँ के सघन एव विशाल वृक्षों की शाखाओं-प्रशाखाओं के परस्पर गुंथ जाने से ऐसा रमणीक दिखता था मानों सघन मेघघटाएँ घिरी हुई हों।

अशोकवृक्ष—उस वनखण्ड के बीचों-बीच एक विशाल एवं रमणीय अशोकवृक्ष था। वह उत्तम मूल, कंद, स्कन्ध, शाखाओं, प्रशाखाओं, प्रवालों, पत्तों, पुष्पों और फलों से सम्पन्न था। उसका सुघड और विशाल तना इतना विशाल था कि अनेक मनुष्यों द्वारा भुजाएँ फैलाए जाने पर भी घेरा नहीं जा सकता था। उसके पत्ते एक दूसरे से सटे हुए, अधोमुख और निर्दोष थे। नवीन पत्तों, कोमल किसलयों आदि से उसका शिखर भाग सुशोभित था। तोता, मैना, तीतर, वटेर, कोयल, मयूर आदि पक्षियों के कलरव से गूँजता रहता था। वहाँ मधुलोलुप भ्रमर-समूह मस्ती में गुनगुनाते रहते थे। उसके आस-पास में अन्यान्य वृक्ष, लताकुंज, मंडप आदि शोभायमान थे। वह अतीव तृप्तिप्रद विपुल सुगंध को फैला रहा था। अतिविशाल परिधिवाला होने से उसके नीचे अनेक रथ, डोलियाँ, पालकियाँ आदि ठहर सकती थी।

पृथ्वीशिलापट्टक—उस अशोक वृक्ष के नीचे स्कन्ध से सटा हुआ एक पृथ्वीशिलापट्टक रक्खा था। उसका वर्ण काला था और उसकी प्रभा अंजन, मेघमाला, नीलकमल, केशराशि खंजनपक्षी, सींग के गर्भभाग, जामुन के फल अथवा अलसी के फूल जैसी थी। वह अतीव स्निग्ध था। वह अष्टकोण था और दर्पण के समान सम, सुरम्य एवं चमकदार था। उस पर ईहामृग-भेड़िया, वृषभ, अश्व, मगर, विहग (पक्षी), व्याल (सर्प), किन्नर, रुरु (हिरण विशेष) शरभ, कुंजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र-विचित्र चित्राम बने हुए थे। उसका स्पर्श मृगछाला, रुई, मक्खन और अर्कतूल (आक की रुई) आदि के समान सुकोमल था। इस प्रकार का वह शिलापट्टक मनोरम, दर्शनीय मोहक और अतीव मनोहर था।[1]

---

१. नगर, चैत्य, अशोकवृक्ष, पृथ्वीशिलापट्टक के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए औप. सूत्र पृष्ठ ४-१२ आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर.

आर्य सुधर्मा स्वामी का पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तेवासी अज्जसुहम्मे नामं अणगारे जाइसंपन्ने, जहा केसी [जाव] पञ्चहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, जेणेव रायगिहे नयरे, [जाव] अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं [तवसा अप्पाणं भावेमाणे] जाव विहरइ। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया॥

[२] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी (शिष्य) जाति (मातृपक्ष), कुल (पितृपक्ष) इत्यादि से सम्पन्न आर्य सुधर्मास्वामी नामक अनगार यावत् पांच सौ अनगारों के साथ पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ पधारे यावत् यथाप्रतिरूप (साधुमर्यादानुरूप) अवग्रह (वसति) प्राप्त करके संयम एवं तपश्चर्या से यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उनका शेष वर्णन केशीकुमार के समान जानना चाहिए।

उनके दर्शनार्थ परिषद् निकली—जनसमूह नगर से आया। आर्य सुधर्मा ने धर्मोपदेश दिया और परिषद् वापिस लौट गई।

विवेचन—प्रस्तुत पाठ में तीन विषयों का उल्लेख किया गया है—

(१) श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मास्वामी का राजगृह नगर में पधारना। उनकी वंदना करने के लिए तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए राजगृह नगर के जनसमूह का पहुंचना। (२) आर्य सुधर्मास्वामी द्वारा धर्मदेशना देना और (३) धर्मोपदेश सुनकर जनसमूह का वापिस नगर में लौट जाना।

आर्य सुधर्मास्वामी का परिचय देने के लिए केशीकुमार श्रमण का उल्लेख किया गया है। उसका आशय यह है कि भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा के केशीकुमार श्रमण का वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र में विस्तार से किया गया है। वह समस्त वर्णन एवं उनके माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त किए गए विशेषण आर्य सुधर्मास्वामी के लिए भी समझ लेने चाहिए।[1]

जम्बू अनगार की जिज्ञासा

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अन्तेवासी जम्बू नामं अणगारे समचउरंससंठाणसंठिए, [जाव] संखित्तविउलतेउलेस्से अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू, [जाव] विरहइ। तए णं से जम्बू जायसड्ढे, [जाव] पज्जुवासमाणे एवं वयासी— "उवङ्गाणं भंते समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते?"।

"एवं खलु, जम्बू, समणेणं भगवया [जाव] संपत्तेणं एवं उवङ्गाणं पञ्च वग्गा पन्नत्ता। तं जहा—निरयावलियाओ, कप्पवडिंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ॥"

"जइ णं, भंते! समणेणं जाव संपत्तेण उवङ्गाणं पञ्च वग्गा पन्नत्ता, तं जहा—निरया-

---

१. देखें-राजप्रश्नीय सूत्र पृ. १३६ —आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

वलियाओ [जाव] वण्हिदसाओ, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवङ्गाणं निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता ?"

३. उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मास्वामी अनगार के शिष्य समचतुरस्र-संस्थान वाले यावत् अपने अन्तर में विपुल तेजोलेश्या को समाहित किये हुए जम्बू नामक अनगार आर्य सुधर्मास्वामी के न अति निकट, न अति दूर—थोड़ी दूरी पर ऊपर को घुटने किए हुए अर्थात् उत्तान आसन से बैठे हुए और सिर को नमाकर यावत् विचरण कर रहे थे। उस समय जम्बूस्वामी को श्रद्धा-संकल्प—विचार उत्पन्न हुआ यावत् पर्युपासना करते हुए उन्होंने इस प्रकार निवेदन किया—'भदन्त ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त—निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने उपांगों का क्या आशय प्रतिपादन किया है ?'

'जिज्ञासा का समाधान करने के लिए सुधर्मास्वामी ने कहा—'आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने उपांगों के पाँच वर्ग कहे हैं। उनके नाम ये हैं—१. निरयावलिका (कल्पिका) २. कल्पावतंसिका ३. पुष्पिका ४. पुष्पचूलिका ५. वृष्णिदशा।'

'भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् ने निरयावलिका यावत् वृष्णिदशा पर्यन्त उपांगों के पांच वर्ग कहे हैं तो हे भदन्त ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् ने निरयावलिका नामक प्रथम उपांग-वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादित किए हैं ?'

विवेचन—इस गद्यांश में विषय-विवेचन प्रारम्भ करने की एक विशिष्ट प्राचीन साहित्यिक विधा को बताया है कि जिज्ञासु प्रश्न करता है और उत्तर में वक्ता उस विषय का प्रतिपादन करता है।

सुधर्मास्वामी का उत्तर

४. "एवं खलु, समणेणं [जाव] संपत्तेणं उवङ्गाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता। तं जहा—

काले सुकाले महाकाले कण्हे सुकण्हे।
तहा महाकण्हे वीरकण्हे य बोद्धव्वे।
रामकण्हे तहेव य पिउसेणकण्हे नवमे,
दसमे महासेणकण्हे उ" ॥

"जइ णं भंते, समणेणं [जाव] संपत्तेणं उवङ्गाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते, अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं [जाव] संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?"

४. श्री सुधर्मास्वामी ने उत्तर में कहा—'आयुष्मन् जम्बू ! उन श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने प्रथम उपांग निरयावलिया—निरयावलिका के दस अध्ययन इस प्रकार से प्रतिपादित किए हैं—

१. कालकुमार २. सुकालकुमार ३. महाकालकुमार ४. कृष्णकुमार ५. सुकृष्णकुमार ६. महाकृष्णकुमार ७. वीरकृष्णकुमार ८. रामकृष्णकुमार ९. पितृसेनकुमार १०. महासेनकृष्णकुमार।

जम्बू अनगार ने इस पर पुनः निवेदन किया—'भगवन्! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने उपांगों के प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं तो निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का क्या आशय निरूपित किया है ?'

कुमार काल का परिचय

५. एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे चम्पा नामं नयरी होत्था। रिद्ध०। पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणिए नामं राया होत्था। महया०। तस्स णं कूणियस्स रन्नो पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल० [जाव] विहरइ।

तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था सोमाल० [जाव] सुरूवा।

तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सोमाल० [जाव] सुरूवे॥

५. सुधर्मास्वामी ने कहा—उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में ऋद्धि आदि से सम्पन्न चम्पा नाम की नगरी थी। उसके उत्तर-पूर्व दिग्भाग में पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र एवं चेलना देवी का अंगजात—आत्मज कूणिक नाम का महामहिमाशाली राजा राज्य करता था। कूणिक राजा की रानी का नाम पद्मावती था। वह अतीव सुकुमाल अंगोपांगों वाली थी इत्यादि यावत् मानवीय काम-भोगों का उपभोग-परिभोग करती हुई समय व्यतीत कर रही थी।

उसी चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की पत्नी और कूणिक राजा की छोटी माता (विमाता) काली नाम की रानी थी, जो हाथ पैर आदि सुकोमल अंग-प्रत्यंगों वाली थी यावत् सुरूपा थी।

उस काली देवी का पुत्र काल नामक कुमार था। वह सुकोमल यावत् रूप-सौन्दर्यशाली था।

कुमार काल की रथ-मूसल संग्राम प्रवृत्ति

६. तए णं से काले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दन्तिसहस्सेहिं, तिहिं रहसहस्सेहिं, तिहिं आससहस्सेहिं, तिहिं मणुयकोडीहिं, गरुलवूहे एक्कारसमेणं खण्डेणं कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं ओयाए॥

६. तदनन्तर किसी समय काल कुमार तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार अश्वों और तीन कोटि मनुष्यों (तीन करोड़ सैनिकों) को लेकर गरुडव्यूह में, ग्यारहवें खण्ड-अंश के भागीदार कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम[1] में प्रवृत्त हुआ।

---

१. रथमूसल संग्राम—इस प्रकार के नामकरण का कारण भगवती सूत्र श. ७-९ में देखिए।

काली देवी की चिन्ता

७. तए णं तीसे कालीए देवीए अन्नया कयाइ कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था—'एवं खलु ममं पुत्ते कालकुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं [जाव] ओयाए। से मन्ने, किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जीविस्सइ ? नो जीविस्सइ ? पराजिणिस्सइ ? नो पराजिणिस्सइ ? काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ?' ओहयमण० [जाव] झियाइ ।।

७. तब एक बार अपने कुटुम्ब-परिवार की स्थिति पर विचार करते हुए काली देवी के मन में इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ—'मेरा पुत्र कुमार काल तीन हजार हाथियों आदि को लेकर यावत् रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ है। तो क्या वह विजय प्राप्त करेगा अथवा विजय प्राप्त नहीं करेगा ? वह जीवित रहेगा अथवा जीवित नही रहेगा ? शत्रु को पराजित करेगा या पराजित नहीं करेगा ? क्या मैं काल कुमार को जीवित देख सकूंगी ?' इत्यादि विचारों से वह उदास हो गई। निरुत्साहित-सी होती हुई यावत् आर्तध्यान में मग्न हो गई।

चिन्तानिवारण हेतु काली का भगवान् के समीप गमन

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा निग्गया। तए णं तीसे कालीए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए, [जाव] समुप्पज्जित्था—'एवं खलु, समणे भगवं पुव्वाणुपुव्वि [जाव] विहरइ। तं महाफलं खलु तहारूवाणं [जाव] विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए। तं गच्छामि णं समणं [जाव] पज्जुवासामि, इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह।"

उवट्ठवित्ता [जाव] पच्चप्पिणन्ति।

तए णं सा काली देवी ण्हाया कयबलिकम्मा [जाव] अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं [जाव] महत्तरगविन्दपरिक्खित्ता अन्तेउराओ निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता नियगपरियालसंपरिवुडा चम्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए [जाव] धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, निग्गच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता बहूहिं जाव खुज्जाहिं० विन्दपरिक्खित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ। ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पञ्जलिउडा पज्जुवासइ।

८. उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर का चम्पा नगरी में पदार्पण हुआ। भगवान् को वन्दना-नमस्कार करने एवं धर्मोपदेश सुनने के लिए जन-परिषद् निकली। तब वह काली देवी भी इस संवाद-समाचार को जान कर हर्षित हुई और उसे इस प्रकार का आन्तरिक यावत् संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ—पूर्वानुपूर्वी क्रम से विहार करते हुए यावत् श्रमण भगवान् महावीर यहाँ विराज रहे हैं।

तथारूप श्रमण भगवन्तों का नामश्रवण ही महान् फलप्रद है तो उनके समीप पहुँच कर वन्दन-नमस्कार करने के फल के विषय में तो कहना ही क्या है ? यावत् उनके पास से श्रुत-विपुल श्रुत के अर्थ को ग्रहण करने की महिमा तो अपार है । अतएव मैं श्रमण भगवान् के समीप जाऊँ, यावत् उनकी पर्युपासना करूँ और उनसे पूर्वोल्लिखित प्रश्न पूछूं । काली रानी ने इस प्रकार का विचार किया । विचार करके उसने कौटुम्बिक पुरुषां —सेवकों को बुलाया । उन्हे बुलाकर यह आज्ञा दी - 'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही धार्मिक कार्यों में प्रयोग किये जाने वाले श्रेष्ठ रथ को जोत कर लाओ ।'

कौटुम्बिक पुरुषों ने जुते रथ को उपस्थित किया, यावत् आज्ञानुरूप कार्य किये जाने की सूचना दी ।

तत्पश्चात् स्नान कर एवं बलिकर्म कर काली देवी यावत् महामूल्यवान् किन्तु अल्प या अल्प भार वाले आभूषणो मे विभूषित हो अनेक कुब्जा दासियों यावत् महत्तरकवृन्द (अन्त:पुर-रक्षिकाओं) को साथ लेकर अन्त:पुर से निकली । निकल कर अपने परिजनों एवं परिवार से परिवेष्टित होकर चम्पा नगरी के बीचों-बीच होकर निकली और निकल कर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पहुँची । वहाँ पहुँच कर तीर्थकरों के छत्रादि अतिशयों-प्रातिहार्यों के दृष्टिगत होते ही धार्मिक श्रेष्ठ रथ को रोका । रथ को रोक कर उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ से नीचे उतरी और उतर कर बहुत-सी कुब्जा आदि दासियों यावत् महत्तरकवृन्द के साथ जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ पहुँची । फिर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वहीं बैठ कर सपरिवार भगवान् की देशना सुनने के लिए उत्सुक होकर नमस्कार करती हुई, अञ्जलि करके विनयपूर्वक पर्युपासना करने लगी ।

विवेचन—उक्त गद्यांशों में सन्तान के प्रति मातृहृदय की मनोभावनाओं का चित्रण किया गया है । माता का हृदय सन्तान के लिए किंचित् मात्र अनिष्ट की आशंका होने पर चिन्तित—विकल हो उठता है । जब वह विकलता शमित न हो तो अनिष्ट के निवारण के लिए वह मनौती करती है । आप्तजनों की सेवा में पहुँचती है और उस कल्पित अनिष्ट के निवारण के किसी न किसी उपाय को जानने के लिए उत्सुक रहती है ।

काली रानी भी इसी भावना को मन में संजोये हुए भगवान् के समवसरण में उपस्थित हुई थी ।

भगवान् की देशना : काली की जिज्ञासा का समाधान

९. तए णं समणे भगवं [जाव] कालीए देवीए तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मकहा भाणियव्वा [जाव] समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणा आणाए आराहए भवइ ।

तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ [जाव] हियया समणं भगवं तिक्खुत्तो, एवं वयासी—"एवं खलु, भंते ! मम पुत्ते काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं [जाव] रहमुसलं संगामं ओयाए । से णं भंते ! किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ, [जाव] काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ?

"काली" इ समणे भगवं कालिं देविं एवं वयासी "एवं खलु, काली तव पुत्ते काले कुमारे

तिहिं दन्तिसहस्सेहिं [जाव] कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं संगामेमाणिणे हयमहियपवरवीर-घाइयणिवडियचिंधज्झयपडागे निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे चेडगस्स रन्नो सपक्खं सपडिदिसिं रहेण पडिरहं हव्वमागए। तए णं से चेडए राया कालं कुमारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते [जाव] मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता वइसाहं ठाणं ठाइ, ठाइत्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, करेत्ता कालं कुमारं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ। तं कालगए णं काली! काले कुमारे, नो चेव णं तुमं कालं कुमारं जीवमाणं पासिहिसि।"

९. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् ने यावत् उस काली देवी और विशाल जनपरिषद् को धर्मदेशना सुनाई। यहाँ औपपातिक सूत्र के अनुसार धर्मदेशना का कथन करना चाहिए कि यावत् श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका आज्ञा के आराधक होते हैं।[1]

इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय मे अवधारित कर काली रानी ने हर्षित, संतुष्ट यावत् विकसितहृदय होकर श्रमण भगवान् को तीन वार वंदन—नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—भदन्त! मेरा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों यावत् रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ है, तो हे भगवन्! क्या वह विजयी होगा अथवा विजयी नही होगा? यावत् क्या मैं काल कुमार को जीवित देख सकूंगी?

प्रत्युत्तर में 'हे काली!' इस प्रकार से संबोधित कर श्रमण भगवान् ने काली देवी से कहा—काली! तुम्हारा पुत्र काल कुमार, जो तीन हजार हाथियों यावत् कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम में जूझते हुए वीरवरों को आहत, मर्दित, घातित करते हुए और उनकी संकेतसूचक ध्वजा-पताकाओं को भूमिसात् करते हुए—गिराते हुए, दिशा विदिशाओं को आलोकशून्य करते हुए रथ से रथ को अड़ाते हुए चेटक राजा के सामने आया।

तब चेटक राजा ने कुमार काल को आते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो यावत् मिस-मिसाते हुए धनुष को उठाया। उठाकर बाण को हाथ में लिया, लेकर धनुष पर बाण चढ़ाया, चढ़ाकर उसे कान तक खीचा और खीचकर एक ही वार में आहत करके, रक्तरंजित करके निष्प्राण कर दिया। अतएव हे काली! वह काल कुमार कालकवलित -मरण को प्राप्त हो गया है। अब तुम काल कुमार को जीवित नही देख सकती हो।

विवेचन—महापुरुषों का यह उपदेश और नीति है कि प्रिय एवं सत्य भाषा का प्रयोग करना चाहिए। तब भगवान् ने ऐसा अनिष्ट और अप्रिय उत्तर क्यो दिया? इसका समाधान यह है कि भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। उस समय जो कुछ हो रहा या हो चुका था, उसको न तो वे बदल सकते थे और न छिपा सकते थे। अतएव भगवान् ने वही स्पष्ट किया जो हो रहा था। भगवान् ने तो युद्ध का जो परिणाम कालकुमार के लिए हुआ, उसी को स्पष्ट करने के लिए प्रज्ञापनी भाषा में काली देवी को बतलाया कि अब तुम्हारा पुत्र कालगत हो गया है, अतः तुम उसे जीवित नहीं देख सकोगी। साथ ही भगवान् ने यह भी देखा कि पुत्र-वियोग ही काली रानी के वैराग्य का कारण बनेगा।

१. औपपा. पृ. १०८ (आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)

काली का दुखित होना

१०. तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म महया पुत्तसोएणं अप्फुण्णा समाणी परसुनियत्ता विव चम्पगलया धस त्ति धरणीयलंसि सव्वङ्गेहिं संनिवडिया।

तए णं सा काली देवी मुहुत्तन्तरेण आसत्था समाणी उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवमेयं भंते, तहमेयं भंते, अवितहमेयं भंते, असंदिद्धमेयं भंते, सच्चे णं भंते! एसमट्ठे, जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु समणं भगवं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

१०. श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर और हृदय में धारण करके काली रानी घोर पुत्र-शोक से अभिभूत—उद्विग्न होकर कुल्हाड़ी से खंडित—काटी गई—चम्पकलता के समान पछाड़ खाकर धड़ाम-से सर्वांगों से पृथ्वी पर गिर पड़ी।

कुछ समय के पश्चात् जब काली देवी कुछ आश्वस्त—स्वस्थ-सी—हुई तब खड़ी हुई और खड़ी होकर उसने भगवान् को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके (रुंधे स्वर से) इस प्रकार कहा—'भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! ऐसा ही है, भगवन्! यह अवितथ—असत्य नही है। भगवन्! यह असंदिग्ध है। भगवन्! यह सत्य है। यह बात ऐसी ही है, जैसी आपने बतलाई है।' ऐसा कहकर उसने श्रमण भगवान् को पुनः वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके उसी धार्मिक यान पर आरूढ होकर, (जिस में बैठकर भगवान् के पास आई थी) जिस दिशा से आई थी वापिस उसी दिशा में लौट गई।

गौतम की जिज्ञासा : भगवान् का समाधान

११. "भंते" त्ति भगवं गोयमे [जाव] वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"काले णं भंते! कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जाव रहमुसलं संगामं संगामेमाणे चेडएणं रन्ना एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने?"

"गोयमा" इ समणे भगवं गोयमं एवं वयासी "एवं खलु, गोयमा! काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पङ्कप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरगे दससागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।"

"काले णं भंते! कुमारे केरिसएहिं आरम्भेहिं केरिसएहिं समारम्भेहिं केरिसएहिं आरम्भ-समारम्भेहिं केरिसएहिं भोगेहिं, केरिसएहिं संभोगेहिं केरिसएहिं भोगसंभोगेहिं केरिसएण वा असुभकडकम्मपब्भारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पङ्कप्पभाए पुढवीए जाव नेरइयत्ताए उववन्ने?"

एवं खलु, गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था, महया। तस्स णं सेणियस्स रन्नो नन्दा नामं देवी होत्था, सोमाला० [जाव] विहरइ। तस्स णं सेणियस्स रन्नो नन्दाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे

होत्था, सोमाले० [जाव] सुरूवे, सामदामभेयदण्ड० जहा चित्ता, [जाव] रज्जधुराए चिन्तए यावि होत्था। तस्स णं सेणियस्स रन्नो चेल्लणा नामं देवी होत्था, सोमाला [जाव] विहरइ ।।

तए णं सा चेल्लणा देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसयंसि वासघरंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, जहा पभावई, [जाव] सुमिणपाढगा पडिविसज्जिया, [जाव] चेल्लणा से वयणं पडिच्छित्ता जेणेव सए भवणे तेणेव अणुपविट्ठा ।

११. भगवान् गौतम, श्रमण भगवान् महावीर के समीप आए और 'भदन्त !' इस प्रकार सम्बोधन करते हुए उन्होने यावत् वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए इस प्रकार निवेदन किया—भगवन् ! तीन हजार हाथियों आदि के साथ जो काल कुमार रथमूसल संग्राम करते हुए चेटक राजा के एक ही आघात– प्रहार से रक्तरंजित हो, जीवन-रहित—निष्प्राण होकर मरण के अवसर पर मृत्यु को प्राप्त करके कहाँ गया है ? कहाँ उत्पन्न हुआ है ?

'गौतम !' इस प्रकार से सबोधित कर भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा—'गौतम ! तीन हजार हाथियां आदि के साथ युद्धप्रवृत्त वह काल कुमार जीवनरहित होकर कालमास में काल करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरक में दस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में नारक रूप मे उत्पन्न हुआ है।

गौतम ने पुन: पूछा —भदन्त ! किस प्रकार के भोगों संभोगों, भोग-सभोगों को भोगने से, कैसे-कैसे आरम्भों और आरम्भ-समारभो से तथा कैसे आचारित अशुभ कर्मो के भार से मरणसमय में मरण करके वह काल कुमार चौथी पकप्रभा पृथ्वी में यावत् नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है ?

गौतम स्वामी के उक्त प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने बताया—गौतम ! उसका कारण इस प्रकार है—

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। वह नगर वैभव से सम्पन्न, शत्रुओं के भय से रहित और धन-धान्यादि की समृद्धि से युक्त था। उस राजगृह नगर में हिमवान् शैल के सदृश महान् श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा की अंग-प्रत्यंगो से सुकुमाल नन्दा नाम की रानी थी, जो मानवीय कामभोगो को भोगती हुई यावत् समय व्यतीत करती थी। उस श्रेणिक राजा का पुत्र और नन्दा रानी का आत्मज अभय नामक राजकुमार था, जो सुकुमाल यावत् सुरूप था तथा साम, दाम, भेद और दण्ड की राजनीति में चित्त सारथि के समान[1] निष्णात था यावत् राज्यधुरा-शासन का चिन्तक था —चतुर संचालक था।

उस श्रेणिक राजा की चेलना नामकी एक दूसरी रानी थी। वह सुकुमाल हाथ-पैर वाली थी इत्यादि उसका वर्णन समझ लेना चाहिए, यावत् सुखपूर्वक विचरण करती थी।

किसी समय शयनगृह में चिन्ताओं आदि से मुक्त सुख-शय्या पर सोते हुए वह चेलना देवी प्रभावती देवी के समान स्वप्न में सिंह को देखकर जागृत हुई, यावत् स्वप्न-पाठको को आमंत्रित

१. चित्त सारथि का परिचय देखिए राजप्रश्नीय पृ. १३१ (आ. प्र. समिति, ब्यावर)

करके राजा ने उसका फल पूछा। स्वप्नपाठकों ने स्वप्न का फल बतलाया। स्वप्न-पाठकों को विदा किया यावत् चेलना देवी उन स्वप्नपाठकों के वचनों को सहर्ष स्वीकार करके अपने वासभवन के अन्दर चली गई।

विवेचन—उक्त गद्यांश में आगत—जहा चित्तो जहा पभावई और 'जाव' शब्द से संकेतित आशय इस प्रकार है—

जहा चित्तो—राजप्रश्नीयसूत्र में प्रदेशी राजा के वृत्तान्त में चित्त सारथि का वर्णन किया गया है। यह प्रदेशी राजा का मंत्री सरीखा था, जो साम आदि चार प्रकार की राजनीतियों का जानकार था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और परिणामिकी, इन चार प्रकार की बुद्धियों से सम्पन्न था (जिनसे कठिन से कठिन कार्य करने का सही उपाय निकाल लेता था) पारिवारिक समस्याओं, गोपनीय कार्यों और रहस्यमय अवसरों पर राजा को सच्ची सलाह देता था। राज्य-शासन का प्रमुख था इत्यादि। इसी प्रकार से अभय कुमार भी राजा श्रेणिक के प्रत्येक कार्य का कर्त्ता था। राज्य के गुप्त से गुप्त रहस्य को जानता था।

जहा पभावई—यह हस्तिनापुर नगर के बल राजा की रानी थी। भगवती सूत्र शतक ११ उ. ११ में महाबल के जन्मादि का विस्तार से वर्णन किया गया है। महाबल के गर्भ में आने पर प्रभावती देवी ने प्रशस्त लक्षणों से युक्त सिंह को स्वप्न में देखा था। स्वप्न-दर्शन के बाद स्वप्न की बात अपने पति राजा बल को बतलाई। राजा बल ने अपने बुद्धि-ज्ञान के आधार से उस स्वप्न का शुभ फल बताया और कहा कि कुल के भूषणरूप पुत्र का जन्म होगा। फिर राजा ने स्वप्न-पाठकों को बुलाया। उन्होंने विस्तार से स्वप्नशास्त्र का वर्णन करके कहा कि आपको राजकुमार की प्राप्ति होगी। वह या तो विशाल राज्य का स्वामी होगा अथवा महान् ज्ञान-ध्यान-तप से सम्पन्न अनगार होगा इत्यादि।

महाबल कुमार का वृत्तान्त परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

चेलना का दोहद

१२. तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, [जाव] जम्मजीवियफले जाओ णं सेणियस्स रन्नो उयरवलीमंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च [जाव] पसन्नं च आसाएमाणीओ जाव विसाएमाणीओ परिभुंजेमाणीओ परिभाएमाणीओ दोहलं पविणेन्ति।"

तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा नित्तेया दीणविमणवयणा पण्डुइयमुही ओमन्थियनयणवयणकमला जहोचियं पुप्फवत्थ-गन्धमल्लालंकारं अपरिभुञ्जमाणी करतलमलिय व्व कमलमाला ओहयमणसंकप्पा [जाव] झियाइ।

तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अङ्गपडियारियाओ चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं [जाव] झियाय-माणिं पासंति पासित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी—'एवं खलु, सामी! चेल्लणा देवी, न याणामो केणइ कारणेणं सुक्का भुक्खा जाव झियाइ।'

तए णं सेणिए राया तासिं अङ्गपडियारियाणं अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं [जाव] झियायमाणिं पासित्ता एवं वयासी—"किं णं तुमं देवाणुप्पिए ! सुक्का भुक्खा जाव झियासि ?"

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणिया संचिट्ठइ ।

तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देविं दोच्चं पि तच्चंपि एवं वयासी—"किं णं अहं देवाणुप्पिए एयमट्ठं नो अरिहे सवणयाए, जं णं तुमं एयमट्ठं रहस्सीकरेसि ?"

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी सेणियं रायं एवं वयासी—"नत्थि णं सामी ! से केइ अट्ठे, जस्स णं तुब्भे अणरिहे सवणयाए, नो चेव णं इमस्स अट्ठस्स सवणयाए । एवं खलु सामी ! ममं तस्स ओरालस्स [जाव] महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए 'धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाओ णं तुब्भं उयरवलिमंसेहिं सोल्लएहि य [जाव] दोहलं विणेन्ति ।' तए णं अहं, सामी ! तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा जाव झियामि ।"

[१२] तत्पश्चात् परिपूर्ण तीन मास बीतने पर चेलना देवी को इस प्रकार का दोहद (गर्भवती माता का विशेष मनोरथ) उत्पन्न हुआ वे माताएँ धन्य हैं यावत् वे पुण्यशालिनी हैं, उन्होंने पूर्व में पुण्य उपार्जित किया है, उनका वैभव सफल है, मानवजन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जो श्रेणिक राजा की उदरावली के शूल पर सेके हुए, तले हुए, भूने हुए मांस का तथा सुरा यावत् मधु, मेरक, मद्य, सीधु और प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन यावत् विस्वादन तथा उपभोग करती हुई और अपनी सहेलियों को आपस में वितरित करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है—अपनी अभिलाषा को तृप्त करती है । किन्तु इस अयोग्य एवं अनिष्ट दोहद के पूर्ण न होने से चेलना देवी (मन:संताप के कारण रक्त का शोषण हो जाने से) शुष्क—सूखी-सी हो गई, भूख से पीड़ित-सी हो गई, मांसरहित हो गई, जीर्ण और जीर्ण शरीर वाली हो गई, निस्तेज—निष्प्रभ दीन, विमनस्क जैसी हो गई, विवर्णमुखी, नेत्र और मुखकमल को नमाकर यथोचित पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों का उपभोग नहीं करती हुई, हथेलियों से मसली हुई कमल की माला जैसी मुरझाई हुई, आहतमनोरथा यावत् चिन्ताशोक-सागर में निमग्न हो, हथेली पर मुख को टिकाकर आर्त्तध्यान में डूब गई ।

तब चेलना देवी की अंगपरिचारिकाओं (आभ्यन्तर दासियों) ने चेलना देवी को सूखी-सी, भूख से ग्रस्त-सी यावत् चिन्तित देखा । देखकर वे श्रेणिक राजा के पास पहुँची । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक, मस्तक पर अंजलि करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन् ! न मालूम किस कारण से चेलना देवी शुष्क-बुभुक्षित जैसी होकर यावत् आर्त्तध्यान में डूबी हुई है ।

श्रेणिक राजा उन अंगपरिचारिकाओं की इस बात को सुनकर और समझकर आकुल-व्याकुल होता हुआ, जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया । चेलना देवी को सूखी-सी, भूख से पीड़ित जैसी,

यावत् आर्त्तध्यान करती हुई देखकर इस प्रकार बोला—'देवानुप्रिये ! तुम क्यों शुष्कशरीर, भूखी-सी यावत् चिन्ताग्रस्त हो रही हो ?'

लेकिन चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के इस प्रश्न का आदर नही किया अर्थात् उत्तर नही दिया। वह चुपचाप बैठी रही।

तब श्रेणिक राजा ने पुनः दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी यही प्रश्न चेलना देवी से पूछा और कहा—देवानुप्रिये ! क्या मैं इस बात को सुनने के योग्य नहीं हूँ जो तुम मुझसे इसे छिपा रही हो ? दूसरी और तीसरी बार कही श्रेणिक राजा की इस बात को सुनकर चेलना देवी ने श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—'स्वामिन् ! ऐसी तो कोई भी बात नही है, जिसे आप सुनने के योग्य न हों और न इस बात को सुनने के लिए ही आप अयोग्य है। परन्तु स्वामिन् ! बात यह है कि उस उदार यावत् महास्वप्न को देखने के तीन मास पूर्ण होने पर मुझे इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ है— 'वे माताएँ धन्य है जो आपकी उदरावलि के शूल पर सेके हुए यावत् मांस द्वारा तथा मदिरा द्वारा अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।' लेकिन स्वामिन् ! उस दोहद को पूर्ण न कर सकने के कारण मैं शुष्कशरीरी, भूखी-सी यावत् चिन्तित हो रही हूँ।

श्रेणिक का आश्वासन

१३. तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देविं एवं वयासी—"मा णं तुमं, देवाणुप्पिए ! आहय [जाव] झियाहि। अहं णं तहा जत्तिहामि जहा णं तव दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ" त्ति कट्टु चेल्लणं देविं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मङ्गल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासित्ता चेल्लणाए देवीए अन्तियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, तस्स दोहलस्स संपत्तिनिमित्तं बहूहिं आएहिं उवाएहि य, उप्पत्तियाए य वेणइयाए य कम्मियाए य पारिणामियाए य परिणामेमाणे परिणामेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे [जाव] झियाइ।

[१३] तब श्रेणिक राजा ने चेलना देवी की उक्त बात को सुनकर उसे आश्वासन देते हुए कहा- देवानुप्रिये ! तुम हतोत्साह एवं चिन्तित न होओ। मै कोई ऐसा जतन (उपाय) करूंगा जिससे तुम्हारे दोहद की पूर्ति हो सकेगी। ऐसा कहकर चेलनादेवी को इष्ट (अभिलषित), कान्त (इच्छित), प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, प्रभावक, कल्याणप्रद, शिव (सुखद), धन्य, मंगलरूप मृदु-मधुर वाणी से आश्वस्त किया। तत्पश्चात् वह चेलना देवी के पास से निकला। निकलकर जहाँ बाह्य सभाभवन था और उसमें जहाँ उत्तम सिंहासन रखा था वहां आया। आकर पूर्व की ओर मुख करके उस उत्तम सिंहासन पर आसीन हो गया। वह दोहद की संपूर्ति के लिए आयों से उपायों से (युक्तियों-प्रयुक्तियों से) औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी—इन चार प्रकार की बुद्धियों से वारंवार विचार करते हुए भी इसके आय-उपाय, स्थिति एवं निष्पत्ति को समझ न पाने के कारण उत्साहहीन यावत् चिन्ताग्रस्त हो उठा।

अभयकुमार का आगमन : दोहदपूर्ति का उपाय

१४. इमं च णं अभए कुमारे ण्हाए [जाव] सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छइ। सेणियं रायं ओहय० [जाव] झियायमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"अन्नया णं, ताओ ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ [जाव] हियया भवह, किं णं, ताओ ! अज्ज तुब्भे ओहय० [जाव] झियाह ? तं जइ णं अहं, ताओ एयमट्ठस्स अरिहे सवणयाए, तो णं तुब्भे ममं एयमट्ठं जहाभूयमवितहं असंदिद्धं परिकहेह, जा णं अहं तस्स अट्ठस्स अन्तगमणं करेमि।"

तए णं से सेणिए राया अभयं कुमारं एवं वयासी—"नत्थि णं, पुत्ता ! से केइ अट्ठे, जस्स णं तुमं अणरिहे सवणयाए। एवं खलु, पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स ओरालस्स [जाव] महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं, [जाव] जाओ णं मम उयरवलीमंसेहिं सोल्लेहि य [जाव] दोहलं विणेन्ति। तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का [जाव] झियाइ। तए णं अहं पुत्ता ! तस्स दोहलस्स संपत्तिनिमित्तं बहूहिं आएहिं य [जाव] ठिइं वा अविन्दमाणे ओहय० [जाव] झियामि।"

तए णं से अभए कुमारे सेणियं रायं एवं वयासी—'मा णं, ताओ तुब्भे ओहय० [जाव] झियाह, अहं णं, तहा जत्तिहामि, जहा णं मम चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं [जाव] वग्गूहिं समासासेइ।

समासासित्ता जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अब्भिन्तरए रहस्सियए ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे, देवाणुप्पिया ! सूणाओ अल्लं मंसं रुहिरं बत्थिपुडगं च गिण्हह।'

तए णं ते ठाणिज्जा पुरिसा अभएण कुमारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ [जाव] पडिसुणेत्ता अभयस्स कुमारस्स अन्तियाओ पडिणिक्खमन्ति। जेणेव सूणा तेणेव उवागच्छन्ति, अल्लं मंसं रुहिरं बत्थिपुडगं च गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव अभए कुमारे, तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करयल० तं अल्लं मंसं रुहिरं बत्थिपुडगं च उवणेन्ति।

तए णं से अभए कुमारे तं अल्लं मंसं रुहिरं कप्पणीकप्पियं करेइ, करेत्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं रहसिगयं सयणिज्जंसि उत्ताणयं निवज्जावेइ, निवज्जावेत्ता सेणियस्स उयरवलीसु तं अल्लं मंसं रुहिरं विरवेइ, विरवेत्ता बत्थिपुडएणं वेढेइ, वेढेत्ता सवन्तीकरणेणं करेइ, करेत्ता चेल्लणं देविं उप्पिं पासाए अवलोयणवरगयं ठवावेइ। ठवावेत्ता चेल्लणाए देवीए अहे समक्खं सपडिदिसिं सेणियं रायं सयणिज्जंसि उत्ताणगं निवज्जावेइ। सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइं कप्पणिकप्पियाइं करेइ, करेत्ता से य भायणंसि पक्खिवइ। तए णं से सेणिए राया अलियमुच्छियं करेइ, करेत्ता मुहुत्तन्तरेणं अन्नमन्नेण सद्धिं संलवमाणे चिट्ठइ। तए णं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो

उयरवलिमंसाइं गिण्हेइ, गिण्हेत्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणाए देवीए उवणेइ ।

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो तेहिं उयरवलिमंसेहिं सोल्लेहिं [जाव] दोहलं विणेइ । तए णं सा चेल्लणा देवी संपुण्णदोहला एवं संमाणियदोहला विच्छिन्नदोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ ।

[१४] इधर अभयकुमार स्नान करके यावत् अपने शरीर को अलंकृत करके अपने आवासगृह से बाहर निकला । निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभाभवन) थी और उसमें जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया । उसने श्रेणिक राजा को निरुत्साहित जैसा देखा, यह देखकर वह बोला—तात ! पहले जब कभी आप मुझे आता हुआ देखते थे तो हर्षित यावत् सन्तुष्टहृदय होते थे, किन्तु आज ऐसी क्या बात है जो आप उदास यावत् चिन्ता मे डूबे हुए है ? तात ! यदि मैं इस अर्थ (बात) को सुनने के योग्य हूँ तो आप बात को जैसा का तैसा, सत्य एवं बिना किसी संकोच-संदेह के कहिए, जिससे मैं उसका अन्तगमन करूँ अर्थात् हल करने का उपाय करूँ ।

अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से कहा—पुत्र ! ऐसी तो कोई भी बात नहीं है जिसे तुम सुनने योग्य नहीं हो, लेकिन बात यह है पुत्र ! तुम्हारी विमाता चेलना देवी को उस उदार यावत् महास्वप्न को देखे तीन मास बीतने पर यावत् ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है कि जो माताएँ मेरी उदरावलि के शूलित आदि मांस से अपने दोहद को पूर्ण करती है वे धन्य हैं, आदि । लेकिन चेलना देवी उस दोहद के पूर्ण न हो सकने के कारण शुष्क यावत् चिन्तित हो रही है । इसलिए पुत्र ! उस दोहद की पूर्ति के निर्मित आयों (उपायों) यावत् स्थिति को समझ नहीं सकने के कारण मै भग्नमनोरथ यावत् चिन्तित हो रहा हूँ ।

श्रेणिक राजा के इस मनोगत भाव को सुनने के बाद अभयकुमार ने श्रेणिक राजा से इस भाँति कहा—'तात ! आप भग्नमनोरथ यावत् चिन्तित न हो, मैं ऐसा कोई जतन (उपाय) करूंगा कि जिससे मेरी छोटी माता चेलना देवी के उस दोहद की पूर्ति हो सकेगी ।' इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा को इष्ट यावत् वाणी से सांत्वना दी—आश्वस्त किया ।

श्रेणिक राजा को आश्वस्त करने के पश्चात् अभयकुमार जहाँ अपना भवन था वहाँ आया । आकर गुप्त रहस्यों के जानकार आन्तरिक विश्वस्त पुरुषों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सूनागार (वध-स्थान) में जाकर गीला मांस, रुधिर और वस्तिपुटक (पेट का भीतरी भाग, आंतें) लाओ ।

वे रहस्यज्ञाता पुरुष अभयकुमार की इस बात को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हुए यावत् अभयकुमार के पास मे निकले । निकलकर जहाँ वध-स्थल था, वहाँ पहुँचे और उन्होंने वहाँ से गीला मांस, रक्त एव बस्तिपुटक को लिया । लेकर जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आये । आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् उस मांस, रक्त एवं वस्तिपुटक को रख दिया ।

तब अभयकुमार ने उस रक्त और मांस में से थोड़ा भाग कैंची से काटा । काटकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया और श्रेणिक राजा को एकान्त में शैया पर चित (ऊपर की ओर मुख

करके) लिटाया। लिटाकर श्रेणिक राजा की उदरावली पर उस आर्द्र रक्त-मांस को फैला दिया—रख दिया और फिर वस्तिपुटक को लपेट दिया। वह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे रक्त-धारा बह रही हो। और फिर ऊपर के माले में चेलना देवी को अवलोकन करने के आसन से बैठाया, अर्थात् ऐसे स्थान पर बिठलाया जहाँ से वह दृश्य को देख सके। बैठाकर चेलना देवी के ठीक नीचे सामने की ओर श्रेणिक राजा को शैया पर चित लिटा दिया। कतरनी से श्रेणिक राजा की उदरावली का मांस काटा, काटकर उसे एक बर्तन में रखा। तब श्रेणिक राजा ने झूठ-मूठ मूर्च्छित होने का दिखावा किया और उसके बाद कुछ समय के अनन्तर आपस में बातचीत करने में लीन हो गए।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने श्रेणिक राजा की उदरावली के मांस-खण्डों को लिया, लेकर जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया और आकर चेलना देवी के सामने रख दिया।

तब चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के उस उदरावली के मांस के लोथड़े से यावत् अपना दोहद पूर्ण किया। दोहद पूर्ण होने पर चेलना देवी का दोहद संपन्न, सम्मानित और निवृत्त हो गया अर्थात् उसकी इच्छा पूर्ण हो गई। तब वह उस गर्भ का सुखपूर्वक वहन करने लगी।

चेलना देवी का विचार

१५. तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे [जाव] समुप्पज्जित्था—"जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उयरवलिमंसाणि खाइयाणि, तं सेयं खलु मए एयं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा", एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तं गब्भं बहूहिं गब्भसाडणेहि य गब्भपाडणेहि य गब्भगालणेहि य गब्भविद्धंसणेहि य इच्छइ तं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा, नो चेव णं से गब्भे सडइ वा पडइ वा गलइ वा विद्धंसइ वा। तए णं सा चेल्लणा देवी तं गब्भं जाहे नो संचाएइ बहूहिं गब्भसाडएहिं य जाव गब्भविद्धंसणेहि य साडित्तए वा [जाव] विद्धंसित्तए वा, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणी अकामिया अवसवसा अट्टवसट्टदुहट्टा तं गब्भं परिवहइ।

[१५] कुछ समय व्यतीत होने के बाद एक बार चेलना देवी को मध्य रात्रि में जागते हुए इस प्रकार का यह यावत् विचार उत्पन्न हुआ—'इस बालक ने गर्भ मे रहते ही पिता की उदरावलि का मांस खाया है, अतएव इस गर्भ को नष्ट कर देना, गिरा देना, गला देना एवं विध्वस्त कर देना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा' (क्योंकि जन्म लेने और बड़ा होने पर न जाने यह पिता का या कुल का क्या अनिष्ट करेगा), उसने ऐसा निश्चय किया। निश्चय करके बहुत सी गर्भ को नष्ट करने वाली गिराने वाली, गलाने वाली और विध्वस्त करने वाली औषधियों से उस गर्भ को नष्ट करना, गिराना, गलाना और विध्वस्त करना चाहा, किन्तु वह गर्भ नष्ट नहीं हुआ, न गिरा, न गला और न विध्वस्त ही हुआ।

तदनन्तर जब चेलना देवी उस गर्भ को बहुत सी गर्भ नष्ट करने वाली यावत् विध्वस्त करने वाली औषधियों से नष्ट करने यावत् विध्वस्त करने में समर्थ—सफल नहीं हुई तब श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और उदास होकर अनिच्छापूर्वक विवशता से दुस्सह आर्त्त ध्यान से ग्रस्त हो उस गर्भ को परिवहन—धारण करने लगी।

बालक का जन्म : एकान्त में फेंकना

१६. तए णं सा चेल्लणा देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं [जाव] सोमालं सुरूवं दारगं पयाया। तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए इमे एयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—"जइ जाव इमेण दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उयरवलिमंसाइं खाइयाइं, तं न नज्जइ णं एस दारए संवड्ढमाणे अम्हं कुलस्स अन्तकरे भविस्सइ। तं सेयं खलु अम्हं एयं दारगं एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झावित्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं, देवाणुप्पिए, एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि।"

[१६] तत्पश्चात् नौ मास पूर्ण होने पर चेलना देवी ने एक सुकुमार एवं रूपवान् बालक का प्रसव किया—उसे जन्म दिया।

बालक का प्रसव होने के पश्चात् चेलना देवी को इस प्रकार का यह विचार आया—'यदि इस बालक ने गर्भ में रहते ही पिता की उदरावलि का मांस खाया है, तो हो सकता है कि यह बालक संवर्धित-सवयस्क होने पर हमारे कुल का भी अंत करने वाला हो जाय! अतएव इस बालक को एकान्त उकरड़े (कूड़े-कचरे के ढेर) में फेंक देना ही उचित—श्रेयस्कर होगा।' इस प्रकार का संकल्प विचार किया। संकल्प करके अपनी दास-चेटी को बुलाया, बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम जाओ और इस बालक को एकान्त में उकरड़े में फेंक आओ।'

श्रेणिक द्वारा भर्त्सना

१७. तए णं सा दासचेडी चेल्लणाए देवीए एवं वुत्ता समाणी करयलं [जाव] कट्टु चेल्लणाए देवीए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हेत्ता जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झाइ। तए णं तेणं दारएणं एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झिएणं समाणेणं सा असोगवणिया उज्जोविया यावि होत्था।

तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे, जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झियं पासेइ, पासित्ता आसुरुत्ते [जाव] मिसिमिसेमाणे तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हत्ता जेणेव चेल्लणा देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, आओसित्ता उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेइ। एवं उद्धंसणाहिं उद्धंसेइ, उद्धंसित्ता एवं वयासी—"किस्स णं तुमं मम पुत्तं एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झावेसि" त्ति कट्टु चेल्लणं देविं उच्चावयसवहसावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—तुमं णं देवाणुप्पिए, एयं दारगं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेहि।

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणी लज्जिया विलिया विड्डा करयल-परिग्गहियं सेणियस्स रन्नो विणएणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेइ।

त णं तस्स दाएरगस्स एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अग्गंगुलिया कुक्कुडपिच्छएण

कूमिहा यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं पूयं च सोणियं च अभिनिस्सवइ। तए णं से दारए वेयणाभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ। तए णं सेणिए राया तस्स दारगस्स आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तं अग्गंगुलियं आसयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता पूयं च सोणियं च आसएणं आमुसेइ। तए णं से दारए निव्वुए निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ। ताहे वि य णं से दारए वेयणाए अभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ, ताहे वि य णं सेणिए राया जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ तं चेव [जाव] निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो तइए दिवसे चन्दसूरदरिसणियं करेंति [जाव] संपत्ते बारसाहे दिवसे अयमेयारूवं गुणणिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति— "जहा णं अम्हं इमस्स दारगस्स एगन्ते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अंगुलिया कुक्कुडपिच्छएणं दूमिया, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं कूणिए।" तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति 'कूणिय' त्ति। तए णं तस्स कूणियस्स आणुपुव्वेणं ठिइवडियं च, जहा मेहस्स [जाव] उप्पिं पासायवरगए विहरइ। अट्ठओ दाओ।

[१८] तत्पश्चात् उस दास चेटी ने चेलना देवी की इस आज्ञा को सुनकर दोनों हाथ जोड़ यावत् चेलना देवी की इस आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार करके उस बालक को हथेलियों में लिया। लेकर वह अशोक-वाटिका में गई और उस बालक को एकान्त में उकरड़े पर फेंक दिया। उस बालक के एकान्त में उकरड़े पर फेंके जाने पर वह अशोक-वाटिका प्रकाश से व्याप्त हो गई।

इस समाचार को सुनकर राजा श्रेणिक अशोक-वाटिका में पहुचा। वहाँ उस बालक को एकान्त में उकरड़े पर पड़ा हुआ देखकर क्रोधित हो उठा यावत् रुष्ट, कुपित और चडिकावत् रौद्र होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए उस बालक को उसने हथेलियों मे ले लिया और जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया। आकर चेलना देवी को भले-बुरे शब्दों से फटकारा, परुष वचनों से अपमानित किया और धमकाया। फिर इस प्रकार कहा—'तुमने क्यों मेरे पुत्र को एकान्त-उकरड़े पर फिकवाया?' इस तरह कहकर चेलना देवी को भली-बुरी सौगंध—शपथ दिलाई और कहा—देवानुप्रिये! इस बालक की देखरेख करती हुई इसका पालन-पोषण करो और संवर्धन करो।

तब चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के इस आदेश को सुनकर लज्जित, प्रताडित और अपराधिनी-सी हो कर दोनों हाथ जोड़कर श्रेणिक राजा के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार किया और अनुक्रम से उस बालक की देखरेख, लालन-पालन करती हुई वधित करने लगी।

एकान्त उकरड़े पर फेंके जाने के कारण उस बालक की अंगुली का आगे का भाग मुर्गे की चोंच से छिल गया था और उससे वार-वार पीव और खून बहता रहता था। इस कारण वह बालक वेदना से चीख-चीख कर रोता था। उस बालक के रोने को सुन और समझकर श्रेणिक राजा बालक के पास आता और उसे गोदी में लेता। लेकर उस अंगुली को मुख में लेता और उस पीव और खून को मुख से चूस लेता (और थूक देता)! ऐसा करने से वह बालक शांति का अनुभव कर चुपशांत हो जाता। इस प्रकार जब-जब भी वह बालक वेदना के कारण जोर-जोर से रोने लगता,

तब-तब श्रेणिक राजा उस बालक के पास आता, उसे हाथों में लेता और उसी प्रकार चूसता यावत् वेदना शांत हो जाने से वह चुप हो जाता था।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने तीसरे दिन चन्द्र सूर्य दर्शन का संस्कार किया, यावत् ग्यारह दिन के बाद बारहवें दिन इस प्रकार का गुण-निष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि हमारे इस बालक को एकान्त उकरड़े पर फेंके जाने से अंगुली का ऊपरी भाग मुर्गे की चोंच से छिल गया था इसलिए हमारे इस बालक का नाम 'कूणिक' हो। इस प्रकार उस बालक के माता-पिता ने उसका 'कूणिक' यह नामकरण किया।

तत्पश्चात् उस बालक का जन्मोत्सव आदि मनाया गया। यावत् (वह बड़ा होकर) मेघकुमार के समान राजप्रासाद मे आमोद-प्रमोदपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। (आठ कन्याओ के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ और) माता-पिता ने आठ-आठ वस्तुएँ प्रीतिदान (दहेज) में प्रदान की।

कूणिक का कुविचार

तए णं तस्स कूणियस्स कुमारस्स अन्नया पुव्वरत्ता० [जाव] समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमि सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरित्तए, तं सेयं खलु मम सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता अप्पाणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिञ्चावितए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सेणियस्स रन्नो अन्तराणि य छिड्डाणि य विरहाणि य पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से कूणिए कुमारे सेणियस्स रन्नो अन्तरं वा [जाव] मम्मं वा अलभमाणं अन्नया कयाइ कालाईए दस कुमारे नियघरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया, अम्हे सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमो सयमेव रज्जसिरिं करेमाणा पालेमाणा विहरित्तए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च जणवयं च एक्कारसभाए विरिञ्चित्ता सयमेय रज्जसिरिं करेमाणाणं पालेमाणाणं [जाव] विहरित्तए।"

[१८] तत्पश्चात् उस कुमार कूणिक को किसी समय मध्यरात्रि में यावत् ऐसा विचार आया कि श्रेणिक राजा के विघ्न के कारण मै स्वयं राज्यशासन और राज्यवैभव का उपभोग नही कर पाता हूँ, अतएव श्रेणिक राजा को बेड़ी में डाल देना (कारागार में बन्द कर देना) और महान् राज्याभिषेक से अपना अभिषेक कर लेना मेरे लिए श्रेयस्कर—लाभदायक होगा। उसने इस प्रकार का संकल्प किया और संकल्प करके श्रेणिक राजा के अन्तर (अवसर—मौका) छिद्र (दोष) और विरह (एकान्त) की ताक के रहता हुआ समय-यापन करने लगा।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के अवसरों यावत् मर्मों को जान न सकने के कारण अर्थात् अवसर न पाकर कूणिक कुमार ने एक दिन काल आदि दस राजकुमारों को (अपने भाइयो को) अपने घर आमंत्रित किया और आमंत्रित करके उनको अपने विचार बताए—हे देवानुप्रियो! श्रेणिक राजा के कारण हम स्वयं राजश्री का उपभोग और राज्य का पालन नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए

हे देवानुप्रियो ! हमारे लिए श्रेयस्कर यह होगा कि श्रेणिक राजा को बेड़ी में डालकर और राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, धान्यभंडार और जनपद को ग्यारह भागों में बांट करके हम लोग स्वयं राजश्री का उपभोग करें और राज्य का पालन करें।

काल आदि द्वारा स्वीकृति

१९. तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स कुमारस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति। तए णं से कूणिए कुमारे अन्नया कयाइ सेणियस्स रन्नो अन्तरं जाणइ, जाणित्ता सेणियं रायं नियल-बंधणं करेइ, करित्ता अप्पाणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिञ्चावेइ। तए णं से कूणिए कुमारे राया जाए महया महया [०]।

[१९] कूणिक का कथन सुनकर उन काल आदि दस राजपुत्रों ने उसके इस विचार को विनयपूर्वक स्वीकार किया। इसके बाद कूणिक कुमार ने किसी समय श्रेणिक राजा के अंदरूनी रहस्यों को जाना और जानकर श्रेणिक राजा को बेड़ी से बाँध दिया। बाँधकर महान राज्याभिषेक से अपना अभिषेक कराया, जिससे वह कूणिक कुमार स्वयं राजा बन गया।

कूणिक का चेलना के पादवंदनार्थ गमन

२०. तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइ ण्हाए जाव कयबलिकम्मे कयकोउयमंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए सव्वालंकारविभूसिए चेल्लणाए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कूणिए राया चेल्लणं देविं ओहय० [जाव] झियायमाणिं पासइ, पासित्ता चेल्लणाए देवीए पायग्गहणं करेइ करित्ता चेल्लणं देविं एवं वयासी—"किं णं अम्मो ! तुम्हं न तुट्ठी वा न ऊसए वा न हरिसे वा न आणंदे वा, जं णं अहं सयमेव रज्जसिरिं [जाव] विहरामि ?

तए णं सा चेल्लणा देवी कूणियं रायं एवं वयासी -"कहं णं पुत्ता ! ममं तुट्ठी वा ऊसए वा हरिसे वा आणंदे वा भविस्सइ, जं णं तुमं सेणियं रायं पियं देवयं गुरु-जणगं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करित्ता अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसिञ्चावेसि ?"

तए णं से कूणिए राया चेल्लणं देविं एवं वयासी—"घाएउकामे णं, अम्मो ! मम सेणिए राया, एवं मारेउ बंधिउ० निच्छुभिउकामे णं अम्मो ! ममं सेणिए राया। तं कहं णं अम्मो ! ममं सेणिए राया अच्चन्तनेहाणुरागरत्ते ?"

तए णं सा चेल्लणा देवी कूणियं कुमारं एवं वयासी— "एवं खलु, पुत्ता ! तुमंसि ममं गब्भे आभूए समाणे तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं ममं अयमेयारूवे वोहले पाउब्भूए 'धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, [जाव] अंगपडिचारियाओ, निरवसेसं भाणियव्वं [जाव], जाहे वि य णं तुमं वेयणाए अभिभूए महया [जाव] तुसिणीए संचिट्ठसि। एवं खलु पुत्ता ! सेणिए राया अच्चन्तनेहाणुरागरत्ते।"

तए णं कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चेल्लणं देविं एवं वयासी— "दुट्ठु णं अम्मो ! मए कयं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चन्तनेहाणुरागरत्तं नियलबंधण करंतेणं। तं गच्छामि णं सेणियस्स रन्नो सयमेव नियलाणि छिंदामि" त्ति कट्टु परसुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[२०] तदनन्तर किसी दिन कूणिक राजा स्नान करके, बलिकर्म करके, विघ्नविनाशक उपाय कर, मंगल एवं प्रायश्चित्त कर और फिर अवसर के अनुकूल शुद्ध मांगलिक वस्त्रों को पहनकर, सर्व अलंकारों से अलंकृत होकर चेलना देवी के चरणवंदनार्थ पहुँचा। उस समय कूणिक राजा ने चेलना देवी को उदासीन यावत् चिन्ताग्रस्त देखा। देखकर चेलना देवी के पाँव पकड़ लिए और चेलना देवी से इस प्रकार पूछा—माता ! ऐसी क्या बात है कि तुम्हारे चित्त में संतोष, उत्साह, हर्ष और आनन्द नहीं है कि मैं स्वयं राज्यश्री का उपभोग करते हुए यावत् समय बिता रहा हूँ ? अर्थात् मेरा राजा होना क्या आपको अच्छा नहीं लग रहा है ?

तब चेलना देवी ने कूणिक राजा से इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! मुझे तुष्टि, उत्साह, हर्ष अथवा आनन्द कैसे हो सकता है, जबकि तुमने देवतास्वरूप, गुरुजन जैसे, अत्यन्त स्नेहानुराग युक्त पिता श्रेणिक राजा को बन्धन में डालकर अपना निज का महान् राज्याभिषेक से अभिषेक कराया है।

तब कूणिक राजा ने चेलना देवी से इस प्रकार कहा- माताजी ! श्रेणिक राजा तो मेरा घात करने के इच्छुक थे। हे अम्मा ! श्रेणिक राजा तो मुझे मार डालना चाहते थे, बांधना चाहते थे और निर्वासित कर देना चाहते थे। तो फिर हे माता ! यह कैसे मान लिया जाए कि श्रेणिक राजा मेरे प्रति अतीव स्नेहानुराग वाले थे ?

यह सुनकर चेलना देवी ने कूणिक कुमार से इस प्रकार कहा- हे पुत्र ! जब तुम्हे मेरे गर्भ में आने पर तीन मास पूरे हुए तो मुझे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ कि—वे माताएँ धन्य है, यावत् अगपरिचारिकाओं से मैंने तुम्हें उकरड़े में फिकवा दिया, आदि-आदि, यावत् जब भी तुम वेदना से पीड़ित होते और जोर-जोर से रोते तब श्रेणिक राजा तुम्हारी अंगुली मुख में लेते और मवाद चूसते। तब तुम चुप-शांत हो जाते, इत्यादि सब वृत्तान्त चेलना ने कूणिक को सुनाया। फिर कहा इसी कारण हे पुत्र ! मैंने कहा कि श्रेणिक राजा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेहानुराग से युक्त है।

कूणिक राजा ने चेलना रानी से इस पूर्ववृत्तान्त को सुनकर और ध्यान में लेकर चेलना देवी से इस प्रकार कहा—माता ! मैंने बुरा किया जो देवतास्वरूप, गुरुजन जैसे अत्यन्त स्नेहानुराग से अनुरक्त अपने पिता श्रेणिक राजा को बेड़ियों से बाँधा। अब मैं जाता हूँ और स्वयं ही श्रेणिक राजा की बेड़ियों को काटता हूँ, ऐसा कहकर कुल्हाड़ी हाथ में ले जहाँ कारागृह था, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ, चल दिया।

श्रेणिक का मनोविचार

२१. तए णं सेणिए राया कूणियं कुमारं परसुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी - "एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए [जाव] दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसिए हिरिसिरि-परिवज्जिए परसुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ। तं न नज्जइ णं ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ" त्ति कट्टु भीए [जाव] तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभये तालपुडगं विसं आसगंसि पक्खिवइ।

तए णं से सेणिए राया तालपुडगविसंसि आसगंसि पक्खित्ते समाणे मुहुत्तंतरेण परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पजढे ओइण्णे।

तए णं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता सेणियं रायं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं ओइण्णं पासइ, पासित्ता महया पिइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चम्पगवरपायवे धस त्ति धरणीयलंसि सवङ्गेहिं संनिवडिए। तए णं से कूणिए कुमारे मुहुत्तंतरेण आसत्थे समाणे रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे विलवमाणे एवं वयासी "अहो णं मए अधन्नेणं अपुण्णेणं अकयपुण्णेणं दुट्ठुकयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करंतेणं। ममम्मूलागं चेव णं सेणिए राया कालगए" त्ति कट्टु राईसरतलवर जाव माडम्बिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-मन्ति-गणगदोवारिय-अमच्च-चेड पीढमद्द-नगर-निगम-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे विलवमाणे महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं सेणियस्स रन्नो नीहरणं करेइ।

तए णं से कूणिए कुमारे एएणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अन्नया कयाइ अन्तेउरपरियाल-संपरिवुडे सभण्डमत्तोवगरणमायाए रायगिहाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव चम्पानयरी तेणेव उवागच्छइ, तत्थ वि णं विउलभोगसमिइसमन्नागए कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था।

तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइ कालाईए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता रज्जं च जाव रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च अंतेउरं च जणवयं च एक्कारसभाए विरिञ्चइ, विरिञ्चित्ता सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरइ।

[२१] श्रेणिक राजा ने हाथ में कुल्हाडी लिए कूणिक कुमार को अपनी ओर आते देखा। देखकर मन ही मन विचार किया—यह मेरा बुरा—विनाश चाहने वाला, यावत् कुलक्षण, अभागा कृष्णाचतुर्दशी को उत्पन्न, लोक-लाज से रहित, निर्लज्ज कूणिक कुमार हाथ में कुल्हाड़ी लेकर इधर आ रहा है। न मालूम मुझे यह किस कुमौत से मारे! इस विचार से उसने भीत, त्रस्त भयग्रस्त, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर तालपुट विष को मुख में डाल लिया।

तदनन्तर तालपुट विष को मुख में डालने और मुहूर्तान्तर के बाद कुछ क्षणों में उस विष के (शरीर में) व्याप्त होने पर श्रेणिक राजा निष्प्राण, निश्चेष्ट, निर्जीव हो गया।

इसके बाद वह कूणिक कुमार जहां कारावास था, वहाँ पहुँचा। पहुचकर उसने श्रेणिक राजा को निष्प्राण, निश्चेष्ट, निर्जीव देखा। तब वह दुस्सह, दुर्द्धर्ष पितृशोक से विलविलाता हुआ कुल्हाड़ी से काटे चम्पक वृक्ष की तरह धड़ाम-से पछाड खाकर पृथ्वी पर गिर पडा।

कुछ क्षणो के पश्चात् कूणिक कुमार आश्वस्त-सा हुआ और रोते हुए, आक्रंदन, शोक एव विलाप करते हुए इस प्रकार कहने लगा—अहो! मुझ अधन्य, पुण्यहीन, पापी, अभागे ने बुरा किया—बहुत बुरा किया जो देवतारूप, अत्यन्त स्नेहानुराग-युक्त अपने पिता श्रेणिक राजा को कारागार में डाला। मेरे कारण ही श्रेणिक राजा कालगत हुए है। तदनन्तर ऐश्वर्यशाली पुरुषों, तलवर राज्यमान्य पुरुषों, मांडलिक, जागीरदारों, कौटुम्बिक—प्रमुख परिवारों के मुखिया, इभ्य—कोटयधीश धनपति—श्रीमंत, श्रेष्ठी—समाज में प्रमुख माने जाने वाले, सेनापतियों, मंत्री, गणक—ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य, चेट—सेवक, पीठमर्दक—अगरक्षक, नागरिक, व्यवसायी, दूत, संधिपाल—राष्ट्र के सीमान्त प्रदेशों के रक्षक आदि विशिष्ट जनों से सपरिवृत होकर रुदन, आक्रन्दन, शोक और विलाप करते हुए महान् ऋद्धि, सत्कार एव अभ्युदय के साथ श्रेणिक राजा का अग्निसंस्कार किया।

तत्पश्चात् वह कूणिक कुमार इस महान् मनोगत मानसिक दुःख से अतीव दुःखी होकर (इस दुःसह दुख को विस्मृत करने के लिए) किसी समय अन्तःपुर परिवार को लेकर धन-संपत्ति आदि गार्हस्थिक उपकरणों के साथ राजगृह से निकला और जहां चंपानगरी थी, वहां आया। (अर्थात् उसने राजगृह नगर का परित्याग कर दिया और चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया।) वहां परम्परागत भोगों को भोगते हुए कुछ समय के बाद शोक-संताप से रहित हो गया अथवा उसका शोक कम हो गया।

तत्पश्चात् उस कूणिक राजा ने किसी दिन काल आदि दस राजकुमारों को बुलाया— आमंत्रित किया और राज्य, राष्ट्र बल-सेना, वाहन-रथ आदि, कोश, धन-संपत्ति, धान्य-भंडार, अंतःपुर और जनपद-देश के ग्यारह भाग किये। भाग करके वे सभी स्वयं अपनी-अपनी राजश्री का भोग करते हुए प्रजा का पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

कुमार वेहल्ल की क्रीड़ा

२२. तत्थ णं चम्पाए नगरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कुणियस्स रन्नो सहोयरे कणीयसे भाया वेहल्ले नामं कुमारे होत्था— सोमाले [जाव] सुरूवे।

तए णं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स सेणिएणं रन्ना जीवंतएणं चेव सेयणए गंधहत्थी अट्ठारसवंके हारे पुव्वदिन्ने।

तए णं से वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा अन्तेउरपरियालसंपरिवुडे चम्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अभिक्खणं अभिक्खणं गङ्गं महाणइं मज्जणयं ओयरइ। तए णं सेयणए गंधहत्थी देवीओ सोण्डाए गिण्हइ, गिण्हित्ता अप्पेगइयाओ पुट्ठे ठवेइ, अप्पेगइयाओ खन्धे ठवेइ, एवं कुम्भे ठवेइ, सीसे ठवेइ, दन्तमुसले ठवेइ, अप्पेगइयाओ सोण्डागयाओ अन्दोलावेइ, अप्पेगइयाओ दन्तन्तरेसु नीणेइ, अप्पेगइयाओ सीभरेणं ण्हाणेइ, अप्पेगइयाओ अणेगेहिं कीलावणेहिं कीलावेइ।

तए णं चम्पाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-महापह-पहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ, जाव एवं भासेइ एवं पन्नवेइ एवं परूवेइ— 'एवं खलु, देवाणुप्पिया, वेहल्ले कुमारे सेयणएण गंधहत्थिणा अंतेउर० [०] तं चेव जाव, अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ। तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्जसिरिफलं पच्चणुभवमाणे विहरइ, नो कुणिए राया।'

[२२] उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अगज कूणिक राजा का कनिष्ठ सहोदर भ्राता वेहल्ल नामक राजकुमार था। वह सुकुमार यावत् रूप-सौन्दर्यशाली था।

अपने जीवित रहते श्रेणिक राजा ने पहले ही वेहल्लकुमार को सेचनक नामक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था।

वह वेहल्लकुमार अन्तःपुर परिवार के साथ सेचनक गंधहस्ती पर आरूढ होकर चम्पानगरी के बीचोंबीच होकर निकलता और निकल कर स्नान करने के लिए बारंबार गंगा महानदी में उतरता। उस समय वह सेचनक गंधहस्ती रानियों को सूंड से पकड़ता, पकड़ कर किसी को पीठ पर बिठलाता, किसी को कंधे पर बैठाता, किसी को गंडस्थल पर रखता, किसी को मस्तक पर बैठाता,

दंत-मूसलों पर बैठाता, किसी को सूंड में लेकर झुलाता, किसी को दाँतों के बीच लेता, किसी को फुहारों से नहलाता और किसी-किसी को अनेक प्रकार की क्रीडाओं से क्रीडित करता—खेलाता था।

तब चम्पानगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, महापथों और पथों में बहुत से लोग आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार कहते, बोलते, बतलाते और प्ररूपित करते कि—देवानुप्रियो! अन्तःपुर परिवार को साथ लेकर वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती के द्वारा अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करता है। वास्तव में वेहल्ल कुमार ही राजलक्ष्मी का सुन्दर फल अनुभव कर रहा है। कूणिक राजा राजश्री का उपभोग नहीं करता।

पद्मावती की ईर्ष्या

२३. तए णं तीसे पउमावईए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए [अयमेयारूवे [जाव] समुप्पज्जित्था—"एवं खलु वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा [जाव] अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ। तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्जसिरिफलं पच्चणुभवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया। तं किं णं अम्हं रज्जेण वा [जाव] जणवएण वा, जइ णं अम्हं सेयणगे गंधहत्थी नत्थि! तं सेयं खलु ममं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० [जाव] परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेत्ति, वद्धावित्ता एवं वयासी—"एवं खलु सामी, वेहल्ले कुमारे सेयणएण गंधहत्थिणा जाव अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ। तं किं णं अम्हं रज्जेण वा जाव जणवएण वा, जइ णं अम्हं सेयणए गंधहत्थी नत्थि ?।

तए णं से कूणिए राया पउमावईए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं सा पउमावई देवी अभिक्खणं अभिक्खणं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवेइ। तए णं से कूणिए राया पउमावईए देवीए अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं विन्नविज्जमाणे अन्नया कयाइ कुमारं सद्दावेइ, सद्दावित्ता सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ।

[२३] तब (कूणिक की पत्नी) पद्मावती देवी को इस प्रकार के प्रजाजनों के कथन को सुनकर यह संकल्प यावत् विचार समुत्पन्न हुआ—'निश्चय ही वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती के द्वारा यावत् अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करता है। अतएव यह वेहल्ल कुमार ही सचमुच में राजश्री का फल भोग रहा है, कूणिक राजा नहीं। हमारा यह राज्य यावत् जनपद किस काम का यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती न हो! इसलिए मुझे कूणिक राजा से इस विषय में निवेदन करना चाहिये।' पद्मावती ने इस प्रकार का विचार किया और विचार कर जहाँ कूणिक राजा था, वहां आई और आकर दोनों हाथ जोड़, मुकुलित दस नखों पूर्वक शिर पर आवर्त्त करके, मस्तक पर अजलि करके जय-विजय शब्दों से उसे बधाया और फिर इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन्! वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती से यावत् भांति-भांति की क्रीडाएँ करता है, तो हमारा राज्य यावत् जनपद किस काम का यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती नहीं है।

कूणिक राजा ने पद्मावती के इस कथन का आदर नही किया, उसे सुना नही—अनसुना कर दिया, उस पर ध्यान नही दिया और चुपचाप ही रहा। तब वह पद्मावती देवी बार-बार इस

बात का ध्यान दिलाती रही। पद्मावती द्वारा बार-बार इसी बात को दुहराने पर कूणिक राजा ने एक दिन वेहल्ल कुमार को बुलाया और सेचनक गंधहस्ती तथा अठारह लड़ का हार मांगा।

वेहल्ल कुमार का मनोमंथन

२४. तए णं से वेहल्ले कुमारे कूणियं रायं एवं वयासी—"एवं खलु सामी, सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव सेयणए गंधहत्थी अट्ठारसवंके य हारे दिन्ने। तं जइ णं सामी, तुब्भे ममं रज्जस्स य [जाव] जणवयस्स य अद्धं दलयह, तो णं अहं तुब्भं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं दलयामि।"

तए णं से कूणिए राया वेहल्लस्स कुमारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अभिक्खणं अभिक्खणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ।

तए णं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स कूणिएणं रन्ना अभिक्खणं अभिक्खणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं (जायमाणस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पज्जित्था) "एवं खलु अक्खिविउकामे णं, गिण्हिउकामे णं, उद्दालेउकामे णं ममं कूणिए राया सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं! तं [जाव] ममं कूणिए राया (नो जाणइ) ताव (सेयं मे) सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अन्तेउरपरियालसंपरिवुडस्स सभण्डमत्तोवगरणमायाए चम्पाओ नयरीओ पडिनिक्खमित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कूणियस्स रन्नो अन्तराणि य छिद्दाणि य मम्माणि य रहस्साणि य विवराणि य पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से वेहल्ले कुमारे अन्नया कयाइ कूणियस्स रन्नो अन्तरं जाणइ, सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अन्तेउरपरियालसंपरिवुडे सभण्डमत्तोवगरणमायाए चम्पाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वेसाली नयरी, तेणेव उवागच्छइ, वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

[२४] तब वेहल्ल कुमार ने कूणिक राजा को उत्तर दिया—'स्वामिन्! श्रेणिक राजा ने अपने जीवनकाल में ही मुझे यह सेचनक गधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था। यदि स्वामिन्! आप राज्य यावत् जनपद का आधा भाग मुझे दे तो मैं सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दूंगा।'

कूणिक राजा ने वेहल्ल कुमार के इस उत्तर को स्वीकार नहीं किया। उस पर ध्यान नहीं दिया और बार-बार सेचनक गंधहस्ती एवं अठारह लड़ों के हार को देने का आग्रह किया।

तब कूणिक राजा के वारंवार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ो के हार को मांगने पर वेहल्ल कुमार के मन में विचार आया कि वह उनको झपटना चाहता है, लेना चाहता है, छीनना चाहता है। इसलिए जब तक कूणिक राजा मेरे सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को झपट न सके, ले न सके और छीन न सके, उससे पहले ही सेचनक गंधहस्ती और हार को लेकर अन्तःपुर परिवार और गृहस्थी की साधन-सामग्री के साथ चंपानगरी से निकलकर - भागकर वैशाली नगरी में आर्यक (नाना) चेटक का आश्रय लेकर रहूँ। उसने ऐसा विचार किया। विचार करके

कूणिक राजा की असावधानी, मौका, अन्तरंग बातों-रहस्यों की जानकारी की प्रतीक्षा करते हुए समय यापन करने लगा।

तत्पश्चात् किसी दिन वेहल्ल कुमार ने कूणिक राजा की अनुपस्थिति को जाना और सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ों का हार तथा अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के उपकरण—साधनों को लेकर चंपानगरी से भाग निकला। निकलकर जहाँ वैशाली नगरी थी वहाँ आया और अपने नाना चेटक का आश्रय लेकर वैशाली नगरी में निवास करने लगा।

कूणिक राजा की प्रतिक्रिया

२५. तए णं से कूणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे 'एवं खलु वेहल्ले कुमारे ममं असंविदिएणं सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अन्तेउरपरियालसंपरिवुडे [जाव] अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं सेयं खलु सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं आणेउं दूयं पेसित्तए संपेहेइ, संपेहित्ता दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी "गच्छह णं तुमं, देवाणुप्पिया वेसालिं नयरिं। तत्थ णं तुमं ममं अज्जं चेडगं रायं करयल० वद्धावेत्ता एवं वयाही "एवं खलु, सामी, कूणिए राया विन्नवेइ—एस णं वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं गहाय हव्वमागए। तए णं तुब्भे सामी, कूणियं रायं अणुगिण्हमाणा सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमारं च पेसेह।"

तए णं से दूए कूणिएणं करयल० [जाव] पडिसुणित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा चित्तो [जाव] पायरासेहिं नाइविकिट्ठेहिं अन्तरावासेहिं वसमाणे वसमाणे जेणेव चम्पा नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चम्पाए नयरीए मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव चेडगस्स रन्नो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ।

तं महत्थं जाव पाहुडं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव अब्भंतरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चेडए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेडगं रायं करयलपरिग्गहियं जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी— "एवं खलु, सामी, कूणिए राया विन्नवेइ—एस णं वेहल्ले कुमारे, तहेव भाणियव्वं [जाव] वेहल्लं कुमारं पेसेह।"

[२५] तत्पश्चात् कूणिक राजा ने यह समाचार जानकर कि मुझे बिना बताए ही वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार तथा अन्तःपुर परिवार सहित गृहस्थी के उपकरण-साधनो को लेकर यावत् आर्यक चेटक राजा के आश्रय में निवास कर रहा है। तब उसने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को लौटाने के लिए दूत भेजना उचित है, ऐसा विचार किया और विचार करके दूत को बुलाया। बुलाकर उससे कहा—'देवानुप्रिय! तुम वैशाली नगरी जाओ। वहाँ तुम आर्यक चेटकराज को दोनो हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बधाकर इस प्रकार निवेदन करना 'स्वामिन्! कूणिक राजा विनति करते है कि वेहल्ल कुमार कूणिक राजा को बिना बताए ही सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को लेकर यहाँ आ गये हैं। इसलिए

स्वामिन् ! आप कूणिक राजा को अनुगृहीत करते हुए सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को वापिस लौटा दें। साथ ही वेहल्ल कुमार को भेज दें।

कूणिक राजा की इस आज्ञा को दोनों हाथ जोड़ कर यावत् स्वीकार करके दूत जहाँ अपना घर था, वहाँ आया। आकर चित्त सारथी के समान यावत् प्रातः कलेवा करता हुआ, अति दूर नहीं किन्तु पास-पास अन्तरावास-पड़ाव-विश्राम करते हुए जहाँ वैशाली नगरी थी वहाँ आया। आकर वैशाली नगरी के बीचों-बीच होकर जहाँ चेटक राजा का आवासगृह था और जहाँ उसकी बाह्य उपस्थान शाला (सभाभवन) थी, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया और रथ से नीचे उतरा।

तदनन्तर बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य उपहार लेकर जहाँ आभ्यन्तर सभाभवन था, उसमें जहाँ चेटक राजा था, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ यावत् 'जय-विजय' शब्दों से उसे बधाया और बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन् ! कूणिक राजा प्रार्थना करते है—वेहल्ल कुमार हाथी और हार लेकर कूणिक राजा की आज्ञा बिना यहाँ चले आए है इत्यादि, यावत् हार, हाथी और वेहल्ल कुमार को वापिस भेजिए।'

चेटक राजा का उत्तर

२६. तए णं से चेडए राया तं दूयं वयासी—"जह चेव णं देवाणुप्पिया, कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं नत्तुए, तहेव णं वेहल्ले वि कुमारे सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए, मम नत्तुए। सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव वेहल्लस्स कुमारस्स सेयणगे गंधहत्थी अट्ठारसवंके य हारे पुव्वविइण्णे। तं जइ णं कूणिए राया वेहल्लस्स रज्जस्स य जणवयस्स य अद्धं दलयइ तो णं अहं सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं च कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामि, वेहल्लं च कुमारं पेसेमि।" तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ पडिविसज्जेइ।

तए णं से दूए चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाणे जेणेव चाउग्घंटे आसरहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, वेसालिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुहेहिं वसहीहिं [जाव] वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु, सामी, चेडए राया आणवेइ— जह चेव णं कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते, चेल्लणाए देवीए अत्तए, मम नत्तुए, तं चेव भाणियव्वं जाव, वेहल्लं च कुमारं पेसेमि। तं न देइ णं सामी, चेडए राया सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं च, वेहल्लं च नो पेसेइ।"

तए णं से कूणिए राया दोच्चं पि दूयं सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं, देवाणुप्पिया ! वेसालिं नयरिं। तत्थ णं तुमं मम अज्जगं चेडगं रायं जाव एवं वयाही—एवं खलु, सामी, कूणिए राया विन्नवेइ—"जाणि काणि रयणाणि समुप्पज्जंति, सव्वाणि ताणि रायकुलगामीणि। सेणियस्स रन्नो रज्जसिरिं करेमाणस्स पालेमाणस्स दुवे रयणा समुप्पन्ना, तं जहा—सेयणए गंधहत्थी, अट्ठारसवंके हारे। तं णं तुब्भे सामी, रायकुलपरंपरागयं ठिइयं अलोवेमाणा सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमारं पेसेह।"

तए णं से दूए कूणियस्स रन्नो, तहेव जाव बद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु सामी, कूणिए राया विन्नवेइ—जाणि काणि, वेहल्लं कुमारं पेसेह।"

तए णं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—"जह चेव णं देवाणुप्पिया, कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए, जहा पढमं [जाव] वेहल्लं च कुमारं पेसेमि।" तं दूयं सक्कारेइ संमाणेइ पडिविसज्जेइ।

तए णं से दूए [जाव] कूणियस्स रन्नो बद्धावेत्ता एवं वयासी—"चेडए राया आणवेइ–जह चेव णं, देवाणुप्पिया! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए, [जाव] वेहल्लं कुमारं पेसेमि। तं न देइ णं, सामी, चेडए राया सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं कुमारं नो पेसेइ।"

[२६] दूत का निवेदन सुनने के पश्चात् चेटक राजा ने दूत से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! जैसे कूणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का अंगजात तथा मेरा दौहित्र है, वैसे ही वेहल्ल कुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज और मेरा दौहित्र है। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन-काल में ही वेहल्ल कुमार को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार दिया था। इसलिए यदि कूणिक राजा वेहल्ल कुमार को राज्य और जनपद का आधा भाग दे तो मैं सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को लौटा दूंगा तथा वेहल्ल कुमार को भेज दूंगा।'

तत्पश्चात् अर्थात् इस प्रकार का उत्तर देकर उस दूत को सत्कार-सम्मान करके विदा कर दिया।

इसके बाद चेटक राजा द्वारा विदा किया गया वह दूत जहाँ चार घण्टों वाला अश्व-रथ था, वहाँ आया। आकर उस चार घंटों वाले अश्व-रथ पर आरूढ हुआ। वैशाली नगरी के बीच से निकला। निकलकर साताकारी वसतिकाओं में विश्राम करता हुआ प्रातः कलेवा करता हुआ (यथासमय चम्पा नगरी में पहुंचा। पहुंचकर) यावत् (कूणिक राजा के समक्ष उपस्थित हुआ और उसे) बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—स्वामिन्! चेटक राजा ने फरमाया है—जैसे श्रेणिक राजा का पुत्र और चेलना देवी का अंगज कूणिक राजा मेरा दोहिता है, वैसे ही वेहल्ल कुमार भी है, इत्यादि। यहाँ चेटक का पूर्वोक्त कथन सब कहना चाहिए। इसलिए हे स्वामिन्! चेटक राजा ने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार नहीं दिया है और न ही वेहल्ल कुमार को भेजा है।

चेटक का उत्तर सुनकर कूणिक राजा ने दूसरी बार भी दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम पुनः वैशाली नगरी जाओ। वहाँ तुम मेरे नाना चेटकराज से यावत् इस प्रकार निवेदन करो—स्वामिन्! कूणिक राजा यह प्रार्थना करता है—'जो कोई भी रत्न प्राप्त होते हैं, वे सब राजकुलानुगामी-राजा के अधिकार में होते हैं। श्रेणिक राजा ने राज्य-शासन करते हुए, प्रजा का पालन करते हुए दो रत्न प्राप्त किये थे—सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार। इसलिए स्वामिन्! आप राजकुल-परम्परागत स्थिति-मर्यादा को भंग नहीं करते हुए सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों के हार को वापिस कूणिक राजा को लौटा दें और वेहल्ल कुमार को भी भेज दें।'

तत्पश्चात् उस दूत ने कूणिक राजा की आज्ञा को सुना। वह वैशाली गया और कूणिक की विज्ञप्ति निवेदन की—'स्वामिन् ! कूणिक राजा ने प्रार्थना की है कि—जो कोई भी रत्न होते हैं वे राजकुलानुगामी होते हैं, अतः आप हस्ती, हार और कुमार वेहल्ल को भेज दें।'

तब चेटक राजा ने उस दूत से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! जैसे कूणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगज है, इत्यादि कुमार वेहल्ल को भेज दूंगा, यहाँ तक जैसे पूर्व में कहा, वैसा पुनः यहाँ भी कहना चाहिए।' और उस दूत का सत्कार-सम्मान करके विदा किया।

तदनन्तर उस दूत ने यावत् चम्पा लौटकर कूणिक राजा का अभिनन्दन कर इस प्रकार निवेदन किया—'चेटक राजा ने फरमाया है कि देवानुप्रिय ! जैसे कूणिक राजा श्रेणिक का पुत्र और चेलना देवी का अंगजात है, उसी प्रकार वेहल्ल कुमार भी। यावत् आधा राज्य देने पर कुमार वेहल्ल को भेजूंगा। इसलिए स्वामिन् ! चेटक राजा ने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ों का हार नहीं दिया है और न वेहल्ल कुमार को भेजा है।'

कूणिक राजा की चेतावनी

२७. तए णं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते [जाव] मिसिमिसेमाणे तच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया, वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो वामेण पाएणं पायपीढं अक्कमाहि, अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणावेहि, पणावित्ता आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चेडगं रायं एवं वयाही—हं भो चेडगराया, अपत्थियपत्थिया, दुरन्त० [जाव] परिवज्जिया, एस णं कूणिए राया आणवेइ—पच्चप्पिणाहि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं च कुमारं पेसेहि, अहव जुद्धसज्जो चिट्ठाहि। एस णं कूणिए राया सबले सवाहणे सखंधावारे णं जुद्धसज्जे हव्वमागच्छइ।

तए णं से दूए करयल०, तहेव [जाव] जेणेव चेडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल [जाव] वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एस णं, सामी, ममं विणयपणिवत्ती। इयाणिं कूणियस्स रन्नो आणत्ति—चेडगस्स रन्नो वामेणं पाएण पायवीढं अक्कमइ, अक्कमित्ता आसुरुत्ते कुंतग्गेण लेहं पणावेइ, तं चेव सबलखंधावारे णं इह हव्वमागच्छइ।"

तए णं से चेडए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते [जाव] साहट्टु एवं वयासी—"न अप्पिणामि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं, वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि, एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि" तं दूयं असक्कारियं असंमाणियं अवद्दारेणं निच्छुहावेइ।

[२७] तब कूणिक राजा ने उस दूत द्वारा चेटक के इस उत्तर को सुनकर और उसे अधिगत करके क्रोधाभिभूत हो यावत् दांतों को मिसमिसाते हुए पुनः तीसरी बार दूत को बुलाया। बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय ! तुम वैशाली नगरी जाओ और बायें पैर से पादपीठ को ठोकर मारकर चेटक राजा को भाले की नोक से यह पत्र देना। पत्र देकर क्रोधित यावत् मिसमिसाते हुए भृकुटि तान कर ललाट में त्रिवली डालकर चेटकराज से यह कहना—'ओ अकाल मौत के अभिलाषी, निर्भागी, यावत् निर्लज्ज चेटक राजा, कूणिक राजा यह आदेश देता है कि कूणिक राजा

को सेचनक गंधहस्ती एवं अठारह लड़ों का हार प्रत्यर्पित करो और वेहल्ल कुमार को भेजो अथवा युद्ध के लिए सज्जित—तैयार होओ। कूणिक राजा बल, वाहन और सैन्य के साथ युद्धसज्जित होकर शीघ्र ही आ रहे हैं।'

तब दूत ने पूर्वोक्त प्रकार से हाथ जोड़कर कूणिक का आदेश स्वीकार किया। वह वैशाली नगरी पहुंचा। जहाँ चेटक राजा था वहाँ आया। आकर उसने दोनो हाथ जोड़कर यावत् बधाई देकर इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! यह तो मेरी विनयप्रतिपति—शिष्टाचार है। किन्तु कूणिक राजा की आज्ञा यह है कि बायें पैर से चेटक राजा की पादपीठ को ठोकर मारो, ठोकर मारकर क्रोधित होकर भाले की नोक से यह पत्र दो, इत्यादि सेना सहित शीघ्र ही यहाँ आ रहे है।'

तब चेटक राजा ने उस दूत से यह धमकी सुनकर और अवधारित कर क्रोधाभिभूत यावत् ललाट सिकोड़कर इस प्रकार उत्तर दिया 'कूणिक राजा को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ो का हार नहीं लौटाऊँगा और न वेहल्ल कुमार को भेजूंगा किन्तु युद्ध के लिए तैयार हूं।' ऐसा कह कर उस दूत को असत्कार-असम्मान-अपमान कर पिछले द्वार से निकाल दिया।

युद्ध की तैयारी

२८. तए णं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते कालाईए दस कुमारे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—"एवं खलु, देवाणुप्पिया, वेहल्ले कुमारे ममं असंविदिएण सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं अन्तेउरं सभण्डं च गहाय चम्पाओ निक्खमई, निक्खमित्ता वेसालिं अज्जगं [जाव] उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं मए सेयणगस्स गंधहत्थिस्स अट्ठारसवंकस्स अट्ठाए दूया पेसिया। ते य चेडएण रन्ना इमेणं कारणेणं पडिसेहिया अदुत्तरं च णं ममं तच्चे दूए असक्कारिए असंमाणिए अवद्दारेणं निच्छुहावेइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया, अम्हं चेडगस्स रन्नो जुत्तं गिण्हित्तए।"

तए णं कालाईया दस कुमार कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

[२८] तत्पश्चात् कूणिक राजा ने दूत से इस समाचार को सुनकर और उस पर विचार कर क्रोधित हो काल आदि दस कुमारों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! बात यह है कि मुझे बिना बताये ही वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ो का हार और अन्त:पुर-परिवार सहित गृहस्थी के उपकरणो को लेकर चम्पा से भाग निकला। निकल कर वैशाली में आर्य चेटक का आश्रय लेकर रह रहा है। मैंने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ो का हार लाने के लिए दूत भेजा। चेटक राजा ने इस (पूर्वोक्त) कारण से हाथी, हार और वेहल्ल कुमार को भेजने से इंकार कर दिया और मेरे तीसरे दूत को असत्कारित, अपमानित कर पिछले द्वार से निष्कामित कर दिया। इसलिए हे देवानुप्रियो! हमें चेटक राजा का निग्रह करना चाहिए, उसे दण्डित करना चाहिए।'

उन काल आदि दस कुमारों ने कूणिक राजा के इस विचार को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

काल आदि दस कुमारों की युद्धार्थ सज्जा

२९. तए णं से कूणिए राया कालाईए दस कुमारे एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया, सएसु सएसु रज्जेसु; पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया [जाव] पायच्छित्ता हत्थिखंधवरगया, पत्तेयं

पत्तेय तिहिं दंतिसहस्सेहिं एवं तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं आससहस्सेहिं तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धि संपरिवुडा सव्विड्ढीए [जाव] सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वभूसाए सव्वविभूईए सव्व-संभमेणं सव्वपुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सव्वदिव्वतुडियसद्दसंनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगपडुप्पवाइयरवेणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखर-मुहिहुडुक्कमुरयमुइङ्गदुन्दुहिनिग्घोसनाइयरवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्खमह, पडि-निक्खमित्ता ममं अन्तियं पाउब्भवह।

तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं सोच्चा सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया जाव तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धि संपरिवुडा सव्विड्ढीए जाव रवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्खमन्ति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अङ्गा जणवए, जेणेव चम्पा नयरी, जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागया करयल० जाव वद्धावेन्ति।

[२९] तत्पश्चात् कूणिक राजा ने उन काल आदि दस कुमारों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! आप लोग अपने-अपने राज्य में जाओ, और प्रत्येक स्नान यावत् प्रायश्चित्त आदि करके श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ होकर प्रत्येक अलग-अलग तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार घोड़ों और तीन कोटि मनुष्यों को साथ लेकर समस्त ऋद्धि-वैभव यावत् सब प्रकार के सैन्य, समुदाय एवं आदरपूर्वक सब प्रकार की वेशभूषा से सजकर, सर्व विभूति, सर्व सम्भ्रम-स्नेहपूर्ण उत्सुकता, सब प्रकार के सुगंधित पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार, सर्व दिव्य वाद्यसमूहों की ध्वनि-प्रतिध्वनि, महान् ऋद्धि-विशिष्ट वैभव, महान् द्युति-ओज-आभा, महाबल-विशिष्ट सेना, विशिष्ट समुदाय, शंख, ढोल, पटह, भेरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के घोष की ध्वनि के साथ अपने-अपने नगरो से प्रस्थान करो और प्रस्थान करके मेरे पास आकर एकत्रित होओ।

तब वे कालादि दसों कुमार कूणिक राजा के इस विचार—कथन को सुनकर अपने-अपने राज्यों को लौटे। प्रत्येक ने स्नान किया, (तीन-तीन हजार हाथियों, रथों, घोड़ों) यावत् तीन कोटि मनुष्यों— पैदल सैनिकों को साथ लेकर समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यघोष-निनादों के साथ अपने-अपने नगरों से निकले। निकलकर जहाँ अंग जनपद—प्रान्त था, जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ कूणिक राजा था, वहाँ आए और दोनो हाथ जोड़कर यावत् बधाया—उसका अभिनन्दन किया।

कूणिक : युद्ध-प्रयाण से पूर्व

३०. तए णं से कूणिए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हयगयरहजोहचाउरङ्गिणिं सेणं संनाहेह, ममं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह," जाव पच्चप्पिणन्ति।

तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, [जाव] उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता मुत्ताजालाभिरामे विचित्तमणिरयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमण्डवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे, सुहोदएहिं पुप्फोदएहिं गंधोदएहिं सुद्धोदएहि य पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणाव-

साणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियङ्गे अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिसरयपालम्बपलम्बमाणकडिसुत्तसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जे अङ्गुलेज्जगललियङ्गललियकयाहरणे नाणामणिकडगतुडियथम्भियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुण्डलुज्जोइयाणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकतरइयवच्छे पालम्बपलम्बमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिङ्गलङ्गुलीए नाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणोविय-मिसिमिसन्तविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थआविद्धवीरवलए, किं बहुणा, कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए नरिंदे सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयङ्गे मङ्गलजयसद्दकयालोए अणेगगणनायग--दण्डनायग--राईसर-तलवर--माडम्बिय--कोडुम्बिय-मन्ति--महामन्ति--गणग--दोवारिय-अमच्चं-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए विव गहगणदिप्पन्ततारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्झणघराओ पडिनिग्गच्छइ पडिनिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जाव नरवई दुरूढे।

तए णं से कूणिए राया तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जाव रवेणं चम्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कालाईया दस कुमारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कालाइएहिं दसहिं कुमारेहिं सद्धिं एगओ मेलायन्ति।

तए णं से कूणिए राया तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं तेत्तीसाए आससहस्सेहिं तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए [जाव] रवेणं सुहेहिं वसईहिं सुहेहिं पायरासेहिं नाइविगिट्ठेहिं अन्तरावासेहिं वसमाणे वसमाणे अङ्गजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव विदेहे जणवए, जेणेव वेसाली नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[३०] काल आदि दस कुमारों की उपस्थिति के अनन्तर कूणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों—सेवकों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तीरत्न—हाथियों में प्रधान श्रेष्ठ हाथी को प्रतिकर्मित—सुसज्ज कर, घोड़े, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से सुगठित चतुरंगिणी सेना को सुसन्नद्ध—युद्ध के लिए तैयार करो और फिर मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ—मुझे सूचित करो कि आज्ञानुपालन हो गया।' यावत् वे सेवक आज्ञानुरूप कार्य सम्पन्न होने की सूचना देते हैं।

तत्पश्चात् कूणिक राजा जहाँ स्नानगृह था वहाँ आया यावत् स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ। प्रवेश करके मोतियों के समूह से युक्त होने से मनोहर, चित्र-विचित्र मणि-रत्नों से खचित फर्श वाले, रमणीय, स्नान-मंडप में विविध मणि-रत्नों के चित्रामों से चित्रित स्नानपीठ पर सुखपूर्वक बैठकर उसने सुखद-शुभ, पुष्पोदक से, सुगंधित एवं शुद्ध जल से कल्याणकारी उत्तम स्नान-विधि से स्नान किया। स्नान करने के अनन्तर अनेक प्रकार के सैकड़ों कौतुक-मंगल किए तथा कल्याणप्रद प्रवर स्नान के अंत में पक्ष्मल-रुएँदार काषायिक मुलायम वस्त्र से शरीर को पौंछा। नवीन--कोरे महामूल्यवान् दूष्यरत्न (उत्तम वस्त्र) को धारण किया; सरस, सुगंधित गोशीर्ष चंदन से अंगों का लेपन किया। पवित्र माला धारण की, केशर आदि का विलेपन किया, मणियों और स्वर्ण से निर्मित

आभूषण धारण किए। हार (अठारह लड़ों का हार) अर्धहार (नौ लड़ों का हार) त्रिसर (तीन लड़ों का हार) और लम्बे-लटकते कटिसूत्र—करधनी से अपने को सुशोभित किया; गले में ग्रैवेयक (कंठा) आदि आभूषण धारण किए, अंगुलियों में अंगूठी पहनीं। इस प्रकार सुललित अंगों को सुन्दर आभूषणों से आभूषित किया। मणिमय कंकणों, त्रुटितों एवं भुजबन्दों से भुजाएँ स्तम्भित हो गईं, जिससे उसकी शोभा और अधिक बढ़ गई। कुंडलों से उसका मुख चमक गया, मुकुट से मस्तक देदीप्यमान हो गया। हारों से आच्छादित उसका वक्षस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था। लंबे लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय (दुपट्टे) के रूप में धारण किया। मुद्रिकाओं से अंगुलियां पीतवर्ण-सी दिखती थीं। सुयोग्य शिल्पियों द्वारा निर्मित, स्वर्ण एवं मणियों के सुयोग से सुरचित, विमल महार्ह—महान् श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा धारण करने योग्य, सुश्लिष्ट—भली प्रकार से सांधा हुआ; विशिष्ट-उत्कृष्ट, प्रशस्त आकारयुक्त; वीरवलय (विशेष प्रकार का कंकण) धारण किया। अधिक क्या कहा जाए, कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित नरेन्द्र (कूणिक) कोरण्ट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर, दोनों पार्श्वों में चार चामरों से विंजाता हुआ, लोगो द्वारा मंगलमय जय-जयकार किया जाता हुआ, अनेक गणनायको, दंडनायकों, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंविक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नागरिक, निगमवासी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल, आदिको से घिरा हुआ, श्वेत-धवल महामेघ से निकले हुए देदीप्यमान ग्रहों एवं नक्षत्रमंडल के मध्य चन्द्रमा के सदृश प्रियदर्शन वह नरपति स्नानगृह से बाहर निकला। निकलकर जहाँ बाह्य सभाभवन था वहाँ आया, यावत् अजनगिरि के शिखर के समान विशाल उच्च गजपति पर वह नरपति आरूढ हुआ।

तत्पश्चात् कूणिक राजा तीन हजार हाथियो (तीन हजार रथो, तीन हजार अश्वों, तीस कोटि पदातियों के साथ) यावत् वाद्यघोषपूर्वक चपा नगरी के मध्य भाग मे से निकला, निकलकर जहाँ काल आदि दस कुमार ठहरे थे वहाँ पहुँचा और काल आदि दस कुमारों से मिला।

इसके बाद तेतीस हजार हाथियो, तेतीस हजार घोड़ों, तेतीस हजार रथों और तेतीस कोटि मनुष्यों से घिर कर सर्व ऋद्धि यावत् कोलाहल पूर्वक सुविधाजनक पड़ाव डालता हुआ, सुखपूर्वक प्रातः कलेवा आदि करता हुआ; अति विकट अन्तरावास (पड़ाव) न कर किन्तु निकट-निकट विश्राम करते हुए अंग जनपद के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ विदेह जनपद था, उसमें भी जहाँ वैशाली नगरी थी, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

चेटक का गण-राजाओं से परामर्श

३१. तए णं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"एवं खलु, देवाणुप्पिया! वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इहं हव्वमागए। तए णं कूणिएणं सेयणगस्स अट्ठारसवंकस्स य अट्ठाए तओ दूया पेसिया। ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया। तए णं से कूणिए ममं एयमट्ठं अपडिसुणमाणे चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ। तं किं णं देवाणुप्पिया, सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो? वेहल्लं कुमारं पेसेमो? उदाहु जुज्झित्था?"

तए णं नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी—"न एयं सामी ! जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा, जं णं सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ, वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ। तं जइ णं कूणिए राया चाउरङ्गिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तए णं अम्हे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झामो।"

तए णं से चेडए राया ते नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो एवं वयासी—जइ णं देवाणुप्पिया, तुब्भे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया, सएसु सएसु रज्जेसु, ण्हाया जहा कालाईया [जाव] जएणं विजएणं वद्धावेंति।

तए णं से चेडए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"आभिसेक्कं जहा कूणिए" [जाव] दुरूढे।

[३१] राजा कूणिक का युद्ध के लिए प्रस्थान का समाचार जानकर चेटक राजा ने काशी-कोशल देशों के नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी इन अठारह गण-राजाओं को परामर्श करने हेतु आमंत्रित किया और उनके एकत्र होने पर कहा—देवानुप्रियो ! बात यह है कि कूणिक राजा को विना जताए– कहे-सुने वेहल्ल कुमार सेचनक हाथी और अठारह लड़ों का हार लेकर यहाँ आ गया है। किन्तु कूणिक ने सेचनक हाथी और अठारह लड़ों के हार को वापिस लेने के लिए तीन दूत भेजे। किन्तु मैंने इस कारण अर्थात् अपनी जीवित अवस्था में स्वयं श्रेणिक राजा ने उसे ये दोनो वस्तुएं प्रदान की है, फिर भी हार-हाथी चाहते हो तो उसे आधा राज्य दो, यह उत्तर देकर उन दूतो को वापिस लौटा दिया। तब कूणिक मेरी इस बात को न सुनकर और न स्वीकार कर चतुरंगिणी सेना के साथ युद्धसज्जित होकर यहाँ आ रहा है। तो क्या देवानुप्रियो ! सेचनक हाथी और अठारह लड़ों का हार वापिस कूणिक राजा को लौटा दें ? वेहल्ल कुमार को उसके हवाले कर दे ? अथवा युद्ध करें ?

तब उन काशी-कोशल के नौ मल्लकी और नौ लिच्छवी—अठारह गणराजाओं ने चेटक राजा से इस प्रकार कहा—स्वामिन् ! यह न तो उचित है—युक्त है, न अवसरोचित है और न राजा के अनुरूप ही है कि सेचनक और अठारह लड़ों का हार कूणिक राजा को लौटा दिया जाए और शरणागत वेहल्ल कुमार को भेज दिया जाए। इसलिए जब कूणिक राजा चतुरंगिणी सेना को लेकर युद्धसज्जित होकर यहाँ आ रहा है तब हम कूणिक राजा के साथ युद्ध करें।

इस पर चेटक राजा ने उन नौ लिच्छवी, नौ मल्ली काशी-कोशल के अठारह गण-राजाओं से कहा—यदि आप देवानुप्रिय कूणिक राजा से युद्ध करने के लिए तैयार हैं तो देवानुप्रियो ! अपने अपने राज्यों में जाइए और स्नान आदि कर कालादि कुमारों के समान यावत् (युद्ध के लिए सुसज्जित होकर अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ यहाँ चम्पा में आइए। यह सुनकर अठारहों राजा अपने-अपने राज्यों में गए और युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आए।) आकर उन्होंने चेटक राजा को जय-विजय शब्दों से वधाया।

उसके बाद चेटक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर यह आज्ञा दी—आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाओ आदि कूणिक राजा की तरह यावत् चेटक राजा हाथी पर आरूढ हुआ।

चेटक राजा का युद्धक्षेत्र में आगमन

३२. तए णं से चेडए राया तिहिं दन्तिसहस्सेहिं, जहा कूणिए [जाव] वेसालिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते नव मल्लई नव लेच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो तेणेव उवागच्छइ।

तए णं से चेडए राया सत्तावन्नाए दन्तिसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए आससहस्सेहिं, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सुहेहिं वसहीहिं पायरासेहिं नाइविगिट्ठेहिं अन्तरेहिं वसमाणे वसमाणे विदेहं जणवयं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पन्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खन्धावारनिवेसणं करेइ, करित्ता कूणियं रायं पडिवालेमाणे जुद्धसज्जे चिट्ठइ।

तए णं से कूणिए राया सव्विड्ढीए [जाव] रवेणं जेणेव देसप्पन्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेडयस्स रन्नो जोयणन्तरियं खन्धावारनिवेसं करेइ।

[३२] अठारहों गण-राजाओं के आ जाने के पश्चात् चेटक राजा कूणिक राजा की तरह तीन हजार हाथियो आदि के साथ वैशाली नगरी के बीचोबीच होकर निकला। निकलकर जहाँ वे नौ मल्ली, नौ लिच्छवी काशी-कोशल के अठारह गणराजा थे, वहाँ आया।

तदनन्तर चेटक राजा सत्तावन हजार हाथियो, सत्तावन हजार घोड़ों, सत्तावन हजार रथों और सत्तावन कोटि मनुष्यों को साथ लेकर सर्व ऋद्धि यावत् वाद्यघोष पूर्वक सुखद वास, प्रातः कलेवा और निकट-निकट विश्राम करते हुए विदेह जनपद के बीचोंबीच से चलते जहाँ सीमान्त-प्रदेश था, वहाँ आया। आकर स्कन्धावार का निवेश किया—पड़ाव डाल दिया तथा कूणिक राजा की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध को तत्पर हो ठहर गया।

इसके बाद कूणिक राजा समस्त ऋद्धि- वैभव यावत् कोलाहल के साथ जहाँ सीमांतप्रदेश था, वहाँ आया। आकर चेटक राजा से एक योजन की दूरी पर उसने भी स्कन्धावारनिवेष किया।

युद्धार्थ व्यूह-रचना

३३. तए णं ते दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेंति, सज्जावित्ता रणभूमिं जयन्ति।

तए णं से कूणिए राया तेत्तीसाए दन्तिसहस्सेहिं जाव मणुस्सकोडीहिं गरुलवूहं रएइ रइत्ता गरुलवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए।

तए णं से चेडगे राया सत्तावन्नाए दन्तिसहस्सेहिं [जाव] सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सगडवूहं रएइ रइत्ता सगडवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए।

तए णं ते दोण्ह वि राईणं अणीया संनद्ध [जाव] गहियाउहपहरणा मंगतिएहिं फलएहिं, निक्किट्ठाहिं असीहिं, अंसागएहिं तोणेहिं, सजीवेहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालियाहिं डावाहिं, ओसारियाहिं उरुघण्टाहिं, छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं महया उक्किट्ठसीहनायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा सव्विड्ढीए जाव रवेणं हयगया हयगएहिं, गयगया गयगएहिं, रहगया रहगएहिं, पायत्तिया पायत्तिएहिं अन्नमन्नेहिं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

तए णं ते दोण्ह वि रायाणं अणीया नियगसामीसासणाणुरत्ता महया जणक्खयं जणवहं जणप्पमद्दं जणसंवट्टकप्पं नच्चन्तकबन्धवारभीमं रुहिरकद्दमं करेमाणा अन्नमन्नेणं सद्धिं जुज्झन्ति।

तए णं से काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जाव मणूसकोडीहिं गरुलवूहेणं एक्कारसमेणं खंधेणं रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहिय० जहा भगवया कालीए देवीए परिकहियं [जाव] जीवियाओ ववरोविए।

"तं एवं खलु, गोयमा, काले कुमारे एरिसएहिं आरम्भेहिं जाव एरिसएणं असुभकडम्मपब्भारेणं काले मासे कालं किच्चा चउत्थीए पङ्कप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरए नेरइयत्ताए उववन्ने।"

[३३] तदनन्तर दोनो राजाओं ने रणभूमि को सज्जित किया, सज्जित करके रणभूमि में अपनी-अपनी जय-विजय के लिए अर्चना की।

इसके बाद कूणिक राजा ने तेतीस हजार हाथियों यावत् तीस कोटि पैदल सैनिको से गरुड-व्यूह की रचना की। रचना करके गरुडव्यूह द्वारा रथ-मूसल संग्राम प्रारम्भ किया।

इधर चेटक राजा ने सत्तावन हजार हाथियो यावत् सत्तावन कोटि पदातियो द्वारा शकट-व्यूह की रचना की और रचना करके शकटव्यूह द्वारा रथ-मूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ।

तब दोनों राजाओं की सेनाए युद्ध के लिए तत्पर हो यावत् आयुधों और प्रहरणो को लेकर हाथो में ढालों को बांधकर, तलवारे म्यान से बाहर निकालकर, कंधो पर लटके तूणीरो से, प्रत्यंचायुक्त धनुषों से छोड़े हुए बाणों से, फटकारते हुए बाये हाथो से, जोर-जोर से बजती हुई जघाओं में बधी हुई घटिकाओं से, बजती हुई तुरहियों से एवं प्रचंड हुंकारो के महान् कोलाहल से समुद्रगर्जना जैसी करते हुए सर्व ऋद्धि यावत् वाद्यघोषो से, परस्पर अश्वारोही अश्वारोहियों से, गजारूढ गजारूढो से, रथी रथारोहियों से और पदाति पदातियो से भिड़ गए।

दोनों राजाओ की सेनाए अपने-अपने स्वामी के शासनानुराग से आपूरित थी। अतएव महान् जनसंहार, जनवध, जनमर्दन, जनभय और नाचते हुए रुंड-मुंडो से भयकर रुधिर का कीचड करती हुई एक दूसरे से युद्ध में जूझने लगी।

तदनन्तर काल कुमार तीन हजार हाथियो यावत् तीन मनुष्यकोटियों से गरुडव्यूह के ग्यारहवे भाग में कूणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम करता हुआ हत और मथित हो गया, इत्यादि जैसा भगवान् ने काली देवी से कहा था, तदनुसार यावत् मृत्यु को प्राप्त हो गया।

(श्री भगवान् ने कहा) --अतएव गौतम! इस प्रकार के आरम्भों से, इस प्रकार के कृत अशुभ कार्यो के कारण वह काल कुमार मरण के अवसर पर मरण करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के हेमाभ नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है।

उपसंहार

३४. 'काले णं भंते! कुमारे चउत्थीए पुढवीए……अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?'

'गोयमा, महाविदेहे वासे जाइं कूलाइं भवंति अड्ढाइं जहा दढपइन्नो [जाव] सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ [जाव] अंतं काहिइ ।'

'तं एवं खलुजम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते ।'

।। पढमं अज्झयणं समत्तं ।।१।।

[३४] गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—भदन्त ! वह काल कुमार चौथी पृथ्वी से निकलकर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

(भगवान्—) गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो आढ्य कुल है, उनमें जन्म लेकर दृढप्रतिज्ञ के समान सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, यावत् परिनिर्वाण को प्राप्त होगा और समस्त दुःखों का अंत करेगा ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—'इस प्रकार आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण भगवान् यावत् निर्वाण को प्राप्त महावीर ने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह आशय प्रतिपादन किया है ।'

।। प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

द्वितीय अध्ययन

३५. 'जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते, अज्झयणस्स निरयावलियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?'

एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था सुकुमाला। तीसे णं सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था सुकुमाले। तए णं से सुकाले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दंतिसहस्सेहिं, जहा कालो कुमारो, निरवसेसं तं चेव भाणियव्वं जाव महाविदेहे वासे····अंतं काहिइ।

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥१।२॥

[३५] जम्बू स्वामी ने अपने गुरु सुधर्मा स्वामी से पूछा—भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मुक्ति सप्राप्त भगवान् महावीर ने निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! निरयावलिका के द्वितीय अध्ययन का श्रमण भगवान् यावत् निर्वाणसंप्राप्त महावीर ने क्या भाव प्रतिपादन किया है ?

श्री सुधर्मा ने उत्तर दिया—आयुष्मन् जम्बू ! उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र चैत्य था। कूणिक वहाँ का राजा था। पद्मावती उसकी पटरानी थी।

उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कूणिक राजा की सौतेली माता सुकाली नाम की रानी थी जो सुकुमाल शरीर आदि से सम्पन्न थी।

उस सुकाली देवी का पुत्र सुकाल नामक राजकुमार था। वह सुकोमल अंग-प्रत्यंग वाला आदि विशेषणों से युक्त था।

वह सुकाल कुमार किसी समय तीन हजार हाथियों इत्यादि सहित जैसा पूर्व में काल कुमार के विषय में कहा गया, वैसा समग्र वृत्तान्त कहना चाहिए अर्थात् वह भी रथमूसल सग्राम में मारा गया। मरकर चौथी नरकपृथ्वी में उत्पन्न हुआ है। वहाँ से निकलकर महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होकर कर्मों का अन्त करेगा। सम्पूर्ण कथन काल कुमार के समान ही कहना चाहिये।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय से दशम अध्ययन

३६. एवं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढमसरिसा, नवरं मायाओ सरिसनामाओ ।

।। निरयावलियाओ समत्ताओ ।।

।। पढमो वग्गो समत्तो ।।

[३६] प्रथम अध्ययन के समान शेष आठ अध्ययन भी जानने चाहिए। किन्तु इतना विशेष है कि उनकी माताओं के नाम समान हैं अर्थात् माताओं के नाम के समान उन कुमारों के नाम हैं। यथा—महाकाली रानी का पुत्र महाकाल, कृष्णा देवी का पुत्र कृष्ण, सुकृष्णा देवी का पुत्र सुकृष्ण आदि।

।। निरयावलिका समाप्त ।।

।। प्रथम वर्ग समाप्त ।।

२

द्वितीय वर्ग : कल्पावतंसिका

प्रथम अध्ययन

१. उक्खेवओ— जइ णं भंते ! समणेणं भगवया [जाव] संपत्तेणं उवङ्गाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पन्नत्ता ?

एवं खलु, जम्बू ! समणेणं भगवया [जाव] संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता। तं जहा—पउमे १, महापउमे २, भद्दे ३, सुभद्दे ४, पउमभद्दे ५, पउमसेणे ६, पउमगुम्मे ७, नलिणिगुम्मे ८, आणन्दे ९, नन्दणे १०।

जइ णं भंते ! समणेणं [जाव] संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स कप्पवडिंसियाणं समणेणं भगवया जाव के अट्ठे पन्नत्ते ?

एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था सुहुमाला [०]। तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था सुहुमाल०। तस्स णं कालस्स कुमारस्स पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाला [जाव] विहरइ।

[१] जम्बूस्वामी का प्रश्न—भदन्त ! यदि श्रमण यावत् निर्वाण-संप्राप्त भगवान् महावीर ने निरयावलिका नामक उपांग के प्रथम वर्ग का यह (पूर्वोक्त) आशय प्रतिपादित किया है तो हे भदन्त ! दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका का श्रमण यावत् निर्वाण-संप्राप्त भगवान् ने क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया- आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिसंप्राप्त भगवान् ने कल्पावतंसिका के दस अध्ययन कहे हैं। वे इस प्रकार हैं—१. पद्म २. महापद्म ३. भद्र ४. सुभद्र ५. पद्मभद्र ६. पद्मसेन. ७. पद्मगुल्म ८. नलिनगुल्म ९. आनन्द और १०. नन्दन।

जम्बू—भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् ने कल्पावतंसिका के दस अध्ययन कहे हैं तो भदन्त ! श्रमण भगवान् ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का क्या आशय प्रतिपादन किया है ?

सुधर्मा—आयुष्मन् जम्बू ! वह इस प्रकार है—

उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। (उसके उत्तर पूर्व में) पूर्णभद्र नामक चैत्य था। कूणिक वहाँ का राजा था। उसकी पद्मावती नामक पटरानी थी। उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कूणिक राजा की विमाता काली नामक रानी थी, जो अतीव सुकुमार एवं स्त्री-उचित यावत् गुणों से सम्पन्न थी। उस काली देवी का पुत्र काल नामक राजकुमार था। उस काल कुमार की पद्मावती नामक पत्नी थी, जो सुकोमल थी यावत् मानवीय भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही थी।

पद्मावती का स्वप्नदर्शन

२. तए णं सा पउमावई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिन्तरओ सचित्तकम्मे [जाव] सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा। एवं जम्मणं, जहा महाबलस्स[1], [जाव] नामधेज्जं—"जम्हा णं अम्हं इमे दारए कालस्स कुमारस्स पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं पउमे पउमे।" सेसं जहा महाबलस्स। अट्ठओ दाओ। [जाव] उप्पि पासायवरगए विहरइ। सामी समोसरिए। परिसा निग्गए। कूणिए निग्गए। पउमे वि जहा महाबले, निग्गए। तहेव अम्मापिइ-आपुच्छणा, [जाव] पव्वइए अणगारे जाए [जाव] गुत्तबम्भयारी।

[२] किसी एक रात्रि में भीतरी भाग में चित्र-विचित्र चित्रामों से चित्रित वासगृह में शैया पर शयन करती हुई स्वप्न में सिंह को देखकर वह पद्मावती देवी जागृत हुई। फिर पुत्र का जन्म हुआ, महाबल की तरह उसका जन्मोत्सव मनाया गया, यावत् नामकरण किया—'क्योंकि हमारा यह बालक काल कुमार का पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज है, अतएव हमारे इस बालक का नाम पद्म हो।' शेष समस्त वर्णन महाबल के समान समझना चाहिए, अर्थात् राजसी ठाठ से उसका पालन-पोषण हुआ। यथासमय उसने बहत्तर कलाएँ सीखी। तरुणावस्था आने पर आठ कन्याओ के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। आठ-आठ वस्तुएँ दाय (दहेज) में दी गई यावत् पद्म कुमार ऊपरी श्रेष्ठ प्रासाद में रहकर भोग भोगते, विचरने लगा। भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए। परिषद् धर्म-देशना श्रवण करने निकली। कूणिक भी वंदनार्थ निकला। महाबल के समान पद्म भी दर्शन-वदना करने के लिए निकला। महाबल के ही समान माता-पिता से अनुमति प्राप्त करके प्रव्रजित हुआ, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया।

पद्म अनगार की साधना

३. तए णं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमं [जाव] विहरइ।

तए णं से पउमे अणगारे तेणं ओरालेणं, जहा मेहो, तहेव धम्मजागरिया, चिन्ता। एवं जहेव मेहो तहेव समणं भगवं आपुच्छित्ता विउले [जाव] पाओवगए समाणे तहारूवाणं थेराणं अन्तिए

---

१. महाबल के जन्मादि का वर्णन परिशिष्ट में देखिए।

सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं, बहुपडिपुण्णाइं पञ्च वासाइं सामण्णपरियाए। मासियाए संलेहणाए सट्ठिभत्ताइं। आणुपुव्वीए कालगए। थेरा ओतिण्णा। भगवं गोयमे पुच्छइ, सामी कहेइ [जाव] सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कंते अद्धं चन्दिम० सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववन्ने। दो सागराइं।

"से णं भंते, पउमे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं।" पुच्छा। "गोयमा, महाविदेह वासे, जहा दढपइन्नो[1], [जाव] अन्तं काहिइ।"

निक्खेवो—तं एवं खलु जम्बू, समणेणं [जाव] संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

॥ पढमं अज्झयणं ।२।१॥

[३] तत्पश्चात् पद्म अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् चतुर्थभक्त, षष्टभक्त, अष्टमभक्त, इत्यादि विविध प्रकार की तप-साधना से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

इसके बाद वह पद्म अनगार मेघकुमार के समान उस प्रभावक विपुल-दीर्घकालीन, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, कल्याणकारी, शिव—मुक्तिप्रापक, धन्य, प्रशंसनीय, मांगलिक, उदग्र—उत्कट, उदार, उत्तम, महाप्रभावशाली तप-आराधना से शुष्क, रूक्ष, अस्थिमात्राव-शेष शरीर वाला एवं कृश हो गया।

तत्पश्चात् किसी समय मध्य रात्रि में धर्म-जागरण करते हुए पद्म अनगार को चिन्तन उत्पन्न हुआ। मेघकुमार के समान श्रमण भगवान् से पूछकर विपुल पर्वत पर जा कर यावत् पादोपगमन संस्थारा स्वीकार करके तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का श्रवण कर परिपूर्ण पांच वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन करके मासिक संलेखना को अंगीकार कर और अनशन द्वारा साठ भक्तों का त्याग करके अर्थात् एक मास की संलेखना करके, अनुक्रम से कालगत हुआ। उसे कालगत जानकर स्थविर भगवान् के समीप आए।

भगवान् गौतम ने पद्ममुनि के भविष्य के विषय में प्रश्न किया। स्वामी ने उत्तर दिया कि यावत् अनशन द्वारा साठ भोजनों का छेदन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर सुदूर चंद्र आदि ज्योतिष्क विमानों के ऊपर सौधर्मकल्प मे देव रूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ दो सागरोपम की उसकी आयु है।

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—भदन्त ! वह पद्मदेव आयुक्षय (भवक्षय एवं स्थितिक्षय) के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा। दृढप्रतिज्ञ के समान यावत् (जन्म-मरण का) अंत करेगा।

निक्षेप—इस प्रकार हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् निर्वाणसंप्राप्त भगवान् महावीर ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रज्ञप्त किया है। इस प्रकार जैसा मैंने भगवान् से श्रवण किया वैसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

---

१. दृढप्रतिज्ञ के विशेष परिचय के लिए परिशिष्ट देखिए।

द्वितीय अध्ययन

४. जइ णं भंते समणेणं भगवया [जाव] संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं भंते, अज्झयणस्स के अट्ठे पन्नत्ते ?

"एवं खलु जम्बू !"

तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कूणिए राया। पउमावई देवी। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। तीसे णं सुकालीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे। तस्स णं सुकालस्स कुमारस्स महापउमा नामं देवी होत्था, सुउमाला।

तए णं सा महापउमा देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि, एवं तहेव, महापउमे नामं दारए, [जाव] सिज्झिहिइ। नवरं ईसाणे कप्पे उववाओ। उक्कोसट्ठिईओ।

॥ बीयं अज्झयणं ॥२।२॥

[४] जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया—भदन्त ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् ने कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का उक्त भाव प्रतिपादित किया है तो हे भदन्त ! उसके द्वितीय अध्ययन का क्या आशय कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—आयुष्मन् जम्बू ! वह इस प्रकार है—

उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। कूणिक राजा था। पद्मावती रानी थी। उस चंपानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या कूणिक राजा की विमाता सुकाली नामकी रानी थी। उस सुकाली का पुत्र सुकाल नामक राजकुमार था। उस राजकुमार सुकाल की सुकुमाल आदि विशेषता युक्त महापद्मा नाम की पत्नी थी।

उस महापद्मा ने किसी एक रात्रि में सुखद शैया पर सोते हुए एक स्वप्न देखा, इत्यादि पूर्ववत् वर्णन करना चाहिए। बालक का जन्म हुआ और उसका महापद्म नामकरण किया गया यावत् वह प्रव्रज्या अंगीकार करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा। विशेष यह कि ईशान कल्प मे उत्पन्न हुआ। वहाँ उसे उत्कृष्ट स्थिति (कुछ अधिक दो सागरोपम) हुई।

निक्षेप—इस प्रकार हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति-संप्राप्त भगवान् ने कल्पावतंसिका के द्वितीय अध्ययन का यह भाव बताया है, इस प्रकार मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय से दशम अध्ययन

५. एवं सेसावि अट्ठ नेयव्वा। मायाओ सरिसनामाओ। कालाईणं दसण्हं पुत्ता अणुपुव्वीए—

दोण्हं च पञ्च चत्तारि तिण्हं तिण्हं च होंति तिण्णे व।
दोण्हं च दोन्नि वासा सेणियनत्तूण परियाओ ॥१॥

उववाओ आणुपुव्वीए—पढमो सोहम्मे, बीओ ईसाणे, तइओ सणंकुमारे, चउत्थो माहिन्दे, पञ्चमो बम्भलोए, छट्ठो लंतए, सत्तमो महासुक्के, अट्ठमो सहस्सारे, नवमो पाणए, दसमो अच्चुए। सव्वत्थ उक्कोसट्ठिई भाणियव्वा। महाविदेहे सिद्धे।

॥ कप्पवडिंसियाओ समत्ताओ ॥

॥ बीओ वग्गो समत्तो ॥

[५] इसी प्रकार शेष आठों ही अध्ययनों का वर्णन जान लेना चाहिए। माताएँ सदृश नामवाली हैं अर्थात् पुत्रों के समान ही उनके नाम हैं, जैसे—भद्रकुमार की माता भद्रा, सुभद्रकुमार की माता सुभद्रा आदि। अनुक्रम से कालादि दसों कुमारो के पुत्र थे। दसों की दीक्षापर्याय इस प्रकार थी—

पद्म और महापद्म अनगार की पाँच-पाँच वर्ष की, भद्र, सुभद्र और पद्मभद्र की चार-चार वर्ष, पद्मसेन, पद्मगुल्म और नलिनीगुल्म की तीन-तीन वर्ष की तथा आनन्द और नन्दन की दीक्षापर्याय दो-दो वर्ष की थी। ये सभी श्रेणिक राजा के पौत्र थे।

अनुक्रम से इनका जन्म हुआ। देहत्याग के पश्चात् प्रथम का सौधर्म कल्प में, द्वितीय का ईशान कल्प मे, तृतीय का सनत्कुमार कल्प में, चतुर्थ का माहेन्द्र कल्प में, पंचम का ब्रह्म लोक में, षष्ठ का लान्तक कल्प में, सप्तम का महाशुक्र में, अष्टम का सहस्रार कल्प में, नवम का प्राणतकल्प में और दशम का अच्युत कल्प में देव रूप में जन्म हुआ। सभी की स्थिति उत्कृष्ट कहनी चाहिए। ये सभी स्वर्ग से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होंगे।

॥ कल्पावतंसिका समाप्त ॥

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

3

तृतीय वर्ग : पुष्पिका

प्रथम अध्ययन

१. उक्खेवओ—"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया [जाव] संपत्तेणं उवङ्गाणं दोच्चस्स कप्पवडिसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, अच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स उवङ्गाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पन्नत्ते ?"

"एवं खलु जम्बू ! समणेणं [जाव] संपत्तेणं उवङ्गाणं तच्चस्स वग्गस्स पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता । तं जहा—

चन्दे सूरे सुक्के बहुपुत्तिय पुण्ण माणिभद्दे य ।
दत्ते सिवे बले या अणाढिए चेव बोद्धव्वे ॥"

"जइ णं भंते ! समणेणं [जाव] संपत्तेणं पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भंते, समणेण जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?"

[१] जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने द्वितीय उपांग कल्पावतंसिका का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! उपांगों के तृतीय वर्ग रूप पुष्पिका का क्या आशय कहा है ?

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा— आयुष्मन् जम्बू ! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् ने तृतीय उपांग वर्ग रूप पुष्पिका के दस अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) शुक्र, (४) बहुपुत्रिका, (५) पूर्णभद्र, (६) मानभद्र, (७) दत्त, (८) शिव, (९) बल और (१०) अनादृत ।

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका नामक उपांग के दस अध्ययन बताए हैं तो हे भदन्त ! श्रमण भगवान् ने प्रथम अध्ययन का क्या आशय कहा है ? जम्बू स्वामी ने पुनः आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा ।

प्रत्युत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा—

चन्द्रविमान में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र

२ एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा निग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चन्दे जोइसिन्दे जोइसराया चन्दवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए चन्दंसि सीहासणंसि चउहिं जाव [सामाणीयसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणियाहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अन्नेहि य बहूहिं विमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे महयाहयनट्टगीयवाइयतन्तीतल-तालतुडियघणमुइङ्गपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासए, पासित्ता समणं भगवं महावीरं, जहा सूरियाभे, आभिओगं देवं सद्दावेत्ता [जाव] सुरिन्दाभिगमणजोग्गं करेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणन्ति। सूसरा घण्टा [जाव] विउव्वणा। नवरं जाणविमाणं जोयणसहस्सवित्थिण्णं अद्धतेवट्ठिजोयणसमूसियं, महिन्दज्झओ पणुवीसं जोयणमूसिओ, सेसं जहा सूरियाभस्स, [जाव] आगओ। नट्टविही। तहेव पडिगओ।

"भंते" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं पुच्छा। कूडागारसाला, सरीरं अणुपविट्ठा। पुव्वभवो।

[२] आयुष्मन् जम्बू! वह इस प्रकार है—उस काल और समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशिलक नामक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था।

उस काल और उस समय में श्रवण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ समवसृत हुए—पधारे। दर्शनार्थ परिषद निकली।

उस काल और उस समय में ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र चन्द्रावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में चन्द्र नामक सिंहासन पर बैठकर चार हजार सामानिक देवों यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं (आभ्यन्तर, मध्य, बाह्य परिषदाओं), सात प्रकार की सेनाओं, सात उनके सेनापतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा अन्य दूसरे भी बहुत से उस विमानवासी देव-देवियों सहित निरंतर महान् गंभीर ध्वनिपूर्वक निपुण पुरुषों द्वारा वादित—बजाये जा रहे तंत्री-वीणा, हस्तताल, कांस्यताल, त्रुटित, घन मृदंग आदि वाद्यों एवं नाट्यों के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचर रहा था। तब उसने अपने विपुल अवधि ज्ञान से अवलोकन करते हुए इस केवल-कल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीप को देखा और तभी श्रमण भगवान् महावीर को भी देखा। तब भगवान् के दर्शनार्थ जाने का विचार करके सूर्याभदेव[१] के समान अपने आभियोगिक देवों को बुलाया यावत् उन्हें देव-देवेन्द्रों के अभिगमन करने योग्य कार्य करने की आज्ञा दी यावत् सुरेन्द्रों के अभिगमन करने योग्य कार्य करके इस आज्ञा को वापस लौटाने को कहा अर्थात् कार्य होने की सूचना देने के लिए कहा। आभियोगिक देवों ने भी सुरेन्द्रों के अभिगमन योग्य सब कार्य करके उसे आज्ञा वापिस लौटाई।

फिर अपने पदाति सेनानायक को आज्ञा दी—सुस्वरा घंटा को बजाकर सब देव-देवियों को भगवान् के दर्शनार्थ चलने के लिए सूचित करो। उस सेनानायक ने भी वैसा ही किया। यावत् सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि आदि प्रदर्शित करने की विकुर्वणा की। लेकिन सूर्याभदेव के वर्णन से इतना अंतर है कि इसका यान-विमान एक हजार योजन विस्तीर्ण और साढे बासठ योजन ऊँचा

१. इस संक्षिप्त कथन का सूचक राजप्रश्नीय सूत्रगत गद्यांश के अनुसार विस्तृत पाठ इस प्रकार है—

था। माहेन्द्रध्वज की ऊँचाई पच्चीस योजन की थी। इसके अतिरिक्त शेष सभी वर्णन सूर्याभ विमान के समान समझना चाहिए, यावत् जिस प्रकार से सूर्याभदेव भगवान् के पास आया, नाट्यविधि प्रदर्शित की और वापिस लौट गया, वही सब चन्द्रदेव के विषय में भी जान लेना चाहिए।

'भगवन्!' इस प्रकार से आमंत्रित कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके निवेदन किया—भंते! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चंद्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य दैविक प्रभाव कहाँ चले गये? कहाँ प्रविष्ट हो गये—समा गये?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम! चन्द्र द्वारा विकुर्वित वह सब दिव्य ऋद्धि आदि उसके शरीर में चली गई, शरीर में प्रविष्ट हो गई—अन्तर्लीन हो गई।

गौतम—भदन्त! किस कारण से आप ऐसा कह सकते हैं कि वह शरीर में चली गई, शरीर में अन्तर्लीन हो गई?

भगवान्—गौतम! जैसे कोई एक भीतर-बाहर गोबर आदि से लिपी-पुती, बाहर चारों ओर एक परकोटे से घिरी हुई, गुप्त द्वारों वाली और उनमें भी सघन किवाड़ लगे हुए हैं, अतएव निर्वात-वायु का प्रवेश भी होना जिसमें अशक्य है, ऐसी गहरी विशाल कूटाकार-पर्वत-शिखर के आकार वाली शाला हो और उस कूटाकार शाला के समीप एक बड़ा जनसमूह बैठा हो। वह आकाश में अपनी ओर आते हुए एक बहुत बड़े मेघपटल को अथवा जलवर्षक बादल को अथवा प्रचंड आंधी को देखे तो जैसे वह जनसमूह उस कूटाकारशाला में समा जाता है, उसी प्रकार आयुष्मान् गौतम! ज्योतिष्कराज चन्द्र की वह दिव्य देव-ऋद्धि आदि उसी के शरीर में प्रविष्ट हो गई—अन्तर्लीन हो गई, ऐसा मैंने कहा है।

गौतम—भगवान्! उस देव को इस प्रकार की वह दिव्य देव-ऋद्धि यावत् दिव्य देवानुभाव कैसे मिला है? उसने उसे कैसे प्राप्त किया है? किस तरह से अधिगत किया है? पूर्वभव में वह कौन था? उसका क्या नाम और गोत्र था? किस ग्राम, नगर, निगम (व्यापारप्रधान नगर) राजधानी, खेट (खेड़े) कर्वट (कम ऊँचे प्राकार से वेष्टित ग्राम), मडंब (जिसके आसपास चारों ओर एक योजन तक दूसरा कोई गांव न हो), पत्तन (समुद्र का समीपवर्ती ग्राम—नगर), द्रोणमुख (जल और स्थल मार्गों से जुड़ा हुआ नगर), आकर (खानों वाला स्थान—नगर), आश्रम (ऋषियों का आवासस्थान), संबाह (यात्रियों, पथिकों के विश्राम योग्य ग्राम अथवा नगर) अथवा सन्निवेश (साधारण जनों की बस्ती) का निवासी था? उसने ऐसा क्या दान दिया? ऐसा क्या भोग किया? ऐसा क्या कार्य किया? ऐसा कौन सा आचरण किया? और कौन से तथारूप श्रमण अथवा माहण से ऐसा कौन सा एक भी धार्मिक आर्य सुवचन सुना और अवधारित किया कि जिससे उस देव ने वह दिव्य देव-ऋद्धि यावत् दैविक प्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है, अभिगत किया है?

श्रावस्ती नगरी का अंगति गाथापति

३. 'गोयमा' इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नयरी होत्था। कोट्ठए चेइए। तत्थ णं सावत्थीए अंगई

नामं गाहावई होत्था अड्ढे जाव [वित्ते वित्ते वित्थिण्णविउलभवण-सयणासण-जाणवाहणे बहुधणबहुजायरूवरयइ आओगपओगसंपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासीदास-गोमहिसवेलगप्पभूए बहुजणस्स] अपरिभूए। तए णं से अङ्गई गाहावई सावत्थीए नयरीए बहूणं नगर-निगम सेट्ठि-सेणावइ सत्थवाह-दूय-संधिवालाणं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य मन्तेसु य कुडुम्बेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी पमाणं आहारे आलम्बणं, चक्खू, मेढीभूए जाव सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था। जहा आणन्दो।

[३] गौतम ! इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम को आमंत्रित—संबोधित कर कहा—

गौतम ! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नामक चैत्य था। उस श्रावस्ती नगरी में अंगति (अंगजित) नामक एक गाथापति—सद्गृहस्थ निवास करता था, जो धनाढ्य संस्कारी, तेजस्वी, प्रभावशाली, सम्पन्न, विशाल और विपुल भवन शयन—शैया, बिछौना, आसन आदि, यान—रथ आदि का, वाहन—बैल, घोड़े आदि और प्रचुर सोने, चांदी सिक्का आदि का स्वामी एवं अर्थोपार्जन के उपायों में निरत था। भोजन करने के बाद भी उसके यहाँ पुष्कल खाद्य पदार्थ बचते थे। उसके घर में बहुत से दास, दासी, गाय, भैंस, बैल, भेड़ें आदि थीं। लोगों द्वारा अपरिभूत था प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण जिसका अपमान, तिरस्कार, अनादर किया जाना संभव नहीं था।

वह अंगजित गाथापति (आनन्द श्रावकवत्) श्रावस्ती नगरी के बहुत से नगरनिवासी व्यापारी, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपालक—सीमारक्षक आदि के अनेक कार्यो मे, कारणो में, मंत्रणाओं में, पारिवारिक समस्याओं में, गोपनीय बातों में, निर्णयो में, सामाजिक व्यवहारों में पूछने योग्य एवं विचार—परामर्श करने योग्य था एवं अपने कुटुम्ब परिवार का मेढि—केन्द्र, प्रमाण—व्यवस्थापक, आधार, आलंबन, चक्षु—मार्गदर्शक, मेढिभूत यावत् (प्रमाणभूत, आधारभूत, आलंबनभूत, चक्षुभूत) तथा सब कार्यों में अग्रेसर था।

अर्हत् पार्श्व का पदार्पण

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे णं अरहा पुरिसादाणीए आइगरे, जहा महावीरो, नवुस्सेहे सोलसेहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठतीसाए अज्जियासहस्सेहिं [जाव] कोट्ठए समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं से अङ्गई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठे जहा कत्तिओ सेट्ठी तहा निग्गच्छई [जाव] पज्जुवासइ। धम्मं सोच्चा निसम्म, जं, नवरं, "देवाणुप्पिया ! जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेमि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं जाव पव्वयामि।" जहा गङ्गदत्ते तहा पव्वइए [जाव] गुत्तबम्भयारी।

[४] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के समान धर्म की आदि करने वाले इत्यादि विशेषणों से युक्त, नौ हाथ की अवगाहना वाले पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु सोलह हजार श्रमणों एवं अड़तीस हजार आर्यिओं के समुदाय के साथ गमन करते हुए यावत् कोष्ठक चैत्य में समवसृत हुए—पधारे। परिषद् दर्शनार्थ निकली।

तब वह अंगजित गाथापति इस संवाद को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होता हुआ कार्तिक श्रेष्ठी[1] के समान अपने घर से निकला यावत् पर्युपासना की। धर्म को श्रवण कर और अवधारित कर उसने प्रभु से निवेदन किया—देवानुप्रिय ! ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करूँगा। तत्पश्चात् मैं आप देवानुप्रिय के निकट यावत् प्रव्रजित होऊँगा। गंगदत्त[2] के समान वह प्रव्रजित हुआ यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया।

अंगजित अनगार का उपपात

५. तए णं से अङ्गई अणगारे पासस्स अरहओ तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ [जाव] भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणइ पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा चन्दवडिंसए विमाणे उववाइयाए सभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसन्तरिए चन्दे जोइसिन्दत्ताए उववन्ने।

तए णं से चन्दे जोइसिन्दे जोइसियराया अहुणोववन्ने समाणे पञ्चविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इन्दियपज्जत्तीए सासोसासपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए।

[५] तत्पश्चात् अंगजित अनगार ने अर्हत् पार्श्व के तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि ले लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके चतुर्थभक्त यावत् आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करके अर्धमासिक संलेखना पूर्वक अनशन द्वारा तीस भक्तों (भोजनों) का छेदन कर—त्याग कर काल मास में—मरण समय प्राप्त होने पर—मरण करके संयमविराधना के कारण चन्द्रावतंसक विमान की उपपात—सभा की देवदूष्य से आच्छादित देव-शैया में ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ।

तब सद्यःउत्पन्न ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तिभाव को प्राप्त हुआ—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, और भाषा-मनःपर्याप्ति।

चन्द्र का भावी जन्म

६. "चन्दस्स णं भन्ते, जोइसिन्दस्स जोइसरन्नो केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?

गोयमा ! पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं। एवं खलु गोयमा, चन्दस्स जाव जोइसरन्नो सा दिव्वा देविड्ढी।

चन्दे णं भन्ते ! जोइसिन्दे जोइसराया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ २ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

१-२. कार्तिक श्रेष्ठी और गंगदत्त का परिचय भगवती सूत्र में देखिए। (आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर)

[६] भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से पूछा—भदन्त ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र की कितने काल की आयु—स्थिति है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम ! एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति कही है।

इस प्रकार से हे गौतम ! उस ज्योतिष्कराज चन्द्र ने वह दिव्य देव-ऋद्धि प्राप्त की है।

७. निक्खेवओ—तं एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमी।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

[७] आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन

८. "जइ णं भंते समणेणं—भगवया [जाव] पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स जाव अयमट्ठे पन्नत्ते, दोच्चस्स णं, भंते अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

[८] भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् ने पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का यह आशय प्रतिपादन किया है तो श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?—जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा।

सूर्य का समवसरण में आगमन

९. एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। समोसरणं। जहा चंदो तहा सूरो वि आगओ [जाव] नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ। पुव्वभवपुच्छा। सावत्थी नगरी। सुपइट्ठे नामं गाहावई होत्था अड्ढे जहेव अङ्गई [जाव] विहरइ। पासो समोसढो, जहा अङ्गई तहेव पव्वइए तहेव विराहियसामण्णे, [जाव] महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ [जाव] अंतं करेहिइ।

[९] सुधर्मा स्वामी ने समाधान किया—आयुष्मन् जम्बू ! भगवान् ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का अर्थ इस प्रकार कहा है—

उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। जैसे भगवान् की उपासना के लिये चन्द्र आया था उसी प्रकार सूर्य इन्द्र का भी आगमन हुआ यावत् नृत्य-विधियाँ प्रदर्शित कर वापिस लौट गया।

तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने सूर्य के पूर्वभव के विषय में पूछा। भगवन् ने प्रत्युत्तर दिया—

श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहाँ धन-वैभव आदि से संपन्न सुप्रतिष्ठ नामक गाथापति रहता था। वह भी अंगजित के समान यावत् धनाढ्य एवं प्रभावशाली था। वहाँ पार्श्व प्रभु पधारे। अंगजित के समान वह भी प्रव्रजित हुआ और उसी तरह संयम की विराधना करके मरण को प्राप्त होकर सूर्यविमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ। आयुक्षय होने के अनन्तर वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा यावत् सर्व दुखों का अन्त करेगा।

१०. निक्खेवओ—तं एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं दोच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

[१०] आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार से श्रमण यावत् मुक्तिसंप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन

११. उक्खेवओ—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव पुप्फियाणं दोच्चस्स अज्झयणस्स जाव अयमट्ठे पन्नत्ते, तच्चस्स णं भंते, अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ? एवं खलु जम्बू !

[११] जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका के द्वितीय अध्ययन का यह आशय प्ररूपित किया है तो श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन का क्या भाव बताया है—

आर्य सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया--आयुष्मन् जम्बू ! वह इस प्रकार है--

१२. रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुक्के महग्गहे सुक्कवडिंसए विमाणे सुक्कंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहेव चन्दो तहेव आगओ, नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ। "भंते" त्ति। कूडागारसाला। पुव्वभवपुच्छा।

[१२] राजगृह नगर था। गुणशिलक नाम का चैत्य था। वहाँ का राजा श्रेणिक था। स्वामी (श्रमण भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना श्रवण करने के लिए परिषद् निकली।

उस काल और उस समय मे शुक्र महाग्रह शुक्रावतंसक विमान में शुक्र सिंहासन पर बैठा था। चार हजार सामानिक देवों आदि के साथ नृत्य गीत आदि दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरण कर रहा था आदि। वह चन्द्र के समान भगवान् के समवसरण में आया। उस शुक्राधिपति ने पूर्ववत् नृत्यविधि का प्रदर्शन किया और नृत्यविधि दिखाकर वापिस लौट गया।

तत्पश्चात् 'भदन्त !' इस प्रकार से संबोधन कर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से उसकी दैविक ऋद्धि आदि के अन्तर्लीन होने के सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने कूटाकार शाला के दृष्टान्त द्वारा गौतम का समाधान किया। गौतम स्वामी ने पुनः उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पूछा।

शुक्र महाग्रह का पूर्वभव

१३. 'एवं खलु गोयमा'। तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूए रिउव्वेय-जउव्वेय-सामवेयाथव्वाणं इइहासपञ्चमाणं निघण्टुछट्ठाणं सङ्गोवङ्गाणं सरहस्साणं एयं परिजुत्ताणं धारए सारए पारए सडङ्गवी सट्ठितन्तविसारए संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छन्दे निरुत्ते जोइसामयणे अन्नेसु य बम्हण्णगेसु सत्थेसु सुपरिनिट्ठिए। पासे समोसढे। परिसा पज्जुवासइ।

[१३] भगवान् ने प्रत्युत्तर में बताया—गौतम ! उस काल और समय में वाराणसी नाम की नगरी थी। उस वाराणसी नगरी में सोमिल नामक माहण (ब्राह्मण) निवास करता था। वह धन-धान्य आदि से संपन्न-समृद्ध यावत् अपरिभूत था। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों, पांचवें इतिहास, छठे निघण्टु नामक कोश का तथा सांगोपांग (अंग-उपांगों सहित) रहस्य सहित वेदों का सारक (स्मरण कराने वाला पाठक), वारक (अशुद्ध पाठ बोलने से रोकने वाला), धारक (वेदादि को नहीं भूलने वाला, धारण करने वाला), पारक (वेदादि शास्त्रों का पारगामी), वेदों के षट्-अंगों में, एवं षष्ठितंत्र (सांख्य शास्त्र) में विशारद—प्रवीण था। गणितशास्त्र, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दशास्त्र, निरुक्तशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा दूसरे बहुत से ब्राह्मण और परिव्राजकों सम्बन्धी नीति और दर्शनशास्त्र आदि में अत्यन्त निष्णात था।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पधारे। परिषद् निकली और पर्युपासना करने लगी।

१४. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए -"एवं पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वाणुपुव्वि [जाव] अम्बसालवणे विहरइ। तं गच्छामि णं पासस्स अरहओ अन्तिए पाउब्भवामि, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं" जहा पण्णत्तीए। सोमिलो निग्गओ खण्डियविहूणो [जाव] एवं वयासी—"जत्ता ते भंते ? जवणिज्जं च ते ?" पुच्छा। "सरिसवया मासा कुलत्था ? एगे भवं ?" [जाव] संबुद्धे। सावगधम्मं पडिवज्जित्ता पडिगए।

तए णं पासे णं अरहा अन्नया कयाइ वाणारसीओ नयरीओ अम्बसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं।

तए णं से सोमिले माहणे अन्नया कयाइ असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणयाए य मिच्छत्त-पज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं मिच्छत्तं च पडिवन्ने।

[१४] तदनन्तर उस सोमिल ब्राह्मण को यह संवाद सुनकर इस प्रकार का आंतरिक विचार उत्पन्न हुआ—पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए यावत् आम्रशालवन में विराज रहे हैं। अतएव मैं जाऊं और अर्हत् पार्श्वप्रभु के सामने उपस्थित होऊं एवं उनसे यह तथा इस प्रकार के अर्थ हेतु, प्रश्न, कारण और व्याख्या पूछूँ।

तत्पश्चात् शिष्यों को साथ लिए बिना ही सोमिल अपने घर से निकला और भगवान् की सेवा में पहुंचकर उसने इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! आपकी यात्रा चल रही है ? यापनीय है ? अव्याबाध है ? और आपका प्रासुक विहार हो रहा है ? आपके लिए सरिसव (सरसो) मास (माष—उड़द) कुलत्थ (कुलथी धान्य) भक्ष्य है या अभक्ष्य हैं ? आप एक है ? (आप दो हैं ? आप अनेक हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप नित्य हैं ? आप अवस्थित है ? प्रभु ने उसे यथोचित उत्तर[1] दिया) यावत् सोमिल

---

१. एतद् विषयक प्रश्न और उनके उत्तर ज्ञाताधर्मकथांग, पंचम अध्ययन—शैलक पृ. १७४-१७८ (श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर) में देखिए।

संबुद्ध हुआ और श्रावक धर्म को अंगीकार करके वापिस लौट गया। इसके बाद किसी एक दिन पार्श्व अर्हत् वाराणसी नगरी और आम्रशाल वन चैत्य से बाहर निकले। निकलकर जनपदों में विहार करने लगे।

तदनन्तर वह सोमिल ब्राह्मण किसी समय असाधु दर्शन—महाव्रतधारी साधुओं का दर्शन न करने के कारण एवं निर्ग्रन्थ श्रमणों की पर्युपासना नहीं करने से—उनके उपदेश श्रवण का संयोग न मिलने से एवं मिथ्यात्व पर्यायों के प्रवर्धमान होने (बढ़ने) से तथा सम्यक्त्व पर्यायों के परिहीयमान होने (घटने) से मिथ्यात्व भाव को प्राप्त (मिथ्यादृष्टि, श्रद्धाविहीन) हो गया।

सोमिल का गृहत्याग का विचार

१५. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था— "एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं, वेया य अहीया, दारा आहूया, पुत्ता जणिया, इड्ढीओ समाणीयाओ, पसुबन्धा[1] कया, जन्ना जेट्ठा, दक्खिणा दिन्ना, अतिही पूइया, अग्गी हूया, जूवा निक्खित्ता। तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं [जाव] पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि अहापण्डुरे पभाए रत्तासोगपगासकिंसुयसुयमुहगुञ्जद्धरागबन्धुजीवगपारावयचलण-नयणपरहुयसुरत्त लोयण-जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिङ्गुलयनिगररूवाइरेगरेहन्तसस्सिरीए दिवायरे अहक्कमेण उदिए तस्स दिणकरकरपरंपरावयारपरद्धंमि अन्धयारे बालातवकुंकुमेण खइयव्व जीवलोए लोयणविसआणुआसविगसन्तविसदवंसियंमि लोए, कमलागरसण्डबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलन्ते वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अम्बारामा रोवावित्तए एवं माउलिङ्गा बिल्ला कविट्ठा चिञ्चा पुप्फारामा रोवावित्तए" एवं संपेहेइ, २ त्ता कल्लं [जाव] जलन्ते वाणारसीए नयरीए बहिया अम्बारामे जाव पुप्फारामे य रोवावेइ।

तए णं बहवे अम्बरामा य जाव पुप्फारामा य अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा आरामा जाया किण्हा किण्होभासा [जाव] रम्मा महामेह-निकुरम्बभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा २ चिट्ठन्ति।

[१५] इसके बाद किसी एक समय मध्यरात्रि में अपनी कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए उस सोमिल ब्राह्मण को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं वाराणसी नगरी का रहने वाला और अत्यन्त शुद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने व्रतों (कुलागत विधि-विधानों) को अंगीकार किया, वेदाध्ययन किया, पत्नी को लाया—विवाह किया, कुलपरंपरा की वृद्धि के लिए पुत्रादि संतान को जन्म दिया, समृद्धियों का संग्रह किया—अर्थोपार्जन किया, पशुबंध किया—गाय, भैंसों का पालन किया, यज्ञ किए, दक्षिणा दी, अतिथिपूजा—सत्कार किया, अग्नि में हवन किया—आहुति दी, यूप स्थापित किये,

---

१. पाठान्तर—'पसुवधा'। —मुनि श्री घासीलालजी

इत्यादि गृहस्थ सम्बन्धी कार्य किये। लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने पर, जब कमल विकसित हो जाएँ, प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण (सुनहरा-सफेद रंग) का हो जाए, लाल अशोक, पलाशपुष्प, तोते की चोंच, चिरमी के अर्धभाग, बंधुजीवकपुष्प, कबूतर के पैर, कोयल के नेत्र, जसद के पुष्प, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश एवं हिंगुलकसमूह की लालिमा से भी अधिक रक्तिम श्री से सुशोभित सूर्य उदित हो जाए और उसकी किरणों के फैलने से अंधकार विनष्ट हो जाए, सूर्य रूपी कुंकुम से विश्व व्याप्त हो जाए, नेत्रों के विषय का प्रचार होने से विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे, सरोवरों में स्थित कमलों के वन को विकसित करने वाला सहस्र किरणों से युक्त दिवाकर जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशित हो जाए, तब वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम्र-उद्यान (आम के बगीचे) लगवाऊं, इसी प्रकार से मातुलिंग—बिजौरा, बिल्व—बेल, कविट्ठ—कैथ, चिंचा—इमली और फूलों की वाटिकाएँ लगवाऊं।' उसने इस प्रकार विचार किया और विचार करके आगामी दिन यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बगीचे यावत् पुष्पोद्यान लगवाए।

तत्पश्चात् वे बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन—लालन-पालन और संवर्धन किये जाने से दर्शनीय बगीचे बन गये। कृष्णवर्ण—श्यामल, श्यामल आभा वाले यावत् रमणीय महामेघों के समूह के सदृश होकर पत्र, पुष्प, फल एव अपनी हरी-भरी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो गये।

१६. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं [जाव] जूवा निक्खित्ता। तए णं मए वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अम्बारामा जाव पुप्फारामा य रोवाविया। तं सेयं खलु मए इयाणिं कल्लं [जाव] जलन्ते सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तम्बियं तावसभण्डं घडावेत्ता विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणं आमन्तेत्ता तं मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगन्धमल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं ठवित्ता तं मित्तनाइनियगसंबंधिपरिजणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तम्बियं तावसभण्डगं गहाय जे इमे गङ्गाकूला वाणपत्था तावसा भवन्ति, तं जहा—होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जन्नई सड्ढई थालई हुम्बउट्ठा दन्तुक्खलिया उम्मज्जगा संमज्जगा निमज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकूला उत्तरकूला संखधमा कूलधमा मियलुद्धया हत्थितावसा उद्दण्डा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो बिलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अम्बुभक्खिणो वायुभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कन्दाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फाहारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकन्दमूलतय-पत्तपुप्फफलाहारा जलाभिसेयकढिणगायभूया आयावणाहिं पञ्चग्गितावेहिं इङ्गालसोल्लियं कन्दुसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरन्ति।

तत्थ णं जे ते दिसापोक्खिया तावसा तेसिं अन्तिए दिसापोक्खियत्ताए पव्वइत्तए, पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं [जाव] जलन्ते सुबहुं लोह० [जाव] दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं जाव अभिगिण्हित्ता पढमं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

[१६] इसके बाद पुन: उस सोमिल ब्राह्मण को किसी अन्य समय मध्यरात्रि में कौटुम्बिक स्थिति का विचार करते हुए इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् मन:सकल्प उत्पन्न हुआ—वाराणसी नगरी वासी मैं सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त शुद्ध—प्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। मैंने व्रतों का पालन किया, वेदों का अध्ययन आदि किया यावत् यूप स्थापित किये और इसके बाद वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे लगवाए। लेकिन अब मुझे यह उचित है कि कल यावत् तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोहे के कड़ाह, कुडछी एवं तापसों के योग्य तांबे के पात्रों—बर्तनों को घड़वाकर तथा विपुल मात्रा में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन बनवाकर मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, संबन्धियों और परिचित जनों को आमंत्रित कर उन मित्रों, जातिबंधुओं, स्वजनों, संबन्धियों और परिचितों का विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकारों से सत्कार-सन्मान करके उन्हीं मित्रों, जाति-बंधुओं स्वजनों, संबन्धियों और परिचितों के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर तथा मित्रों-जाति-बंधुओं आदि परिचितों और ज्येष्ठपुत्र से पूछकर उन बहुत से लोहे के कड़ाहे, कुड़छी आदि तापसों के पात्र लेकर जो गंगातटवासी वानप्रस्थ तापस हैं, जैसे कि—

होत्रिक (अग्निहोत्री), पोत्रिक (वस्त्रधारी), कौत्रिक (भूमिशायी), याज्ञिक (यज्ञ करने वाले), श्राद्धकिन (श्राद्ध करने वाले), स्थालकिन (पात्र धारण करने वाले), हुम्बउट्ठ (वानप्रस्थ तापस-विशेष), दन्तोदूखलिक (दांतों से धान्य को तुषहीन करके खाने वाले), उन्मज्जक (पानी में एक बार डुबकी लगाने वाले), संमज्जक (बार-बार हाथ पैर धोने वाले) निमज्जक (पानी में कुछ देर तक डूबे रहने वाले), संप्रक्षालक (मिट्टी आदि से शरीर को रगड़ कर स्नान करने वाले), दक्षिणकूल (तट)-वासी, उत्तरकूल-वासी, शंखध्मा (शंख बजा कर भोजन करने वाले), कूलध्मा (तट पर खड़े होकर आवाज लगाने के पश्चात् भोजन करने वाले), मृगलुब्धक (व्याधों की तरह हिरणों का मांस खाने वाले), हस्तीतापस (हाथी को मारकर उसका मांस खाकर जीवन व्यतीत करने वाले), उद्दण्डक (डंडे को ऊंचा करके चलने वाले), दिशाप्रोक्षिक (जल सींचकर दिशाओं की पूजा करने वाले), वल्कवासी (वृक्ष की छाल पहनने वाले), बिलवासी (भूमि को खोदकर उसमें रहने वाले), जलवासी (जल में रहने वाले), वृक्षमूलिक (वृक्ष के मूल में—नीचे रहने वाले), जलभक्षी (जल मात्र का आहार करने वाले), वायुभक्षी (वायु मात्र से जीवित रहने वाले), शैवालभक्षी (काई को खाने वाले), मूलाहारी (वृक्ष की जड़ें खाने वाले), कदाहारी, त्वचाहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, बीजाहारी, विनष्ट (सड़े हुए), कन्द, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल को खाने वाले, जलाभिषेक से शरीर कठिन—कड़ा

बनाने वाले हैं तथा आतापना और पंचाग्नि ताप से अपनी देह को अंगारपक्व[1] और कंदुपक्व[2] जैसी बनाते हुए समय यापन करते हैं।

इन तापसों में से मैं दिशाप्रोक्षिक तापसों में दिशाप्रोक्षिक रूप से प्रव्रजित होऊँ और प्रव्रजित होने के पश्चात् इस प्रकार का यह अभिग्रह अंगीकार करूँगा —'यावज्जीवन के लिए निरंतर षष्ठ-षष्ठभक्त (बेला-बेला) पूर्वक दिशा चक्रवाल तपस्या करता हुआ सूर्य के अभिमुख भुजाएँ उठाकर आतापनाभूमि में आतापना लूँगा।' उसने इस प्रकार का संकल्प किया और संकल्प करके यावत् कल (आगामी दिन) जाज्वल्यमान सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से लोह-कड़ाहा आदि को लेकर यावत् दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित हो गया। प्रव्रजित होने के साथ इस प्रकार का यह (पूर्व में निश्चय किया हुआ) अभिग्रह अंगीकार करके प्रथम षष्ठक्षपण तप अंगीकार करके विचरने लगा।

सोमिल की दिशाप्रोक्षिक साधना

१७. तए णं सोमिले माहणे रिसी पढमछट्ठक्खमणपारणंसि आयावणभूमीए पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिण-संकाइयं गेण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसिं पुक्खेइ, "पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलमाहणरिसिं। जाणि य तत्थ कन्दाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ" त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसं पसरइ, पसरित्ता जाणि य तत्थ कन्दाणि य [जाव] हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गिण्हित्ता किढिणसंकाइयगं भरेइ, भरित्ता दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च समिहाओ कट्ठाणि य गेण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयगं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलस-हत्थगए जेणेव गङ्गा महाणई तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गङ्गं महाणइं ओगाहइ ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकिड्डं करेइ, करित्ता जलभिसेयं करेइ, करित्ता आयन्ते चोक्खे परमसुइभूए देवपिउकयकज्जे दब्भकल-सहत्थगए गङ्गाओ महाणईओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भे य कुसे य वालुयाए य वेइं रएइ, रइत्ता सरयं करेइ करित्ता अरणिं करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्कित्ता समिहा कट्ठाणि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालित्ता अग्गिस्स दाहिणे पासे सत्तङ्गाइं समादहे।

तं जहा —सकत्थं वक्कलं ठाणं, सेज्जभण्डं कमण्डलुं।
दण्डदारुं तहप्पाणं, अह ताइं समादहे ॥१॥

महुणा य घएण य तन्दुलेहि य अग्गिं हुणइ। चरुं साहेइ, साहित्ता बलिवइस्सदेवं करेइ करेत्ता अतिहिपूयं करेइ करेत्ता, तओ पच्छा अप्पणा आहारं आहारेइ।

---

१. अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तथा पांचवें सूर्य की आतापना से अपनी देह को अंगारों में पकी हुई-सी।

२. भाड़ में भूनी हुई-सी।

तए णं सोमिले माहणरिसी दोच्चं छट्ठक्खमणपारणगंसि, तं चेव सव्वं भाणियव्वं [जाव] आहारं आहारेइ। नवरं इमं नाणत्तं— "दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलं माहणरिसिं, जाणि य तत्थ कन्दाणि य [जाव] अणुजाणउ" त्ति कट्टु दाहिणं दिसिं पसरइ। एवं पच्चत्थिमेणं वरुणे महाराया [जाव] पच्चत्थिमं दिसिं पसरइ। उत्तरेणं वेसमणे महाराया [जाव] उत्तरं दिसिं पसरइ। पुव्वदिसागमेणं चत्तारि वि दिसाओ भाणियव्वाओ [जाव] आहारं आहारेइ।

[१७] तत्पश्चात् ऋषि सोमिल ब्राह्मण प्रथम षष्ठक्षपण के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे उतरे। फिर उसने वल्कल वस्त्र पहने और जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आये। आकर वहाँ से—किढिण बांस की छबड़ी और कावड़ को लिया, तत्पश्चात् पूर्वदिशा का पूजन—प्रक्षालन किया और कहा—हे पूर्व दिशा के लोकपाल सोम महाराज ! प्रस्थान (साधनामार्ग) में प्रस्थित (प्रवृत्त) हुए मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें और यहाँ (पूर्व दिशा में) जो भी कन्द, मूल, छाल, पत्ते, पुष्प, फूल, बीज और हरी वनस्पतियाँ (हरित) है, उन्हें लेने की आज्ञा दे।' यों कहकर सोमिल ब्रह्मर्षि पूर्व दिशा की ओर गया और वहां जो भी कन्द, मूल, यावत् हरी वनस्पति आदि थी उन्हें ग्रहण किया और कावड़ में रखी, बांस की छबड़ी में भर लिया। फिर दर्भ (डाभ), कुश तथा वृक्ष की शाखाओं को मोड़कर तोडे हुए पत्ते और समिधाकाष्ठ लिए। लेकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आये। कावड़ सहित छबड़ी नीचे रखी, फिर वेदिका का प्रमार्जन किया, उसे लीपकर शुद्ध किया। तदनन्तर डाभ और कलश हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आए, आकर गंगा महानदी में अवगाहन किया, और उसके जल से देह शुद्ध की। फिर जलक्रीड़ा की, अपनी देह पर पानी सीचा और आचमन आदि करके स्वच्छ और परम शुचिभूत (पवित्र) होकर देव और पितरों संबंधी कार्य सम्पन्न करके डाभ सहित कलश को हाथ में लिए गंगा महानदी के बाहर निकले। फिर जहाँ अपनी कुटिया थी वहाँ आए। कुटिया में आकर डाभ, कुश और बालू से वेदी का निर्माण किया, सर (मथन-काष्ठ) और अरणि तैयार की। फिर मथनकाष्ठ वे अरणि काष्ठ को घिसा (रगड़ा), अग्नि सुलगाई। अग्नि धौकी—प्रज्वलित की। तब उसमें समिधा (लकड़ी) डालकर और अधिक प्रज्वलित की और फिर अग्नि की दाहिनी ओर ये सात वस्तुएं (अंग) रखीं—(१) सकथ (उपकरण विशेष) (२) वल्कल (३) स्थान (आसन) (४) शैयाभाण्ड (५) कमण्डलु (६) लकड़ी का डंडा और (७) अपना शरीर। फिर मधु, घी और चावलों का अग्नि में हवन किया और चरु तैयार किया तथा नित्य यज्ञ कर्म किया। अतिथिपूजा की (अतिथियों को भोजन कराया) और उसके बाद स्वयं आहार ग्रहण किया।

तत्पश्चात् उन सोमिल ब्रह्मर्षि ने दूसरा षष्ठक्षपण (बेला) अंगीकार किया। उस दूसरे बेले के पारणे के दिन भी आतापनाभूमि से नीचे उतरे, वल्कल वस्त्र पहने इत्यादि प्रथम पारणे में जो विधि की, उसी के अनुसार दूसरे पारणे में भी यावत् आहार किया, तक पूर्ववत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इस बार वे दक्षिण दिशा में गए और कहा—'हे दक्षिण दिशा के यम महाराज ! प्रस्थान-साधना के लिए प्रवृत्त सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें और यहाँ जो कन्द, मूल आदि हैं, उन्हें लेने की आज्ञा दें, ऐसा कहकर दक्षिण में गमन किया।

तदनन्तर उन सोमिल ब्रह्मर्षि ने तृतीय बेला तप अंगीकार किया। उसके पारणे के दिन भी

उन्होंने पूर्वोक्त सब विधि की। किन्तु तब पश्चिम दिशा की पूजा की। कहा—'हे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज ! परलोक-साधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें' इत्यादि तथा पश्चिम दिशा का अवलोकन किया और वेदिका आदि बनाई, तथा उसके बाद स्वयं आहार किया, यहाँ तक का कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसके बाद उन सोमिल ब्रह्मर्षि ने चतुर्थ बेला तप अंगीकार किया। इस चौथे बेले की पारणा के दिन पूर्ववत् सारी विधि की। विशेष यह है कि इस बार उत्तर दिशा की पूजा की और इस प्रकार प्रार्थना की - 'हे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज ! परलोकसाधना में प्रवृत्त मुझ सोमिल ब्रह्मर्षि की रक्षा करें' इत्यादि यावत् उत्तर दिशा का अवलोकन किया आदि। इस प्रकार पूर्व दिशा के वर्णन के समान सभी चारों दिशाओं का वर्णन, आहार किया तक का वृत्तान्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

सोमिल का नया संकल्प

१८. तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था - "एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहाणरिसी अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं [जाव] जूवा निक्खित्ता। तए णं मम वाणारसीए [जाव] पुप्फारामा य [जाव] रोविया। तए णं मए सुबहुं लोह [जाव] घडावेत्ता [जाव] जेट्ठपुत्तं ठवेत्ता जाव जेट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता सुबहुं लोह [जाव] गहाय मुण्डे [जाव] पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे छट्ठं छट्ठेणं [जाव] विहरामि।

तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं जाव जलन्ते बहवे तावसे दिट्ठामट्ठे य पुव्वसंगइए य परियायसंगइए य आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य बहूइं सत्तसयाइं अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स किढिणसंकाइयगहियसभण्डोवगरणस्स कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहस्स महपत्थाणं पत्थावेत्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव जलन्ते बहवे तावसे य दिट्ठाभट्ठे य पुव्वसंगइए य, तं चेव जाव, कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, बंधित्ता अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—"जत्थेव णं अम्हं जलंसि वा एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वतंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा, नो खलु मे कप्पइ पच्चुट्ठित्तए" त्ति अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ।

अभिगिण्हित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहमहपत्थाणं पत्थिए से सोमिले माहणरिसी पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागए, असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वेड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थगए जेणेव गङ्गा महाणई, जहा सिवो जाव गङ्गाओ महाणईओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए य वेइं रएइ, रइत्ता सरगं करेइ करित्ता जाव बलिवइस्सदेवं करेइ, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठइ।

[१८] इसके बाद किसी समय मध्यरात्रि में अनित्य जागरण करते हुए उन सोमिल ब्रह्मर्षि के मन में इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न हुआ—'मैं वाराणसी नगरी का रहने वाला, अत्यन्त उच्चकुल में उत्पन्न सोमिल ब्रह्मर्षि हूँ। मैंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए व्रत पालन किए हैं, यावत् यूप—यज्ञस्तम्भ गड़वाए। इसके बाद मैंने वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बगीचे यावत् फूलों के बगीचे लगवाए। तत्पश्चात् बहुत से लोहे के कड़ाहे, कुडछी आदि घड़वाकर यावत् ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर और मित्रों आदि यावत् ज्येष्ठ पुत्र से सम्मति लेकर लोहे की कड़ाहियां आदि लेकर मुंडित हो प्रव्रजित हुआ। प्रव्रजित होने पर षष्ठ-षष्ठभक्त (बेले-बेले) तप:कर्म अंगीकार करके दिक्चक्रवाल साधना करता हुआ विचरण कर रहा हूँ।

लेकिन अब मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही बहुत से दृष्ट-भाषित (पूर्व में दृष्ट और भाषित) पूर्व संगतिक (पूर्वकाल के साथी) और पर्यायसंगतिक (तापस अवस्था के साथी) तापसों से पूछकर और आश्रमसंश्रित (आश्रम में रहने वाले) अनेक शत जनों को वचन आदि से संतुष्ट कर और उनसे अनुमति लेकर वल्कल वस्त्र पहनकर, कावड़ की छबड़ी में अपने भाण्डोपकरणों को लेकर तथा काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में महाप्रस्थान (मरण के लिए गमन) करूं।' सोमिल ने इस प्रकार से विचार किया। इस प्रकार विचार करने के पश्चात् कल (आगामी दिन) यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर अपने विचार-निश्चय के अनुसार उन्होंने सभी दृष्ट, भाषित, पूर्वसंगतिक और तापस पर्याय के साथियों आदि से पूछकर तथा आश्रमस्थ अनेक शत-प्राणियों को संतुष्ट कर अंत में काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा। मुख को बाँधकर इस प्रकार का अभिग्रह (प्रतिज्ञा) लिया—जहाँ कहीं भी—चाहे वह जल हो या स्थल हो, दुर्ग (दुर्गम स्थान) हो अथवा नीचा प्रदेश हो, पर्वत हो अथवा विषम भूमि हो, गड्ढा हो या गुफा हो, इन सब में से जहाँ कही भी प्रस्खलित होऊँ या गिर जाऊं वहाँ से मुझे उठना नही कल्पता है अर्थात् मै वहां से नही उठूँगा। ऐसा विचार करके यह अभिग्रह कर लिया।

तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर महाप्रस्थान के लिए प्रस्थित वह सोमिल ब्रह्मर्षि उत्तर दिशा की ओर गमन करते हुए अपराह्न काल (दिन के तीसरे प्रहर) में जहां सुन्दर अशोक वृक्ष था, वहाँ आए। उस अशोक वृक्ष के नीचे अपना कावड़ रखा। अनन्तर वेदिका (बैठने की जगह) साफ की, उसे लीप-पोत कर स्वच्छ किया, फिर डाभ सहित कलश को हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आए और शिवराजर्षि के समान उस गंगा महानदी में स्नान आदि कृत्य कर वहाँ से बाहर आए। जहाँ वह उत्तम अशोक वृक्ष था वहाँ आकर डाभ, कुश एवं वालुका से वेदी की रचना की। फिर शर और अरणि बनाई, शर व अरणि काष्ठ को घिसकर—रगड़कर अग्नि पैदा की इत्यादि पूर्व में कही गई विधि के अनुसार कार्य करके बलिवैश्वदेव—अग्नियज्ञ करके काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर मौन होकर बैठ गये।

देव द्वारा सोमिल को प्रतिबोध

१९. तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे सोमिलमाहणं एवं वयासी—'हं भो सोमिलमाहणा, पव्वइया! दुप्पव्वइयं ते।' तए णं से सोमिले तस्स देवस्स दोच्चं पि तच्चं पि एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, जाव तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणाढाइज्जमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव जाव पडिगए।

तए णं से सोमिले कल्लं जाव जलन्ते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं गहाय गहियभण्डोवगरणे कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

[१९] तदनन्तर मध्यरात्रि के समय सोमिल ब्रह्मर्षि के समक्ष एक देव प्रकट हुआ। उस देव ने सोमिल ब्रह्मर्षि से इस प्रकार कहा—'प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' उस देव ने दूसरी और तीसरी बार भी ऐसा ही कहा। किन्तु सोमिल ब्राह्मण ने उस देव की बात का आदर नहीं किया—उसके कथन पर ध्यान नहीं दिया यावत् मौन ही रहे।

इसके बाद उस सोमिल ब्रह्मर्षि द्वारा अनादृत (उपेक्षा किया गया) वह देव जिस दिशा से आया था, वापिस उसी दिशा में लौट गया।

तत्पश्चात कल (दूसरे दिन) यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने कावड़, भाण्डोपकरण आदि लेकर काष्ठमुद्रा से मुख को बांधा। बांधकर उत्तराभिमुख हो उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया।

२०. **तए णं से सोमिले बिइयदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव सत्तिवण्णे तेणेव उवागए। सत्तिवण्णस्स अहे कढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ। जहा असोगवरपायवे जाव अग्गिं हुणइ, कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।**

तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अन्तियं पाउब्भूए। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे जाव पडिगए। तए णं से सोमिले कल्लं जाव जलन्ते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं गेण्हइ, गिण्हित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

[२०] इसके बाद दूसरे दिन अपराह्न काल के अंतिम प्रहर में सोमिल ब्रह्मर्षि जहाँ सप्तपर्ण वृक्ष था, वहाँ आये। उस सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे कावड़ को रखा (कावड़ रखकर) वेदिका—बैठने के स्थान को साफ किया, इत्यादि जैसे पूर्व में अशोक वृक्ष के नीचे कृत्य किए थे, वे सभी यहाँ भी किए, यावत् अग्नि में आहुति दी और काष्ठमुद्रा से अपना मुख बांधकर बैठ गये।

तब मध्यरात्रि मे सोमिल ब्रह्मर्षि के समक्ष पुनः देव प्रकट हुआ और आकाश में स्थित होकर अशोक वृक्ष के नीचे जिस प्रकार पहले कहा था कि तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है, उसी प्रकार फिर कहा। परन्तु सोमिल ने उस देव की बात पर कुछ ध्यान नही दिया। अनसुनी करके मौन ही रहे यावत् वह देव पुनः वापिस लौट गया।

इसके बाद (तीसरे दिन) वल्कल वस्त्रधारी सोमिल ने सूर्य के प्रकाशित होने पर अपने कावड़ उपकरण आदि लिए। काष्ठमुद्रा से मुख को बांधा और मुख बांधकर उत्तर की ओर मुख करके उत्तर दिशा में चल दिये।

२१. तए णं से सोमिले तइयदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ जाव गङ्गं महाणइं पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ। वेइं रएइ, रइत्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्था, तं चेव भणइ जाव पडिगए।

तए णं से सोमिले जाव जलन्ते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, बंधित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

[२१] तदनन्तर वह सोमिल ब्रह्मर्षि तीसरे दिन अपराह्न काल में जहा उत्तम अशोक वृक्ष था, वहां आए। आकर उस अशोक वृक्ष के नीचे कावड़ रखी। बैठने के लिए वेदी बनाई और दर्भयुक्त कलश को लेकर गंगा महानदी में अवगाहन किया। वहाँ स्नान आदि करके गगा महानदी से बाहर निकले। निकलकर अशोक वृक्ष के नीचे वेदी-रचना की। अग्निहवन आदि किया फिर काष्ठ-मुद्रा से मुख को बांधकर मौन बैठ गए।

तत्पश्चात् मध्यरात्रि में सोमिल के समक्ष पुन: एक देव प्रकट हुआ और उसने उसी प्रकार कहा -'हे प्रव्रजित सोमिल ! तेरी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है' यावत् वह देव वापिस लौट गया।

इसके बाद सूर्योदय होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी सोमिल कावड़ और पात्रोपकरण लेकर यावत् काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा की ओर चल दिया।

२२. तए णं से सोमिले चउत्थे दिवसे पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव वडपायवे तेणेव उवागए। वडपायवस्स अहे कढिणं संठवेइ, संठवित्ता वेइं वड्ढेइ, उवलेवणसंमज्जणं करेइ, जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्था, तं चेव भणइ जाव पडिगए।

तए णं से सोमिले जाव जलन्ते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं, जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधइ, उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

[२२] तदनन्तर चलते-चलते सोमिल ब्रह्मर्षि चौथे दिवस के अपराह्न काल में जहाँ वट वृक्ष था, वहाँ आए। आकर वट वृक्ष के नीचे कावड़ रखी। बैठने के योग्य स्थान साफ किया। उसको गोबर मिट्टी से लीपा, स्वच्छ किया इत्यादि तक का समस्त वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् काष्ठमुद्रा से मुख बाधा और मौन होकर बैठ गए। इसके बाद मध्यरात्रि के समय पुन: सोमिल के समक्ष वह देव प्रकट हुआ और उसने पहले के समान कहा —'सोमिल ! तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया।

रात्रि के बीतने के बाद और जाज्वल्यमान तेजयुक्त सूर्य के प्रकाशित होने पर वह वल्कल वस्त्रधारी सोमिल कावड़ लेकर और काष्ठमुद्रा से मुख बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में चल दिए।

२३. तए णं से सोमिले पंचमदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव उंबरपायवे तेणेव उवागच्छइ। उंबरपायवस्स ग्रहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, वेइं वड्ढइ, जाव संचिट्ठइ।

तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे, जाव एवं वयासी—'हं भो सोमिला, पव्वइया, दुप्पव्वइयं ते,' पढमं भणइ, तहेव तुसिणीए संचिट्ठइ। देवो दोच्चं पि तच्चं पि वयइ—"सोमिला, पव्वइया, दुप्पव्वइयं ते।" तए णं से सोमिले तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे तं देवं एवं वयासी—"कहं णं देवाणुप्पिया! मम दुप्पव्वइयं?"

तए णं से देवे सोमिलं माहणं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया! तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अन्तियं पञ्चाणुव्वए सत्तसिक्खावए दुवालसविहे सावयधम्मे पडिवन्ने। तए णं तव अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं ...... जाव पुव्वचिन्तियं देवो उच्चारेइ जाव जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयं जाव तुसिणीए संचिट्ठसि। तए णं पुव्वरत्तावरत्तकाले तव अन्तियं पाउब्भवामि, 'हं भो सोमिला, पव्वइया, दुप्पव्वइयं ते,' तह चेव देवो नियवयणं भणइ, जाव पञ्चमदिवसम्मि पच्छावरण्हकालसमयंसि जेणेव उम्बरपायवे, तेणेव उवागए किढिणसंकाइयं ठवेसि, वेइं वड्ढेसि, उवलेवणं संमज्जणं करेसि, करेत्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बंधेसि, बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठसि। तं एवं खलु, देवाणुप्पिया, तव दुप्पव्वइयं।'

[२३] तत्पश्चात् वह सोमिल ब्रह्मर्षि पाँचवें दिन के चौथे प्रहर में जहां उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष था, वहाँ आए। उस उदुम्बर वृक्ष के नीचे कावड़ रखी। वेदिका बनाई यावत् काष्ठमुद्रा से मुख बांधा यावत् मौन होकर बैठ गए।

इसके बाद मध्यरात्रि में पुनः सोमिल ब्राह्मण के समीप एक देव प्रकट हुआ और उसने उसी प्रकार कहा—'हे सोमिल! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' इस प्रकार पहली बार कही उस देव की वाणी को सुनकर वह मौन बैठे रहे। इसके बाद देव ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—'सोमिल! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' तब देव द्वारा दूसरी तीसरी बार भी इसी प्रकार कहे जाने पर सोमिल ने देव से पूछा—देवानुप्रिय! मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों है?'

सोमिल के इस प्रकार पूछने पर देव ने कहा—'देवानुप्रिय! तुमने पहले पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् से पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार किया था। किन्तु इसके बाद सुसाधुओं के दर्शन उपदेश आदि का संयोग न मिलने और मिथ्यात्व पर्यायों के बढ़ने से अंगीकृत श्रावकधर्म को त्याग दिया। इसके अनन्तर किसी समय रात्रि में कुटुम्ब संबन्धी विचार करते हुए तुम्हारे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि गंगा किनारे तपस्या करने वाले विविध प्रकार के तापसों में से दिशाप्रोक्षिक तापसों के पास लोहे के कड़ाह, कुडछी और तांबे के तापसपात्र बनवाकर और उन्हे लेकर दिशाप्रोक्षिक तापस बनूं। इत्यादि सोमिल ब्राह्मण द्वारा पूर्व में चिन्तित सभी विचारों को देव ने दुहराया और कहा—फिर तुमने दिशाप्रोक्षिक प्रव्रज्या धारण की। प्रव्रज्या धारण कर अन्त में यह अभिग्रह लिया यावत् जहाँ अशोक वृक्ष था, वहाँ आए और कावड़ रख वेदी

आदि बनाई। गंगा में स्नान किया। अग्निहवन किया यावत् काष्ठमुद्रा से मुख बांधकर मौन बैठ गए। बाद में मध्यरात्रि के समय मैं तुम्हारे समीप आया और तुम्हें प्रतिबोधित किया—'हे सोमिल ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।' किन्तु तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया और मौन ही रहे। इस प्रकार मैंने तुम्हें चार दिन तक समझाया पर तुमने विचार नहीं किया। इसके बाद आज पांचवें दिवस चौथे प्रहर में इस उदुम्बर वृक्ष के नीचे आकर तुमने अपना कावड़ रखा। बैठने के स्थान को साफ किया, लीप-पोतकर स्वच्छ किया। अग्नि में हवन किया और काष्ठमुद्रा से अपना मुख बांधकर तुम मौन होकर बैठ गए। इस प्रकार से हे देवानुप्रिय ! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है।

सोमिल द्वारा पुनः श्रावकधर्मग्रहण

२४. तए णं से सोमिले तं देवं एवं वयासी—"कहं णं देवाणुप्पिया ! मम सुप्पव्वइयं ?"

तए णं से देवे सोमिलं एवं वयासी—"जइ णं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं पुव्वपडिवन्नाइं पञ्च अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरसि, तो णं तुज्झ इयाणिं सुपव्वइयं भवेज्जा।"

तए णं से देवे सोमिलं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तए णं सोमिले माहणरिसी तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे पुव्वपडिवन्नाइं पञ्च अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

[२४] यह सब सुनकर सोमिल ने देव से कहा—'अब आप ही बताइए कि मैं कैसे सुप्रव्रजित बनूँ—मेरी प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या कैसे हो ?'

इसके उत्तर में देव ने सोमिल ब्राह्मण से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! यदि तुम पूर्व में ग्रहण किए हुए पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म को स्वयमेव स्वीकार करके विचरण करो तो तुम्हारी यह प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या होगी।

इसके बाद देव ने सोमिल ब्राह्मण को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके जिस ओर से आया था उसी ओर अन्तर्धान हो गया।

उस देव के अन्तर्धान हो जाने के पश्चात् सोमिल ब्रह्मर्षि देव के कथनानुसार पूर्व में स्वीकृत पंच अणुव्रतों को अंगीकार करके विचरण करने लगे।

सोमिल की शुक्र महाग्रह में उत्पत्ति

२५. तए णं से सोमिले बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम [जाव] मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोवहाणेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते विराहियसम्मत्ते कालमासे कालं किच्चा सुक्कवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि [जाव] ओगाहणाए सुक्कमहग्गहत्ताए उववन्ने।

तए णं से सुक्के महग्गहे अहुणोववन्ने समाणे जाव भासामणपज्जत्तीए०।

[२५] तत्पश्चात् सोमिल ने बहुत से चतुर्थभक्त (उपवास) षष्ठभक्त (बेला), अष्टमभक्त (तेला) यावत् अर्धमासक्षपण, मासक्षपण रूप विचित्र तपःकर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए—संस्कृत करते हुए श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया। अंत में अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा की आराधना कर और तीस भोजनों का अनशन द्वारा त्याग कर किन्तु पूर्वकृत उस पापस्थान (दुष्प्रव्रज्या रूप कृत प्रमाद) की आलोचना और प्रतिक्रमण न करके सम्यक्त्व की विराधना के कारण कालमास में (मरण के समय) काल (मरण) किया। शुक्रावतंसक विमान की उपपातसभा में स्थित देवशैया पर यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग की जघन्य अवगाहना से शुक्रमहाग्रह देव के रूप में जन्म लिया।

तत्पश्चात् वह शुक्रमहाग्रह देव तत्काल उत्पन्न होकर यावत् भाषा-मनःपर्याप्ति आदि पांचों पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ।

२६. एवं खलु गोयमा ! सुक्केणं सा दिव्वा [जाव] अभिसमन्नागए। एगं पलिओवमं ठिई।

"सुक्के णं भंते ! महग्गहे तओ देवलोगाओ आउक्खएण भवक्खएणं ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।"

[२६] अन्त में अपने कथन का उपसंहार करते हुए भगवान् महावीर स्वामी ने कहा—हे गौतम ! इस प्रकार से उस शुक्रमहाग्रह देव ने वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति यावत् दिव्य प्रभाव प्राप्त किया है। उसकी वहाँ एक पल्योपम की स्थिति है।

गौतम स्वामी ने पुनः पूछा—भदन्त ! वह शुक्रमहाग्रह देव आयु, भव और स्थिति का क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा ? (कहाँ उत्पन्न होगा ?)

भगवान् ने कहा—गौतम ! वह शुक्रमहाग्रह देव आयुक्षय भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, (यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा)।

२७. निक्खेवओ—तं एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं तच्चस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

[२७] सुधर्मा स्वामी ने तीसरे अध्ययन का आशय कहने के बाद जम्बू स्वामी से कहा—आयुष्मन् जम्बू ! इस प्रकार श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन में इस भाव का निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूं।

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

चतुर्थ अध्ययन : बहुपुत्रिका देवी

२८. उक्खेवओ—जइ णं भंते ! समणेण भगवया जाव पुप्फियाणं तच्चस्स अज्झयणस्स जाव अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

एवं खलु जम्बू !

[२८] जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा—भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका के तृतीय अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है तो भदन्त ! उन मुक्ति प्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के चतुर्थ अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू ! वह इस प्रकार है—

बहुपुत्रिका देवी

२९. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसढे । परिसा निग्गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बहुपुत्तिया देवी सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तिए विमाणे सभाए सुहम्माए बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं, जहा सूरियाभे, [जाव] भुञ्जमाणी विहरइ, इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी आभोएमाणी पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं, जहा सूरियाभो, [जाव] नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा संनिसण्णा ।

आभियोगा जहा सूरियाभस्स, सूसरा घण्टा, आभियोगियं देवं सद्दावेइ ।

जाणविमाणं जोयणसहस्सविच्छिण्णं । जाणविमाणवण्णओ । [जाव] उत्तरिल्लेणं निज्जाण-मग्गेण जोयणसाहस्सिएहिं विग्गेहेहिं आगया, जहा सूरियाभे ।

धम्मकहा समत्ता । तए णं सा बहुपुत्तिया देवी दाहिणं भुयं पसारेइ, पसारित्ता देवकुमाराणं अट्ठसयं देवकुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं । तयाणन्तरं च णं बहवे दारगा य दारियाओ य डिम्भए य डिम्भियाओ य विउव्वइ । नट्टविहिं जहा सूरियाभो, उवदंसित्ता पडिगया ।

[२९] उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। उस नगर का राजा श्रेणिक था। स्वामी (श्रमण भगवान् महावीर) का पदार्पण हुआ। उनकी धर्मदेशना श्रवण करने के लिए परिषद् निकली।

उस काल और उस समय में सौधर्म कल्प के बहुपुत्रिक विमान की सुधर्मा सभा में बहुपुत्रिका नाम की देवी बहुपुत्रिक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवियों तथा चार हजार महत्तरिका देवियों के साथ सूर्याभ देव के समान नानाविध दिव्य भोगों को भोगती हुई विचरण कर रही थी। उस समय उसने अपने विपुल अवधिज्ञान से इस केवलकल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीप नामक द्वीप को देखा और राजगृह नगर में समवसृत भगवान् महावीर स्वामी को देखा। उनको देखकर सूर्याभ देव के समान (सिंहासन से उठकर कुछ कदम जाकर यावत्) नमस्कार करके अपने उत्तम सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गई।

फिर सूर्याभ देव के समान उसने अपने आभियोगिक देवों को बुलाया और उन्हें सुस्वरा घंटा बजाने की आज्ञा दी। उन्होंने सुस्वरा घंटा बजाकर सभी देव-देवियों को भगवान् के दर्शनार्थ चलने की सूचना दी। तत्पश्चात् पुनः आभियोगिक देवों को बुलाया और भगवान् के दर्शनार्थ जाने योग्य विमान की विकुर्वणा करने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार उन आभियोगिक देवों ने यान-विमान की विकुर्वणा की। सूर्याभ देव के यान-विमान के समान इस विमान का वर्णन करना चाहिए।[1] किन्तु वह यान-विमान एक हजार योजन विस्तीर्ण था। सूर्याभ देव के समान वह अपनी समस्त ऋद्धि-वैभव के साथ यावत् उत्तर दिशा के निर्याणमार्ग से निकलकर एक हजार योजन ऊँचे वैक्रिय शरीर को बनाकर भगवान् के समवसरण में उपस्थित हुई।

भगवान् ने धर्मदेशना दी। धर्मदेशना की समाप्ति के पश्चात् उस बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाहिनी भुजा पसारी—फैलाई। भुजा पसारकर एक सौ आठ देवकुमारों की और बायीं भुजा फैलाकर एक सौ आठ देवकुमारिकाओं की विकुर्वणा की। इसके बाद बहुत से दारक-दारिकाओं (बड़ी उम्र के बच्चे-बच्चियों) तथा डिम्भक-डिम्भिकाओं (छोटी उम्र के बालक-बालिकाओं) की विकुर्वणा की तथा सूर्याभ देव के समान नाट्य-विधियों को दिखाकर (भगवान् को नमस्कार करके) वापिस लौट गई।

गौतम की जिज्ञासा

३०. "भंते" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ। कूडागारसाला। "बहुपुत्तियाए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी"....पुच्छा, "जाव अभिसमन्नागया?"

"एवं खलु गोयमा!"

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसीनामं नयरी, अम्बसालवणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए नयरीए भद्दे नामं सत्थवाहे होत्था अड्ढे [जाव] अपरिभूए। तस्स णं भद्दस्स सुभद्दा नामं भारिया सुउमाला वञ्झा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।

[३०] उसके चले जाने के बाद गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया और 'भदन्त!' इस प्रकार सम्बोधन कर प्रश्न किया—भगवन्! उस बहुपुत्रिका देवी की वह दिव्य देवऋद्धि, द्युति और देवानुभाव कहाँ गया? कहाँ समा गया?

---

१. सूर्याभ देव के यान-विमान का वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र (आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर) पृष्ठ २६-३६ पर देखिये।

भगवान् ने कहा—गौतम ! वह देव-ऋद्धि आदि उसी के शरीर से निकली थी और उसी के शरीर में समा गई।

गौतम ने पुनः पूछा—वह विशाल देव-ऋद्धि उसके शरीर में कैसे विलीन हो गई—समा गई ?

उत्तर में भगवान् ने बतलाया—गौतम ! जिस प्रकार किसी उत्सव आदि के कारण फैला हुआ जनसमूह वर्षा आदि की आशंका के कारण कूटाकार शाला में समा जाता है, उसी प्रकार देव-कुमार आदि देव-ऋद्धि बहुपुत्रिका देवी के शरीर में अन्तर्हित हो गई—समा गई।

गौतम स्वामी ने पुनः पूछा—भदन्त ! उस बहुपुत्रिका देवी को वह दिव्य देव-ऋद्धि आदि कैसे मिली, कैसे प्राप्त हुई, और कैसे उसके उपभोग में आई ? ऐसा पूछने पर भगवान् ने कहा—गौतम ! उस काल और उस समय वाराणसी नाम की नगरी थी। उस नगरी में आम्रशालवन नामक चैत्य था। उस वाराणसी नगरी में भद्र नामक सार्थवाह रहता था, जो धन-धान्यादि से समृद्ध यावत् दूसरों से अपरिभूत था (दूसरों के द्वारा जिसका पराभव या तिरस्कार किया जाना संभव नहीं था।) उस भद्र सार्थवाह की पत्नी का नाम सुभद्रा था। वह अतीव सुकुमाल अंगोपांग वाली थी, रूपवती थी। किन्तु वन्ध्या होने से उसने एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया। वह केवल जानु और कूर्पर की माता थी अर्थात् उसके स्तनों को केवल घुटने और कोहनियाँ ही स्पर्श करती थी, संतान नहीं।

सुभद्रा सार्थवाही की चिन्ता

३१. तए णं तीसे सुभद्दाए सत्थवाहीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले कुटुम्बजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए पत्थिए चिन्तिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयाया। तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, [जाव] सपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासिं अम्मयाणं मणुयजम्मजीवियफले, जासिं मन्ने नियकुच्छिसंभूयगाइं थणदुद्धलुद्धगाइं महुरसमुल्लावगाणि मम्मणप्पजम्पियाणि थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणगाणि पण्हयन्ति, पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छङ्गनिवेसियाणि देन्ति, समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मम्मणप्पभणिए। अहं णं अधन्ना अपुण्णा एत्तो एगमवि न पत्ता।" ओहय० जाव झियाइ।

[३१] तत्पश्चात् किसी एक समय मध्य रात्रि में पारिवारिक स्थिति का विचार करते हुए सुभद्रा को इस प्रकार का आन्तरिक चिन्तित, प्रार्थित और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—'मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल मानवीय भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूं, किन्तु आज तक मैंने एक भी बालक या बालिका का प्रसव नहीं किया है। वे माताएँ धन्य हैं यावत् पुण्यशालिनी हैं, उन्होंने पुण्य का उपार्जन किया है, उन माताओं ने अपने मनुष्यजन्म और जीवन का फल भलीभांति प्राप्त किया है, जो अपनी निज की कुक्षि से उत्पन्न, स्तन के दूध की लोभी, मन को लुभाने वाली वाणी का उच्चारण करने वाली, तोतली बोली बोलने वाली, स्तनमूल और कांख

के अंतराल में अभिसरण करने वाली सन्तान को दूध पिलाती हैं। फिर कमल के सदृश कोमल हाथों से लेकर उसे गोद में बिठलाती हैं, कानों को प्रिय लगने वाले मधुर-मधुर संलापों से अपना मनोरंजन करती हैं। लेकिन मैं ऐसी भाग्यहीन, पुण्यहीन हूं कि संतान सम्बन्धी एक भी सुख मुझे प्राप्त नहीं है।' इस प्रकार के विचारों से निरुत्साह--भग्नमनोरथ होकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगी।

सुव्रता आर्या का आगमन

३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ णं अज्जाओ इरियासमियाओ भासासमियाओ एसणासमियाओ आयाणभण्डमत्तनिक्खेवणासमियाओ उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपारिट्ठावणा-समियाओ मणगुत्तीओ वयगुत्तीओ कायगुत्तीओ गुत्तिन्दियाओ गुत्तबम्भयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ गामाणुगामं दूइज्जमाणीओ जेणेव वाणारसी नयरी, तेणेव उवागयाओ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरन्ति।

[३२] उस काल और उस समय में ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भांड-मात्रनिक्षेपणा-समिति, उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाणपरिष्ठापना-समिति से समित, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति से युक्त, इन्द्रियों का गोपन करने वाली (इन्द्रियों का दमन करने वाली) गुप्त ब्रह्मचारिणी बहुश्रुता (बहुत से शास्त्रों में निष्णात), शिष्याओं के बहुत बड़े परिवार वाली सुव्रता नाम की आर्या पूर्वानुपूर्वी क्रम (तीर्थंकर परंपरा के अनुरूप) से चलती हुई, ग्रामानुग्राम में विहार करती हुई जहाँ वाराणसी नगरी थी, वहाँ आई। आकर कल्पानुसार यथायोग्य अवग्रह-आज्ञा लेकर संयम और तप से आत्मा को परिशोधित करती हुई विचरने लगी।

सुभद्रा की जिज्ञासा : आर्याओं का उत्तर

३३. तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए वाणारसी नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे भद्दस्स सत्थवाहस्स गिहं अणुप्पविट्ठे। तए णं सुभद्दा सत्थवाही ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेण पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

'एवं खलु अहं, अज्जाओ, भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारिगं वा पयायामि। तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, [जाव] एत्तो एगमवि न पत्ता।

तं तुब्भे, अज्जाओ, बहुणायाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागरनगर० [जाव] संनिवेसाइं आहिण्डह, बहूणं राईसरतलवर० [जाव] सत्थवाहप्पभिईणं गिहाइं अनुपविसह, अत्थि से केइ कहिंचि विज्जापओए वा मन्तप्पओए वा वमणं वा विरेयणं वा बत्थिकम्मं वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धे, जेणं अहं दारगं वा दारिगं वा पयाएज्जा।'

[३३] तदनन्तर उन सुव्रता आर्या का एक संघाड़ा वाराणसी नगरी के सामान्य, मध्यम और उच्च कुलों में सामुदायिक भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण करता हुआ भद्र सार्थवाह के घर में आया। तब उस सुभद्रा सार्थवाही ने उन आर्यिकाओं को आते हुए देखा। देखकर वह हर्षित और संतुष्ट होती हुई शीघ्र ही अपने आसन से उठकर खड़ी हुई। खड़ी होकर सात-आठ डग उनके सामने गई और वन्दन-नमस्कार किया। फिर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार से प्रतिलाभित कर इस प्रकार कहा—

आर्याओ ! मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोग भोग रही हूँ, मैंने आज तक एक भी संतान का प्रसव नहीं किया है। वे माताएँ धन्य हैं, पुण्यशालिनी हैं (जो संतान का सुख भोगती हैं) यावत् मैं अधन्या पुण्यहीना हूँ कि उनमें से एक भी सुख प्राप्त नहीं कर सकी हूँ।

देवानुप्रियो ! आप बहुत ज्ञानी हैं, बहुत पढ़ी-लिखी हैं और बहुत से ग्रामों, आकरों, नगरों यावत् देशों में घूमती हैं। अनेक राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि के घरों में भिक्षा के लिए प्रवेश करती हैं। तो क्या कहीं कोई विद्याप्रयोग, मंत्रप्रयोग, वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, औषध अथवा भेषज ज्ञात किया है, देखा-पढ़ा है जिससे मैं बालक या बालिका का प्रसव कर सकूँ ?

३४. तए णं ताओ अज्जाओ सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गन्थीओ इरियासमियाओ [जाव] गुत्तबम्भयारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं एयमट्ठं कण्णेहिं वि निसामेत्तए किमङ्ग पुण उद्दिसित्तए वा समायरित्तए वा ? अम्हे णं देवाणुप्पिए। नवरं तव विचित्तं केवलिपन्नत्तं धम्मं परिकहेमो।"

[३४] सुभद्रा का कथन सुनकर उन आर्यिकाओं ने सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये। हम ईर्यासमिति आदि समितिओं से समित, तीन गुप्तिओं से गुप्त, इन्द्रियों को वश में करने वाली गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थ-श्रमणिएँ हैं। हमको ऐसी बातों का सुनना भी नहीं कल्पता है तो फिर हम इनका उपदेश अथवा आचरण कैसे कर सकती हैं ? किन्तु देवानुप्रिये ! हम तुम्हें केवलिप्ररूपित दान शील आदि अनेक प्रकार का धर्मोपदेश सुना सकती हैं।

आर्याओं का उपदेश : सुभद्रा का श्रमणोपासिका व्रत ग्रहण

३५. तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अन्तिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा ताओ अज्जाओ तिक्खुत्तो वन्दइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं अज्जाओ ! निग्गन्थं पावयणं, पत्तियामि रोएमि णं, अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं····। एवमेयं तहमेयं अवितहमेयं," [जाव] सावगधम्मं पडिवज्जए।

"अहासुहं, देवाणुप्पिए, मा पडिबन्धं करेह।"

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अन्तिए [जाव] पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ। तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया, जाव विहरइ।

[३५] इसके बाद उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर उसे अवधारित कर उस सुभद्रा सार्थवाही ने हृष्ट-तुष्ट हो उन आर्याओं को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके उसने कहा—देवानुप्रियो ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, विश्वास करती हूँ, रुचि करती हूँ। आपने जो उपदेश दिया है, वह तथ्य है, सत्य है, अवितथ है । यावत् मैं श्रावकधर्म को अंगीकार करना चाहती हूँ ।

आर्यिकाओं ने उत्तर दिया—देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें अनुकूल हो अथवा जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो किन्तु प्रमाद मत करो ।

तत्पश्चात् सुभद्रा सार्थवाही ने उन आर्यिकाओं से श्रावकधर्म अंगीकार किया। अंगीकार करके उन आर्यिकाओं को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके उन्हे विदा किया।

तत्पश्चात् वह सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका होकर श्रावकधर्म पालती हुई यावत् विचरने लगी।

सुभद्रा की दीक्षा का संकल्प

३६. तए णं तीसे सुभद्दाए समणोवासियाए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुटुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं विउलाइं भोगभोगाइं जाव विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा ···। तं सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलन्ते भद्दस्स आपुच्छित्ता सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तिए अज्जा भवित्ता अगाराओ [जाव] पव्वइत्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव भद्दे सत्थवाहे तेणेव उवागया, करयल [जाव] एवं वयासी—"एवं खलु अहं, देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं विउलाइं भोगभोगाइं [जाव] विहरामि, नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयायामि । तं इच्छामि णं, देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अणुन्नाया समाणी सुव्वयाणं अज्जाणं [जाव] पव्वइत्तए।"

[३६] इसके बाद उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी दिन मध्यरात्रि के समय कौटुम्बिक स्थिति पर विचार करते हुए इस प्रकार का आन्तरिक मन:संकल्प यावत् विचार समुत्पन्न हुआ—"मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत कर रही हूँ किन्तु मैंने अभी तक एक भी दारक या दारिका को जन्म नही दिया है। अतएव मुझे यह उचित है कि मै कल यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर भद्र सार्थवाह से अनुमति लेकर सुव्रता आर्यिका के पास गृह त्यागकर यावत् प्रव्रजित हो जाऊँ। उसने इस प्रकार का संकल्प किया—विचार किया। विचार करके जहाँ भद्र सार्थवाह था, वहाँ आई। आकर दोनों हाथ जोड़ यावत् इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय ! तुम्हारे साथ बहुत वर्षों से विपुल भोगों को भोगती हुई समय बिता रही हूँ, किन्तु एक भी बालक या बालिका को जन्म नहीं दिया है । अब मैं आप देवानुप्रिय की अनुमति प्राप्त करके सुव्रता आर्यिका के पास यावत् प्रव्रजित-दीक्षित होना चाहती हूँ।

३७. तए णं से भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—

"मा णं तुमं देवाणुप्पिए, मुण्डा [जाव] पव्वयाहि। भुञ्जाहि ताव देवाणुप्पिए, मए सद्धि विउलाइं भोगभागाइं, तम्रो पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं [जाव] पव्वयाहि।"

तए णं सुभद्दा सत्थवाही भद्दस्स एयमट्ठं नो परियाणइ। दोच्चं पि तच्चं पि सुभद्दा सत्थवाही भद्दं सत्थवाहं एवं वयासी—"इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी [जाव] पव्वइत्तए।"

तए णं से भद्दे सत्थवाहे, जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य, एवं पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा [जाव] पन्नवित्तए वा, सन्नवित्तए वा विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव सुभद्दाए निक्खमणं अणुमन्नित्था।

[३७] तब भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—

देवानुप्रिये! तुम अभी मुंडित होकर यावत् गृहत्याग करके प्रव्रजित मत होओ, मेरे साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करो और भोगों को भोगने के पश्चात् सुव्रता आर्या के पास मुण्डित होकर यावत् गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना।

भद्र सार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी सुभद्रा सार्थवाही ने भद्र सार्थवाह के वचनों का आदर नहीं किया—उन्हें स्वीकार नहीं किया। दूसरी बार और फिर तीसरी बार भी सुभद्रा सार्थवाही ने भद्र सार्थवाह से यही कहा—देवानुप्रिय! आपकी आज्ञा—अनुमति लेकर मैं सुव्रता आर्या के पास प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ।

जब भद्र सार्थवाह अनुकूल और प्रतिकूल बहुत सी युक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों से उसे समझाने-बुझाने, संबोधित करने और मनाने में समर्थ नही हुआ तब इच्छा न होने पर भी लाचार होकर सुभद्रा को दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी।

दीक्षाग्रहण

तए णं से भद्दे सत्थवाहे विउलं असणं ४ उवक्खडावेइ। मित्तनाइ० तम्रो पच्छा भोयण वेलाए [जाव] मित्तनाइ सक्कारेइ संमाणेइ। सुभद्दं सत्थवाहिं ण्हायं [जाव] पायच्छित्तं सव्वालंकार-विभूसियं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहेइ। तम्रो सा सुभद्दा सत्थवाही मित्तनाइ....[जाव] संबन्धिसंपरिवुडा सव्विड्ढीए [जाव] रवेणं वाणारसीनयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं सीयाओ पच्चोरुहेइ।

तए णं भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं पुरओ काउं जेणेव सुव्वया अज्जा, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु, देवाणुप्पिया! सुभद्दा सत्थवाही ममं भारिया इट्ठा कन्ता, [जाव] मा णं वाइया पित्तिया सिम्भिया संनिवाइया विविहा रोहातङ्का फुसन्तु। एस णं, देवाणुप्पिया! संसारभउव्विग्गा,

भीया जम्ममरणाणं, देवाणुप्पियाणं अन्तिए मुण्डा भवित्ता [जाव] पव्वयाइ । तं एयं अहं देवाणुप्पियाणं सीसिणिभिक्खं दलयामि । पडिच्छन्तु णं, देवाणुप्पिया ! सीसिणिभिक्खं ।

"अहासुहं, देवाणुप्पिया, मा पडिबंधं करेह ।"

[३८] तत्पश्चात् भद्र सार्थवाह ने विपुल परिमाण में अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन तैयार करवाया और अपने सभी मित्रों, जातिबांधवों, स्वजनों, सम्बन्धी-परिचितों को आमन्त्रित किया । उन्हें भोजन कराया यावत् उन मित्रों आदि का सत्कार-सम्मान किया । फिर स्नान की हुई, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त आदि से युक्त, सभी अलंकारों से विभूषित सुभद्रा सार्थवाही को हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने योग्य पालकी में बैठाया और उसके बाद वह सुभद्रा सार्थवाही मित्र-ज्ञातिजन, स्वजन-संबन्धी परिजनों के साथ भव्य ऋद्धि-वैभव यावत् भेरी आदि वाद्यों के घोष के साथ वाराणसी नगरी के बीचों-बीच से होती हुई जहाँ सुव्रता आर्या का उपाश्रय था वहाँ आई । आकर उस पुरुषसहस्रवाहिनी पालकी को रोका और पालकी से उतरी ।

तत्पश्चात् भद्र सार्थवाह सुभद्रा सार्थवाही को आगे करके सुव्रता आर्या के पास आया और आकर उसने वन्दन नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

'देवानुप्रिये ! मेरी यह सुभद्रा भार्या मुझे अत्यन्त इष्ट और कान्त है यावत् इसको वात-पित्त-कफ और सन्निपातजन्य विविध रोग-आतंक आदि स्पर्श न कर सकें, इसके लिए सर्वदा प्रयत्न करता रहा । लेकिन हे देवानुप्रिये ! अब यह संसार के भय से उद्विग्न होकर एवं जन्म-स्मरण से भयभीत होकर आप देवानुप्रिया के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रजित होने के लिए तत्पर है । इसलिए हे देवानुप्रिये ! मैं आपको यह शिष्या रूप भिक्षा दे रहा हूँ । आप देवानुप्रिया इस शिष्या-भिक्षा को स्वीकार करें ।'

भद्र सार्थवाह के इस प्रकार निवेदन करने पर सुव्रता आर्या ने कहा—'देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें अनुकूल प्रतीत हो, वैसा करो, किन्तु इस मांगलिक कार्य में विलम्ब मत करो ।'

३९. तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठा० सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पञ्चमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणेणं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्तेणं भंते ! लोए जराए मरणेणय जहा देवाणंदा तहा पव्वइया [जाव] अज्जा जाया गुत्तबम्भयारिणी ।।

[३९] सुव्रता आर्या के इस कथन को सुनकर सुभद्रा सार्थवाही हर्षित एवं संतुष्ट हुई और उसने (एक ओर जाकर) स्वयमेव अपने हाथों से वस्त्र, माला और आभूषणों को उतारा । पंचमुष्टिक केशलोंच किया फिर जहाँ सुव्रता आर्या थी, वहाँ आई । आकर तीन बार आदक्षिण—दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—

यह संसार आदीप्त है—जन्म-जरा-मरण रूप आग से जल रहा है, प्रदीप्त है—धधक रहा है यह आदीप्त और प्रदीप्त है, (अतएव जैसे किसी गृहस्थ के घर में आग लग गई हो और वह घर जल रहा हो तब वह उस जलते हुए घर में से बहुमूल्य और अल्पभार वाली वस्तुओं को निकाल लेता है और सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार मैं अपनी आत्मा को, जो मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, संमत, अनुमत है, जिसे शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा (भूख-प्यास), चोर, सर्प, सिंह, डांस-मच्छर तथा वात-पित्त-कफ जन्य रोग आदि, परिषह, उपसर्ग आदि किसी प्रकार की हानि न पहुंचा सकें, इस प्रकार सुरक्षित रक्खा है,) इत्यादि कहते हुए देवानन्दा के समान वह उन सुव्रता आर्या के पास प्रव्रजित हो गई और पांच समितियों एवं तीन गुप्तियों से युक्त होकर इन्द्रियों का निग्रह करने वाली यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

विवेचन—भगवती सूत्र के शतक ९ उद्देश ३३ में देवानन्दा का चरित्र निरूपित किया गया है। देवानन्दा भगवान् महावीर से दीक्षित हुई थी। पहले भगवान् ८३ रात्रि देवानन्दा के गर्भ में रहे थे। अतः यह जानकर उसको वैराग्य हुआ।

सुभद्रा आर्या की अनुरागवृत्ति

४०. तए णं सा सुभद्दा अज्जा अन्नया कयाइ बहुजणस्स चेडरूवे संमुच्छिया [जाव] अज्झोववन्ना अब्भङ्गणं च उव्वट्टणं च फासुयपाणं च अलत्तगं च कङ्कणाणि य अञ्जणं च वण्णगं च चुण्णगं च खेल्लणगाणि य खज्जल्लगाणि य खीरं च पुप्फाणि य गवेसइ, गवेसित्ता बहुजणस्स दारए वा दारिया वा कुमारे य कुमारियाओ य डिम्भए य डिम्भियाओ य, अप्पेगइयाओ अब्भङ्गेइ, अप्पेगइयाओ उव्वट्टेइ, एवं अप्पेगइयाओ फासुयपाणएणं ण्हावेइ, पाए रयइ ओट्ठे रयइ, अच्छीणी अञ्जेइ, उसुए करेइ, तिलए करेइ, विगिंदलए करेइ, पन्तियाओ करेइ, छिज्जावइं, खज्जुकरेइ, वण्णएणं समालभइ, चुण्णएणं समालभइ, खेल्लणगाइं दलयइ, खज्जलगाइं, दलयइ, खीरभोयणं भुञ्जावेइ, पुप्फाइं ओमुयइ, पाएसु ठवेइ, जंघासु करेइ, एवं ऊरूसु उच्छङ्गे कडीए पिट्ठे उरसि खन्धे सीसे य करयलपुडेणं गहाय हलउलेमाणी हलउलेमाणी आगायमाणी आगायमाणी परिगायमाणी परिगायमाणी पुत्तपिवासं च धूयपिवासं च नत्तुयपिवासं च नत्तिपिवासं च पच्चणुभवमाणी विहरइ।

[४०] इसके बाद सुभद्रा आर्या किसी समय गृहस्थों के बालक-बालिकाओं में मूर्च्छित आसक्त हो गई—उन पर अनुराग -स्नेह करने लगी यावत् आसक्त होकर उन बालक-बालिकाओं के लिए अभ्यंगन, शरीर का मैल दूर करने के लिए उवटन, पीने के लिए प्रासुक जल, उन बच्चों के हाथ-पैर रंगने के लिए मेहंदी आदि रंजक द्रव्य, कंकण—हाथों में पहनने के कड़े, अंजन—काजल आदि, वर्णक—चंदन आदि, चूर्णक—सुगन्धित द्रव्य, (पाउडर), खेलनक—खिलौने, खाने के लिए खाजे आदि मिष्टान्न, खीर, दूध और पुष्प-माला आदि की गवेषणा करने लगी। गवेषणा करके उन गृहस्थों के दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं, बच्चे-बच्चियों में से किसी की तेल-मालिश करती, किसी के उबटन लगाती, इसी प्रकार किसी को प्रासुक जल से स्नान कराती, किसी के पैरों को रंगती, ओठों को रंगती, किसी की आँखों में काजल आंजती, ललाट पर तिलक लगाती, केशर का तिलक-विन्दी लगाती, किसी बालक को हिंडोले में झुलाती तथा किसी-किसी को पंक्ति में खड़ा करती, फिर उन पंक्ति में खड़े बच्चों को अलग-अलग खड़ा करती, किसी के शरीर में

चंदन लगाती, तो किसी को शरीर में सुगन्धित चूर्ण लगाती। किसी को खिलौने देती, किसी को खाने के लिए खाजे आदि मिष्ठान्न देती, किसी को दूध पिलाती, किसी के कंठ में पहनी हुई पुष्प माला को उतारती, किसी को पैरों पर बैठाती तो किसी को जांघों पर बैठाती। किसी को टांगों पर, किसी को गोदी में, किसी को कमर पर, पीठ पर, छाती पर, कन्धों पर, मस्तक पर बैठाती और हथेलियों में लेकर हुलराती-दुलराती, लोरियां गाती हुई, उच्च स्तर में गाती हुई—पुचकारती हुई पुत्र की लालसा, पुत्री की वांछा, पोते-पोतियों की लालसा (की पूर्ति) का अनुभव करती हुई अपना समय बिताने लगी।

सुभद्रा का पृथक् आवास

४१. तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ सुभद्दं अज्जं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिए! समणीओ निग्गन्थीओ इरियासमियाओ [जाव] गुत्तबम्भयारिणीओ। नो खलु अम्हं कप्पइ जातककम्मं करेत्तए। तुमं च णं देवाणुप्पिए! बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया [जाव] अज्झोववन्ना अब्भङ्गणं [जाव] नत्तिपिवासं वा पच्चणुभवमाणी विहरसि। तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि [जाव] पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।"

[४१] उसकी ऐसी वृत्ति—आचारप्रवृत्ति देखकर सुव्रता आर्या ने सुभद्रा आर्या से कहा—देवानुप्रिये! हम लोग संसार-विषयों से विरक्त, ईर्यासमिति आदि से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थी श्रमणी है। अतएव हमें बालकों का लालन-पालन, बालक्रीड़ा आदि करना-कराना नही कल्पता है। लेकिन देवानुप्रिये! तुम गृहस्थों के बालकों में मूर्च्छित- आसक्त यावत् अनुरागिणी होकर उनका अभ्यंगन—मालिश आदि करने रूप अकल्पनीय कार्य करती हो यावत् पुत्र-पौत्र आदि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हो। अतएव देवानुप्रिये! तुम इस स्थान—अकल्पनीय कार्य की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त लो।

४२. तए णं सा सुभद्दा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ। तए णं ताओ समणीओ निग्गन्थीओ सुभद्दं अज्जं हीलेन्ति, निन्दन्ति, खिंसन्ति, गरहन्ति अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेन्ति।

[४२] सुव्रता आर्या द्वारा इस प्रकार से अकल्पनीय कार्यों से रोकने के लिए समझाए जाने पर भी सुभद्रा आर्या ने उन सुव्रता आर्या के कथन का आदर नहीं किया—कथन पर ध्यान नहीं दिया किन्तु उपेक्षा-पूर्वक अस्वीकार कर पूर्ववत् बाल-मनोरंजन करती रही।

तब निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ इस अयोग्य कार्य के लिए सुभद्रा आर्या की हीलना (तिरस्कार) करती, निन्दा करतीं, खिंसा करतीं—उपालंभ देती, गर्हा करती—भर्त्सना करती और ऐसा करने से उसे बार-बार रोकतीं।

४३. तए णं तीए सुभद्दाए अज्जाए समणीहिं निग्गन्थीहिं हीलिज्जमाणीए [जाव] अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए [जाव] समुप्पज्जित्था—जया णं अहं

अगारवासं वसामि, तया णं अहं अप्पवसा, जप्पभिइं च णं अहं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तप्पभिइं च णं अहं परवसा; पुव्विं च समणीओ निग्गन्थीओ आढेन्ति, परिजाणेन्ति, इयाणिं नो आढाएन्ति नो परिजाणन्ति, तं सेयं खलु मे कल्लं [जाव] जलन्ते सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तियाओ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं [जाव] जलन्ते सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तियाओ पडिनिक्खमइ, पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं सा सुभद्दा अज्जा अज्जाहिं अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छन्दमई बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया [जाव] अब्भङ्गणं च [जाव] नत्तिपिवासं च पच्चणुभवमाणी विहरइ॥

[४३] उन सुव्रता आदि निर्ग्रन्थ श्रमणी आर्याओं द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से हीलना आदि किए जाने और बार-बार रोकने—निवारण करने पर उस सुभद्रा आर्या को इस प्रकार का आन्तरिक यावत् मानसिक विचार उत्पन्न हुआ—'जब मैं अपने घर में थी, तब मैं स्वाधीन थी, लेकिन जब से मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुई हूँ, तब से मैं पराधीन हो गई हूँ। पहले जो निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ मेरा आदर करती थी, मेरे साथ प्रेम-पूर्वक आलाप—संलाप, व्यवहार करती थीं, वे आज न तो मेरा आदर करती हैं और न प्रेम से बोलती हैं। इसलिए मुझे कल (आगामी दिन) प्रातःकाल यावत् सूर्य के प्रकाशित होने पर इन सुव्रता आर्या से अलग होकर, पृथक् उपाश्रय में जाकर रहना उचित है।' उसने इस प्रकार का संकल्प किया। इस प्रकार का संकल्प करके दूसरे दिन यावत् सूर्योदय होने पर सुव्रता आर्या को छोड़कर वह (सुभद्रा आर्या) निकल गई और अलग उपाश्रय में जाकर अकेली ही रहने लगी।

तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या, आर्याओं द्वारा नही रोके जाने से निरंकुश और स्वच्छन्दमति होकर गृहस्थों के बालकों में आसक्त—अनुरक्त होकर यावत्—उनकी तेल-मालिश आदि करती हुई पुत्र-पौत्रादि की लालसापूर्ति का अनुभव करती हुई समय बिताने लगी।

बहुपुत्रिका देवी रूप में उत्पत्ति

४४. तए णं सा सुभद्दा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता संसत्तविहारी अहाछन्दा अहाछन्दविहारी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं··· तीसं भत्ताइं अणसणेणं छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कन्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तियाविमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसन्तरिया अंगुलस्स असंखेज्जभागमेत्ताए ओगाहणाए बहुपुत्तियदेवित्ताए उववन्ना।

तए णं सा बहुपुत्तिया देवी अहुणोववन्नमेत्ता समाणी पञ्चविहाए पज्जत्तीए·· [जाव] भासामणपज्जत्तीए। एवं खलु गोयमा! बहुपुत्तियाए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी [जाव] अभिसमन्नागया।

[४४] तदनन्तर वह सुभद्रा पासत्था—शिथिलाचारी, पासत्थविहारी, अवसन्न (खंडित व्रत वाली) अवसन्नविहारी, कुशील (आचारभ्रष्ट) कुशीलविहारी, संसक्त (गृहस्थों से संपर्क रखने

वाली) संसक्तविहारी और स्वच्छन्द (निरंकुश) तथा स्वच्छन्दविहारी हो गई। उसने बहुत वर्षों तक श्रमणी-पर्याय का पालन किया। पालन करके वह अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा को परिशोधित कर, अनशन द्वारा तीस भोजनों को छोड़कर और अकरणीय पाप-स्थान—सावद्य कार्यों की आलोचना—प्रतिक्रमण किए बिना ही मरण के समय मरण करके सौधर्मकल्प के बहुपुत्रिका विमान की उपपातसभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशैया पर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहना से बहुपुत्रिका देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

तत्पश्चात् उत्पन्न होते ही वह बहुपुत्रिका देवी भाषा-मन:पर्याप्ति आदि पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त होकर देवी रूप में रहने लगी।

गौतम ! इस प्रकार बहुपुत्रिका देवी ने वह दिव्य देव-ऋद्धि एवं देवद्युति प्राप्त की है यावत् उसके सन्मुख आई है।

गौतम की पुनः जिज्ञासा

४५. 'से केणट्ठेणं, भन्ते ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी बहुपुत्तिया देवी ?'

'गोयमा, बहुपुत्तिया णं देवी जाहे जाहे सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो उवत्थाणियणं करेइ, ताहे ताहे बहवे दारए य दारियाओ य डिम्भए य डिम्भियाओ य विउव्वइ, विउव्वित्ता सक्के देविन्दे देवराया, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो दिव्वं देविड्ढि दिव्व देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभावं उवदंसेइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी २।'

'बहुपुत्तियाणं भन्ते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?'

'गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता।'

'बहुपुत्तिया णं भन्ते, देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएण' अणन्तरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ कहिं उववज्जिहिइ ?'

'गोयमा ! इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे विञ्झगिरिपायमूले विभेलसंनिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिइ।'

तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कन्ते जाव बारसेहिं दिवसेहिं वीइक्कन्तेहिं अयमेयारूवं नामधेज्जं करेन्ति— 'होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जं सोमा।'

[४५] तत्पश्चात् गौतम स्वामी ने पुनः भगवान् से पूछा—'भदन्त ! किस कारण से बहुपुत्रिका देवी को बहुपुत्रिका कहते हैं ?'

भगवान् ने उत्तर दिया—'गौतम ! जब-जब वह बहुपुत्रिका देवी देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाती तब-तब वह बहुत से बालक-बालिकाओं, बच्चे-बच्चियों की विकुर्वणा करती। विकुर्वणा करके जहाँ देवेन्द्र-देवराज शक्र आसीन होते, वहां जाती। जाकर उन देवेन्द्र-देवराज शक्र के समक्ष अपनी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति एवं दिव्य देवानुभाव—प्रभाव को प्रदर्शित

करती। इसी कारण हे गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी 'बहुपुत्रिका' कहलाती है अथवा उसे 'बहुपुत्रिका देवी' कहते हैं।

गौतम स्वामी—'भदन्त ! बहुपुत्रिका देवी की स्थिति कितने काल की है ?'

भगवान्—'गौतम ! बहुपुत्रिका देवी की स्थिति चार पल्योपम की है।'

गौतम—'भगवन् ! आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?'

भगवान्—'गौतम ! आयुक्षय आदि के अनन्तर बहुपुत्रिका देवी इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में विन्ध्य-पर्वत की तलहटी में बसे विभेल सन्निवेश में ब्राह्मणकुल में बालिका रूप में उत्पन्न होगी। उस बालिका के माता-पिता ग्यारह दिन बीतने पर यावत् बारहवें दिन इस प्रकार का नामकरण करेंगे—हमारी इस बालिका का नाम सोमा हो, अर्थात् वे अपनी बालिका का नाम सोमा रखेंगे।'

सोमा की युवावस्था

४६. तए णं सोमा उम्मुक्कबालभावा विन्नयपरिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाव भविस्सइ।

तए णं तं सोमं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं विन्नयपरिणयमेत्तं जोव्वणगमणुप्पत्तं पडिकूविएणं सुक्केणं पडिरूवएणं नियगस्स भाइणेज्जस्स रट्ठकूडस्स भारियत्ताए दलइस्सइ।

सा णं तस्स भारिया भविस्सइ इट्ठा कन्ता जाव भण्डकरण्डगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया चेलपेडा इव सुसंपरिहिया रयणकरण्डगो विव सुसारक्खिया सुसंगोविया, मा णं सीयं [जाव] उण्हं···वाइया पित्तिया सम्भिया संन्निवाइया विविहा रोयातङ्का फुसन्तु।

[४६] तत्पश्चात् वह सोमा बाल्यावस्था से मुक्त होकर, सज्ञानदशापन्न होकर युवावस्था आने पर रूप, यौवन एवं लावण्य से अत्यन्त उत्तम एवं उत्कृष्ट शरीर वाली हो जाएगी।

तब माता-पिता उस सोमा बालिका को बाल्यावस्था को पार कर विषय-सुख से अभिज्ञ एवं यौवनावस्था में प्रविष्ट जानकर यथायोग्य गृहस्थोपयोगी उपकरणों, धन-आभूषणों और संपत्ति के साथ अपने भानजे राष्ट्रकूट को भार्या के रूप में देंगे अर्थात् राष्ट्रकूट से उसका विवाह कर देंगे।

वह सोमा उस राष्ट्रकूट की इष्ट, कान्त (वल्लभा) भार्या होगी यावत् वह सोमा की भाण्डकरण्डक (आभूषणों की पेटी) के समान, तेलकेल्ला (तैलपात्र या इत्रदान) के समान यत्नपूर्वक सुरक्षा करेगा, वस्त्रों के पिटारे के समान उसकी भलीभांति देखभाल करेगा, रत्नकरण्डक के समान उसकी सुरक्षा का ध्यान रखेगा और उसको शीत, उष्ण, वात, पित्त, कफ एवं सन्निपातजन्य रोग और आतंक स्पर्श न कर सकें, इस प्रकार से सर्वदा चेष्टा करता रहेगा।

सोमा द्वारा बहुसंतान-प्रसव

४७. तए णं सा सोमा माहणी रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी संवच्छरे संवच्छरे जुयलगं पयायमाणी, सोलसेहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयाइ। तए णं सोमा माहणी तेहिं बहूहिं दारगेहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य डिम्भएहि य डिम्भियाहि य अप्पेगइ-एहिं उत्ताण-सेज्जएहि य अप्पेगइएहिं थणियाएहिं य, अप्पेगइएहिं पीहगपाएहिं अप्पेगइएहिं परंगण-एहिं, अप्पेगइएहिं परक्कममाणेहिं अप्पेगइएहिं पक्खोलणएहिं अप्पेगइएहिं थणं मग्गमाणेहिं, अप्पेगइएहिं खीरं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं खेल्लणयं मग्गमाणेहिं, अप्पेगइएहिं खज्जगं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं कूरं मग्गमाणेहिं, पाणियं मग्गमाणेहिं हसमाणेहिं रूसमाणेहिं अक्कोसमाणेहिं अक्कुस्समाणेहिं हणमाणेहिं विप्पलायमाणेहिं, अणुगम्ममाणेहिं रोवमाणेहिं कन्दमाणेहिं विलवमाणेहिं कूवमाणेहिं उक्कूवमाणेहिं निद्धायमाणेहिं पलंबमाणेहिं दहमाणेहिं दंसमाणेहिं वममाणेहिं छेरमाणेहिं मुत्तमाणेहिं मुत्तपुरीसवमिय-सुलित्तोवलित्ता मइलवसणपुच्चडा जाव असुइबीभच्छा परमदुग्गन्धा नो संचाएइ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउ-लाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी विहरित्तए।

[४७] तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगती हुई प्रत्येक वर्ष एक युगल संतान को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव करेगी। तब वह सोमा ब्राह्मणी उन बहुत से दारक-दारिकाओं, कुमार-कुमारिकाओं और बच्चे-बच्चियो में से किसी के उत्तान (उन्मुख— सिर की ओर पैर करके) शयन करने से—सोने से, किसी के चीखने-चिल्लाने से, किसी को जन्म-घूंटी आदि दवाई पिलाने से, किसी के घुटने-घुटने चलने से, किसी के पैरों पर खड़े होने में प्रवृत्त होने से, किसी के चलते-चलते गिर जाने से, किसी के स्तन को टटोलने से, किसी के दूध मांगने से, किसी के खिलौना मांगने से, किसी के खाजा आदि मिठाई मांगने से, किसी के कूर (भात) मांगने से, इसी प्रकार किसी के पानी मांगने से, किसी के हंसने से, रूठ जाने से, गुस्सा करने से—कटु वचन कहने से, झगड़ने से, आपस में मारपीट करने से, मारकर भाग जाने से, किसी के उसका पीछा करने से, किसी के रोने से, किसी के आक्रंदन करने से, विलाप करने से, छीना-झपटी करने से, किसी के कराहने से, किसी के ऊंघने से, किसी के प्रलाप करने से, किसी के पेशाब आदि करने से, किसी के उलटी—के कर देने से, किसी के छेरने (चिरकने) से, किसी के मूतने से, सदैव उन बच्चों के मल-मूत्र वमन से लिपटे शरीर वाली तथा मैले-कुचैले कपड़ों से कांतिहीन यावत् अशुचि से सनी हुई होने से, देखने में बीभत्स और अत्यन्त दुर्गन्धित होने के कारण राष्ट्रकूट के साथ विपुल कामभोगों को भोगने में समर्थ नहीं हो सकेगी।

सोमा का विचार

४८. तए णं तीसे सोमाए माहणीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेहिं बहूहिं दारगेहि य [जाव] डिम्भियाहि य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहि य [जाव] अप्पेगइएहिं मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं दुज्जम्मएहिं हयविप्पहयभग्गेहिं एगप्पहारपडिएहिं जाणं मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता जाव परमदुब्भिगन्धा नो

संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं जाव भुञ्जमाणी विहरित्तए । तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ [जाव] जीवियफले जाओ णं वञ्झाओ अवियाउरीओ जाणुकोप्परमायाओ सुरभिसुगन्धगन्धियाओ विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणीओ विहरन्ति । अहं णं अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव विहरित्तए ।'

[४८] ऐसी अवस्था में किसी समय रात को पिछले प्रहर में अपनी और अपने कुटुम्ब की स्थिति पर विचार करते हुए उस सोमा ब्राह्मणी को इस प्रकार का विचार उत्पन्न होगा—'मैं इन बहुत से अभागे, दुःखदायी एक साथ थोड़े-थोड़े दिनों के बाद उत्पन्न हुए छोटे-बड़े और नवजात बहुत से दारक-दारिकाओं यावत् बच्चे-बच्चियों में से कोई सिर की ओर पैर करके सोने यावत् पेशाब आदि करने से, उनके मल-मूत्र-वमन आदि से लिपटी रहने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धमयी होने से राष्ट्रकूट के साथ भोगों का अनुभव नहीं कर पा रही हूँ । वे माताएँ धन्य हैं यावत् उन्होंने मनुष्यजन्म और जीवन का सुफल पाया है, जो बंध्या हैं, प्रजननशीला नहीं होने से जानु-कूर्पर की माता होकर सुरभि सुगंध से सुवासित होकर विपुल मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगती हुई समय बिताती हैं । लेकिन मैं ऐसी अधन्य, पुण्यहीन, निर्भागी हूँ कि राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को नहीं भोग पाती हूँ ।

सुव्रता आर्या का आगमन

४९. तेणं कालेणं तेणं समयेणं सुव्वयाओ नाम अज्जाओ इरियासमियाओ जाव बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं ...... जेणेव विभेले संनिवेसे ... ... अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरन्ति ।

तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए विभेले संनिवेसे उच्चनीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे रट्ठकूडस्स गिहं अणुपविट्ठे । तए णं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण ४ पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

एवं खलु अहं अज्जाओ ! रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं जाव संवच्छरे संवच्छरे जुगलं पयामि, सोलसहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयाया । तए णं अहं तेहिं बहूहिं दारएहि य जाव डिम्भियाहि य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं जाव मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं जाव नो संचाएमि ...... विहरित्तए । तं इच्छामि णं अहं अज्जाओ ! तुम्हं अन्तिए धम्मं निसामेत्तए ।"

तए णं ताओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं [जाव] केवलिपन्नत्तं धम्मं परिकहेन्ति ।

[४९] सोमा ने जब ऐसा विचार किया कि उस काल और उसी समय ईर्या आदि समितिओं से युक्त यावत् बहुत-सी साध्वियों के साथ सुव्रता नाम की आर्याएँ पूर्वानुपूर्वी क्रम से गमन करती हुई उस विभेल सन्निवेश में आएँगी और अनगारोचित अवग्रह लेकर स्थित होंगी ।

तदनन्तर उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाड़ा (समुदाय) विभेल सन्निवेश के उच्च, सामान्य और मध्यम परिवारों में गृहसमुदानी भिक्षा के लिए घूमता हुआ राष्ट्रकूट के घर में प्रवेश करेगा । तब वह सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को आते देखकर हर्षित और संतुष्ट होगी । संतुष्ट होकर

शीघ्र ही अपने आसन से उठेगी, उठकर सात-आठ डग उनके सामने आएगी। आकर वंदन-नमस्कार करेगी और फिर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन से प्रतिलाभित करके इस प्रकार कहेगी—'आर्याओ ! राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए यावत् मैंने प्रतिवर्ष बालक-युगलों (दो बालकों) को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव किया है। जिससे मैं उन दुर्जन्मा बहुत से बालक-बालिकाओं यावत् बच्चे-बच्चियों में से किसी के उत्तान शयन यावत् मूत्र त्यागने से उन बच्चों के मल-मूत्र-वमन आदि से सनी होने के कारण अत्यन्त दुर्गन्धित शरीर वाली हो राष्ट्रकूट के साथ भोगोपभोग नहीं भोग पाती हूँ। आर्याओ ! मैं आप से धर्म सुनना चाहती हूँ।

सोमा के इस निवेदन को सुनकर वे आर्याएँ सोमा ब्राह्मणी को विविध प्रकार के यावत् केवलिप्ररूपित धर्म का उपदेश सुनाएंगी।

सोमा का श्रावकधर्म-ग्रहण

५०. तए णं सा सोमा माहणी तासिं अज्जाणं अन्तिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ० जाव हियया ताओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं, अज्जाओ, निग्गन्थं पावयणं, जाव अब्भुट्ठेमि णं अज्जाओ ! निग्गन्थं पावयणं, एवमेयं अज्जाओ ! जाव से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं, अज्जाओ, रट्ठकूडं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अन्तिए [जाव] मुण्डा पव्वयामि।"

"अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबन्धं.......।"

तए णं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

[५०] तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी उन आर्यिकाओं से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय में धारण कर हर्षित और संतुष्ट—यावत् विकसितहृदयपूर्वक उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार करेगी। वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहेगी—हे आर्याओ ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ यावत् उसे अंगीकार करने के लिए उद्यत हूँ। आर्याओ ! निर्ग्रन्थप्रवचन इसी प्रकार का है यावत् जैसा आपने प्रतिपादन किया है। किन्तु मैं राष्ट्रकूट से पूछूंगी। तत्पश्चात् आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर प्रव्रजित होऊंगी।

इस पर आर्याओं ने सोमा ब्राह्मणी से कहा—देवानुप्रियो ! जैसे सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

इसके बाद सोमा ब्राह्मणी उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार करेगी और वंदन-नमस्कार करके विदा करेगी।

सोमा का राष्ट्रकूट से दीक्षा के लिए पूछना

५१. तए णं सा सोमा माहणी जेणेव रट्ठकूडे तेणेव उवागया करयल०.......एवं वयासी—"एवं खलु मए देवाणुप्पिया, अज्जाणं अन्तिए धम्मे निसन्ते। से वि य णं धम्मे इच्छिए [जाव] अभिरुइए। तए णं अहं, देवाणुप्पिया, तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया सुव्वयाणं अज्जाणं जाव पव्वइत्तए।'

तए णं से रट्ठकूडे सोमं माहणिं एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! इयाणिं मुण्डा

भवित्ता [जाव] पव्वयाहि । भुञ्जाहि ताव देवाणुप्पिए ! मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं, तम्रो पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तिए मण्डा [जाव] पव्वयाहि ।"

तए णं सा सोमा माहणी ण्हाया [जाव] सरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा साम्रो गिहाम्रो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता विभेलं संनिवेसं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाम्रो अज्जाम्रो वंदइ, नमंसइ, पज्जुवासइ ।

तए णं ताम्रो सुव्वयाम्रो अज्जाम्रो सोमाए माहणीए विचित्तं केवलिपन्नत्तं धम्मं परिकहेन्ति जहा जीवा बज्झन्ति । तए णं सा सोमा माहणी सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तिए [जाव] दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ । सुव्वयाम्रो अज्जाम्रो वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया । तए णं सा सोमा माहणी समणोवासिया जाया अभिगयजीवाजीवा उवलद्ध-पुण्णपावा आसवसंवरनिज्जरकिरियाहिगरणबंधमोक्खकुसला असहिज्जा देवासुरनागसुवण्णरक्खस-किंनरकिंपुरिसगरुलगन्धव्वमहोरगाईहिं देवगणेहिं निग्गन्थाम्रो पावयणाम्रो अणइक्कमणिज्जा निग्गंथे पावयणे निस्संकिया निक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अहिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिञ्जपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे, ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तन्तेउरघरप्पवेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपाले-माणा समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पीढफलगसेज्जासंथारेणं वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुञ्छणेणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणा पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहि य अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं ताम्रो सुव्वयाम्रो अज्जाम्रो अन्नया कयाइ विभेलाम्रो संनिवेसाम्रो पडिनिक्खमन्ति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति ।

[५१] तत्पश्चात् वह सोमा ब्राह्मणी राष्ट्रकूट के निकट जाकर दोनों हाथ जोड़ आवर्त-पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहेगी—देवानुप्रिय ! मैंने आर्याओं से धर्मश्रवण किया है और वह धर्म मुझे इच्छित—प्रिय है यावत् रुचिकर लगा है। इसलिए देवानुप्रिय ! आपकी अनुमति लेकर मैं सुव्रता आर्या से प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ ।

तब राष्ट्रकूट सोमा ब्राह्मणी से कहेगा—देवानुप्रिये ! अभी तुम मुंडित होकर यावत् घर छोड़कर प्रव्रजित मत होओ किन्तु देवानुप्रिये । अभी तुम मेरे साथ विपुल कामभोगों का उपभोग करो और भुक्तभोगी होने के पश्चात् सुव्रता आर्या के पास मुंडित होकर यावत् गृहत्याग कर प्रव्रजित होना ।

राष्ट्रकूट के इस सुझाव को मानने के पश्चात् सोमा ब्राह्मणी स्नान कर, कौतुक मंगल प्रायश्चित्त कर यावत् आभरण-अलंकारों से अलंकृत होकर दासियों के समूह से घिरी हुई अपने घर से निकलेगी । निकलकर विभेल सन्निवेश के मध्यभाग को पार करती हुई सुव्रता आर्याओं के उपाश्रय में आएगी । आकर सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करेगी ।

तत्पश्चात् वे सुव्रता आर्या उस सोमा ब्राह्मणी को 'कर्म से जीव बद्ध होते हैं—संसार में परिभ्रमण करते हैं'[1] इत्यादिरूप विचित्र केवलिप्ररूपित धर्मोपदेश देंगी। तब वह सोमा ब्राह्मणी उन सुव्रता आर्या से बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करेगी और फिर सुव्रता आर्या को वंदन-नमस्कार करेगी। वंदन-नमस्कार करके जिस दिशा से आई थी वापिस उसी ओर लौट जाएगी।

तत्पश्चात् सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका (श्राविका) हो जाएगी। तब वह जीव-अजीव पदार्थों के स्वरूप की ज्ञाता, पुण्य-पाप के भेद की जानकार, आस्रव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण (सावद्य प्रवृत्ति करने के मूल कारण) तथा बंध-मोक्ष के स्वरूप को समझने में निष्णात—कुशल, परतीर्थियों के कुतर्कों का खण्डन करने में स्वयं समर्थ (दूसरों की सहायता की अपेक्षा न रखने वाली) होगी। देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवता भी उसे निर्ग्रन्थप्रवचन से विचलित नही कर सकेंगे। निर्ग्रन्थप्रवचन पर शंका आदि अविचारों से रहित श्रद्धा करेगी। आत्मोत्थान के सिवाय अन्य कार्यों में उसकी आकांक्षा-अभिलाषा नहीं रहेगी अथवा अन्य मतों के प्रति उसका लगाव नहीं रहेगा। धार्मिक-आध्यात्मिक सिद्धान्तों के आशय के प्रति उसे संशय नहीं रहेगा। लब्धार्थ (गुरुजनों से यथार्थ तत्त्व का बोध प्राप्त करना) गृहीतार्थ, विनिश्चितार्थ (निश्चित रूप से अर्थ को आत्मसात् करना) होने से उसकी अस्थि और मज्जा तक अर्थात् रग-रग धर्मानुराग से अनुरंजित (व्याप्त) हो जाएगी। इसीलिए वह दूसरों को संबोधित करते हुए उद्घोषणा करेगी—आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ—प्रयोजनभूत है, परमार्थ है, इसके सिवाय अन्यतीर्थिकों का कथन कुगति-प्रापक होने से अनर्थ—अप्रयोजनभूत है। असद् विचारों से विहीन होने के कारण उसका हृदय स्फटिक के समान निर्मल होगा, निर्ग्रन्थ श्रमण भिक्षा के लिए सुगमता से प्रवेश कर सकें, अत: उसके घर का द्वार सर्वदा खुला होगा। सभी के घरों, यहाँ तक कि अन्त:पुर तक में उसका प्रवेश शंकारहित होने से प्रीतिजनक होगा। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी को परिपूर्ण पौषधव्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते हुए श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय-निर्दोष आहार, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक-आसन, वस्त्र, पात्र, कंबल रजोहरण, औषध, भेषज से प्रतिलाभित करती हुई एवं यथाविधि ग्रहण किए हुए विविध प्रकार के शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवासों से आत्मा को भावित करती हुई रहेगी।

तत्पश्चात् वे सुव्रता आर्या किसी समय विभेल संनिवेश से निकलकर—विहारकर बाह्य जनपदों में विचरण करेंगी।

विवेचन—पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत, ये दोनों मिलकर श्रावक धर्म के बारह प्रकार हैं। इनमें से अणुव्रत श्रावक के मूल व्रत हैं और शिक्षाव्रत उनको पुष्ट बनाने वाले रक्षक व्रत हैं। इनकी सहायता, अभ्यास आदि से अणुव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन होता है और उनमें स्थिरता आती है।

अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, स्वदार-संतोषव्रत और परिग्रहपरिमाणव्रत, ये पांच अणुव्रत हैं। इनको अणुव्रत इसलिए कहते हैं कि हिंसा आदि पाप कार्यों और सावद्ययोगों का आंशिक त्याग किया जाता है।

---

१. धर्मोपदेश के विस्तृत वर्णन के लिए औपपातिकसूत्र (श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर) पृ. १०८ देखिए।

सात शिक्षाव्रतों के दो प्रकार हैं—गुणव्रत और शिक्षाव्रत। गुणव्रत तीन और शिक्षाव्रत चार हैं। इन दोनों के अभ्यास एवं साधना से अणुव्रतों के गुणात्मक विकास में सहायता मिलती है। अणुव्रत आदि रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म की सांगोपांग जानकारी के लिए उपासकदशांगसूत्र का अध्ययन करना चाहिए।

सोमा की प्रव्रज्या

५२. तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं ...... जाव विहरंति। तए णं सा सोमा माहणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठा ण्हाया तहेव निग्गया, जाव वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता धम्मं सोच्चा [जाव] नवरं "रट्ठकूडं आपुच्छामि, तए णं पव्वयामि।"

"अहासुहं ....।"

तए णं सा सोमा माहणी सुव्वयं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सुव्वयाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव रट्ठकूडे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० तहेव आपुच्छइ [जाव] पव्वइत्तए।

"अहासुहं, देवाणुप्पिए! मा पडिबन्धं ....।"

तए णं रट्ठकूडे विउलं असणं, तहेव जाव पुव्वभवे सुभद्दा, [जाव] अज्जा जाया इरियासमिया [जाव] गुत्तबम्भयारिणी।

[५२] इसके बाद वे सुव्रता आर्या किसी समय पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करती हुई, ग्रामानुग्राम में विचरण करती हुई यावत् पुनः विभेल संनिवेश में आएंगी। तब वह सोमा ब्राह्मणी इस संवाद को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हो, स्नान कर तथा सभी प्रकार के अलंकारों से विभूषित हो पूर्व की तरह दासियों सहित दर्शनार्थ निकलेगी यावत् वंदन-नमस्कार करेगी। वंदन-नमस्कार करके धर्म श्रवण कर यावत् सुव्रता आर्या से कहेगी—मैं राष्ट्रकूट से पूछकर आपके पास मुंडित होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ।

तब सुव्रता आर्या उससे कहेंगी—देवानुप्रिये! तुम्हें जिसमें सुख हो वैसा करो, किन्तु शुभ कार्य में विलम्ब मत करो।

इसके बाद सोमा माहणी उन सुव्रता आर्याओं को वंदन-नमस्कार करके उनके पास से निकलेगी और जहाँ अपना घर और उसमें जहाँ राष्ट्रकूट होगा, वहाँ आएगी। आकर दोनों हाथ जोड़कर पूर्व के समान पूछेगी कि आपकी आज्ञा लेकर अनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ।

इस बात को सुनकर राष्ट्रकूट कहेगा—देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो किन्तु इस कार्य में प्रमाद—विलम्ब मत करो।

इसके पश्चात् राष्ट्रकूट विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम चार प्रकार के भोजन बनवाकर अपने मित्र, जाति-बांधव, स्वजन, संबन्धियों को आमंत्रित करेगा। उनका सत्कार सन्मान करेगा

इत्यादि, जिस प्रकार पूर्वभव में सुभद्रा प्रव्रजित हुई थी, उसी प्रकार यहाँ भी वह प्रव्रजित होगी और आर्या होकर ईर्यासमिति आदि समितियों एवं गुप्तियों से युक्त होकर यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी होगी।

५३. तए णं सा सोमा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूइं छट्ठमट्ठमदसमदुवालस जाव भावेमाणी बहूहिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो सामाणियदेवत्ताए उववज्जिहिइ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं सोमस्स वि देवस्स दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

[५३] तदनन्तर वह सोमा आर्या सुव्रता आर्या से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करेगी। अध्ययन करके विविध प्रकार के बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश-भक्त आदि विचित्र तपःकर्म से आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेगी। इसके बाद मासिक संलेखना से आत्मा शुद्ध कर, अनशन द्वारा साठ भोजनों को छोड़कर, आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक समाधिस्थ हो, मरणसमय के आने पर मरण करके देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगी।

वहाँ किसी-किसी देव की दो सागरोपम की स्थिति होती है। उस सोम देव की भी दो सागरोपम की स्थिति होगी।

५४. 'से णं, भन्ते, सोमे देवे तओ देवलोगाओ आउक्खएणं, जाव चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?'

गोयमा, महाविदेहे वासे [जाव] अन्तं काहिसि।

[५४] इस कथानक को सुनने के पश्चात् गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—'भदन्त! वह सोम देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर देवलोक से च्यवकर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा?'

भगवान् ने कहा—'हे गौतम! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अंत करेगा।'

५५. निक्खेवो—तं एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं भगवया पुप्फियाणं चउत्थस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—'आयुष्मन् जम्बू! इस प्रकार से श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव निरूपण किया है। ऐसा मैं कहता हूँ।'

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पुष्पिका : पंचम अध्ययन

पूर्णभद्र देव

उत्क्षेप

५६. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव पुप्फियाणं चउत्थस्स अज्झयणस्स जाव अयमट्ठे पन्नत्ते, पंचमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

[५३] भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पिका नामक उपांग के चतुर्थ अध्ययन का यह भाव प्रतिपादन किया है तो भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के पंचम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?—जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा।

पूर्णभद्र देव का नाट्य-प्रदर्शन

५७. एवं खलु, जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समयेणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसरिए। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुण्णभद्दे देवे सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे सभाए सुहम्माए पुण्णभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, जहा सूरियाभो [जाव] बत्तीसइविहं नट्टविहिं उववंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेवदिसिं पडिगए। कूडागारसाला। पुव्वभवपुच्छा।

'एवं खलु गोयमा' तेणं कालेणं तेणं समयेणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे मणिवइया नामं नयरी होत्था रिद्ध०। चन्दो राया। ताराइण्णे चेइए। तत्थ णं मणिवइयाए नयरीए पुण्णभद्दे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं थेरा भगवन्तो जाइसंपन्ना [जाव] जीवियासमरणभयविप्पमुक्का बहुस्सुया बहुपरिवारा पुव्वाणुपुव्विं [जाव] समोसढा। परिसा निग्गया।

[५७] प्रत्युत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—आयुष्मन् जम्बू ! वह इस प्रकार है—

उस काल और उस समय राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। स्वामी (भगवान् महावीर) पधारे। परिषद् दर्शन करने निकली।

उस काल और उस समय (भगवान् महावीर के राजगृह नगर में पदार्पण होने के समय) सौधर्मकल्प में पूर्णभद्र विमान की सुधर्मा सभा में पूर्णभद्र सिंहासन पर आसीन होकर पूर्णभद्र देव सूर्याभ देव के समान चार हजार सामानिक देवों आदि के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचर रहा था। उसने अवधिज्ञान से भगवान् को देखा। भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ, वन्दन

नमस्कार करके यावत् बत्तीस प्रकार की नृत्यविधियों को प्रदर्शित कर जिस दिशा से आया था, वापिस उसी दिशा में लौट गया।

तब गौतम स्वामी ने भगवान् से उस देव की दिव्य देव-ऋद्धि आदि के अंतर्धान होने के विषय में पूछा। भगवान् ने कूटाकारशाला के दृष्टान्त द्वारा समाधान किया।

तत्पश्चात् उसके पूर्वभव के विषय में गौतम द्वारा पूछने पर भगवान् ने बताया—

गौतम! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में धन वैभव इत्यादि से समृद्ध—संपन्न मणिपदिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के राजा का नाम चन्द्र था और ताराकीर्ण नाम का उद्यान था। उस मणिपदिका नगरी में पूर्णभद्र नाम का एक सद्गृहस्थ रहता था, जो धन-धान्य इत्यादि से संपन्न था।

उस काल और उस समय जाति एवं कुल से संपन्न यावत् जीवन की आकांक्षा और मरण के भय से रहित, बहुश्रुत स्थविर भगवन्त बहुत बड़े अन्तेवासीपरिवार के साथ पूर्वानुपूर्वी से विचरण करते हुए समवसृत हुए—मणिपदिका नगरी में पधारे। जनसमूह उनकी धर्मदेशना श्रवण करने निकला।

५८. तए णं से पुण्णभद्दे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठ० [जाव] जहा पण्णत्तीए गङ्गदत्ते, तहेव निग्गच्छइ, [जाव] निक्खन्तो [जाव] गुत्तबम्भयारी।

तए णं से पुण्णभद्दे अणगारे भगवन्ताणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाई अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम [जाव] भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे पुण्णभद्दे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि [जाव] भासामणपज्जत्तीए।

एवं खलु, गोयमा! पुण्णभद्देणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी [जाव] अभिसमन्नागया।

'पुण्णभद्दस्स णं भन्ते! देवस्स केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता?'

'गोयमा, दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।'

'पुण्णभद्दे णं भन्ते! देवे ताओ देवलोगाओ [जाव] कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?'

'गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ [जाव] अन्तं काहिइ।'

[५८] पूर्णभद्र गाथापति उन स्थविरों के आगमन का वृत्तान्त जानकर हृष्ट-तुष्ट हुआ इत्यादि यावत् भगवती-सूत्रोक्त गंगदत्त[1] के समान दर्शन के लिए गया यावत् उनके पास प्रव्रजित हुआ यावत् ईर्यासमिति आदि से युक्त गुप्तब्रह्मचारी अनगार हो गया।

तत्पश्चात् पूर्णभद्र अनगार ने उन स्थविर भगवन्तो से सामायिक से प्रारंभ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टमभक्त आदि तपःकर्म से आत्मा को परिशोधित करके बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया। पालन करके मासिक सलेखनापूर्वक साठ

१. गंगदत्त के वर्णन के लिए देखिए भगवतीसूत्र शतक १६ उद्देशक-५।

भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि प्राप्त कर मरणकाल आने पर काल करके सौधर्म कल्प के पूर्णभद्र विमान की उपपातसभा में देवशैया पर देव रूप से उत्पन्न हुआ। यावत् भाषा-मन पर्याप्ति से पर्याप्त भाव को प्राप्त किया।

इस प्रकार से हे गौतम ! पूर्णभद्र देव ने वह दिव्य देव-ऋद्धि प्राप्त यावत् अधिगत की है।

भदन्त ! पूर्णभद्र देव की कितने काल की स्थिति बताई है ? गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा।

भगवान् ने उत्तर दिया—'गौतम ! उसकी दो सागरोपम की स्थिति है।'

गौतम ने पुनः पूछा—'भगवन् ! वह पूर्णभद्र देव उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

भगवान् ने कहा—'गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

५९. निक्खेवओ—एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं पंचमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

[५९] आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् नें पुष्पिका उपांग के पांचवे अध्ययन का यह निरूपण किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ पंचम अध्ययन समाप्त ॥

षष्ठ अध्ययन

मणिभद्र देव

उत्क्षेप

६०. उक्खेवओ—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव पुप्फियाणं पंचमस्स अज्झयणस्स जाव अयमट्ठे पन्नत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं के अट्ठेपन्नत्ते ?

'एवं खलु जम्बू !'

[६०] जम्बू अनगार ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—भगवन् ! यदि श्रमण यावत् निर्वाण-प्राप्त भगवान् ने पुष्पिका के पंचम अध्ययन का यह आशय कहा है तो भगवन् ! मुक्ति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका के षष्ठ (छठे) अध्ययन का क्या आशय प्रतिपादन किया है ?

आर्य सुधर्मा स्वामी ने उत्तर में कहा—आयुष्मन् जम्बू ! वह इस प्रकार है—

६१. एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया । सामी समोसरिए ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मणिभद्दे देवे सभाए सुहम्माए माणिभद्दंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहा पुण्णभद्दो तहेव आगमणं, नट्टविही, पुव्वभवपुच्छा ।

मणिवई नयरी, माणिभद्दे गाहावई, थेराणं अन्तिए पव्वज्जा, एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, बहूहिं वासाइं परियाओ, मासिया संलेहणा, सट्ठि भत्ताइं । माणिभद्दे विमाणे उववाओ, दो सागरोवमाइं ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

।। तइओ वग्गो समत्तो ।।

[६१] उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था । वहाँ गुणशिलक चैत्य था । वहाँ का राजा श्रेणिक था । एक बार वहाँ महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ ।

उस काल और उस समय मणिभद्र देव सुधर्मा सभा के मणिभद्र सिंहासन पर बैठकर चार हजार सामानिक देव आदि सहित दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए विचर रहा था ।

पूर्णभद्र देव के समान वह भी भगवान् के समवसरण में आया और उसी प्रकार नृत्य-विधियाँ दिखाकर वापिस लौट गया ।

मणिभद्र देव के लौट जाने के पश्चात् गौतम स्वामी ने उसको देव-ऋद्धि आदि प्राप्त होने एवं पूर्वभव के विषय में पूछा ।

भगवान् ने उत्तर दिया—

उस काल और उस समय मणिपदिका नाम की नगरी थी । उसमें मणिभद्र नाम का

गाथापति रहता था। उसने स्थविरों के समीप प्रव्रज्या अंगीकार की। प्रव्रज्या अंगीकार करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन किया और मासिक संलेखना की। अनशन द्वारा साठ भोजनों का छेदन कर (त्याग कर) पापस्थानों का आलोचन—प्रतिक्रमण करके मरण का अवसर प्राप्त होने पर समाधिपूर्वक मरण करके मणिभद्र विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी दो सागरोपम की स्थिति है। अन्त में उस देवलोक से च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा और सर्व दु:खों का अन्त करेगा।

६२. **निक्षेप—तं एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पुप्फियाणं छट्ठस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।**

[६२] सुधर्मा स्वामी ने कहा—आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् महावीर भगवान् ने पुष्पिका के छठे अध्ययन का यह भाव प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

७ से १० अध्ययन

६३. एवं दत्ते ७, सिवे ८, बले ९, अणाढिए १०, सव्वे जहा पुण्णभद्दे देवे। सव्वेसिं दो सागरोवमाइं ठिई। विमाणा देवसरिसनामा। पुव्वभवे दत्ते चंदणाए, सिवे मिहिलाए, बले हत्थिणपुरे नयरे, अणाढिए काकंदिए। चेइयाइं जहा संगहणीए।

॥ तइओ वग्गो समत्तो ॥

[६३] इसी प्रकार ७ दत्त, ८ शिव, ९ बल और १० अनादृत, इन सभी देवों का वर्णन पूर्णभद्र देव के समान जानना चाहिए। सभी की दो-दो सागरोपम की स्थिति है। इन देवों के नाम के समान ही इनके विमानों के नाम है।

पूर्वभव में दत्त चन्दना नगरी में, शिव मिथिला नगरी में, बल हस्तिनापुर नगर में, अनादृत काकन्दी नगरी में जन्मे थे।

संग्रहणी गाथा के अनुसार उन नगरियों के चैत्यों के नाम जान लेना चाहिए।

इस प्रकार पुष्पिका उपांग का सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ और दसवाँ अध्ययन समाप्त हुआ।

॥ पुष्पिका नामक तृतीय वर्ग समाप्त ॥

४

पुप्फचूलियाओ : पुष्पचूलिका

प्रथम अध्ययन

१. उक्खेवओ—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं तच्चस्स पुप्फियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स उवङ्गाणं पुप्फचूलियाणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

[१] [जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—] हे भदन्त ! यदि मोक्षप्राप्त यावत् श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पिका नामक तृतीय उपांग का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया है तो पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ उपांग का क्या अर्थ—आशय कहा है ?

२. एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं चउत्थस्स णं पुप्फचूलियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा—सिरि-हिरि-धिइ-कित्तीओ, बुद्धी-लच्छी य होइ बोद्धव्वा। इलादेवी सुरादेवी रसदेवी गंधदेवी य।

[२] [सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—] हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने चतुर्थ उपांग पुष्पचूलिका के दस अध्ययन प्रतिपादित किए है, वे इस प्रकार है—

१ श्रीदेवी २ ह्री देवी ३ धृति देवी ४ कीर्ति देवी ५ बुद्धि देवी ६ लक्ष्मी देवी ७ इला देवी ८ सुरादेवी ९ रसदेवी १० गन्ध देवी।

३. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं चउत्थस्स वग्गस्स पुप्फचूलियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता, पढमस्स णं भन्ते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?

[३] हे भदन्त ! यदि मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ उपांग के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन का क्या आशय बताया है ?

४. तए णं से सुहम्मे जम्बू अणगारं एवं वयासी—

इसके उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य श्री जम्बू अनगार से इस प्रकार कहा—

५. एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया। सामी समोसढे; परिसा निग्गया।

तेणां कलेणं तेणं समएणं सिरिदेवी सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए

सिरिंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं, जहा बहुपुत्तिया, [जाव] नट्टविहिं उववंसित्ता पडिगया। नवरं दारियाओ नत्थि। पुव्वभवपुच्छा।

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समयेणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, जियसत्तू राया। तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणो नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स पिया नामं भारिया होत्था सोमाला। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया पियाए गाहावयणीए अत्तया भूया नामं दारिया होत्था, वुड्ढा वुड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी वरगपरिवज्जिया यावि होत्था।

[५] हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशिलक नामका चैत्य था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। धर्मदेशना श्रवण करने के लिए परिषद् निकली।

उस काल और उस समय श्री देवी सौधर्मकल्प में श्री अवतंसक नामक विमान की सुधर्मा सभा में बहुपुत्रिका देवी के समान चार हजार सामानिक देवियों एवं चार महत्तरिकाओं के साथ श्रीसिंहासन पर बैठी हुई थी (उसने अवधिज्ञान से भगवान् को राजगृह में समवसृत देखा। भक्तिवश वह वहाँ आई और) यावत् नृत्य-विधि को प्रदर्शित कर वापिस लौट गई। यहाँ इतना विशेष है कि श्रीदेवी ने अपनी नृत्यविधि में बालिकाओं की विकुर्वणा नहीं की थी।

श्री देवी के वापिस लौट जाने पर गौतम स्वामी ने भगवान् से उसके पूर्व भव के विषय में पूछा। भगवान् ने उत्तर दिया—

हे गौतम ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशिलक नाम का चैत्य था, वहाँ के राजा का नाम जितशत्रु था। उस राजगृह नगर में धनाढ्य सुदर्शन नाम का गाथापति निवास करता था। उस सुदर्शन गाथापति (सद्गृहस्थ) की सुकोमल अंगोपांग, सुन्दर शरीर वाली आदि विशेषणों से विशिष्ट प्रिया नाम की भार्या थी। उस सुदर्शन गाथापति की पुत्री, प्रिया गाथापत्नी की आत्मजा भूता नाम की दारिका—लड़की थी। जो वृद्धशरीरा और वृद्धकुमारी, जीर्ण शरीर वाली और जीर्णकुमारी, शिथिल नितम्ब और स्तनवाली तथा वरविहीन थी।

भूता का दर्शनार्थ गमन

६. तेणं कालेणं तेणं समयेणं पासे अरहा पुरिसादाणीए [जाव] नवरयणीए। वण्णओ सोच्चेव। समोसरणं परिसा निग्गया।

तए णं सा भूया दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"एवं खलु, अम्मताओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे [जाव] गणपरिवुडे विहरइ। तं इच्छामि णं अम्मताओ, तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवन्दिया गमित्तए।"

'अहासुहं—देवाणुप्पिए, मा पडिबन्धं……।'

तए णं सा भूया दारिया ण्हाया [जाव] सरीरा चेडीचक्कवालपरिकिण्णा साम्रो गिहाम्रो पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा ।

तए णं सा भूया दारिया नियपरिवारपरिवुडा रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थयरातिसए पासइ, पासित्ता धम्मियाम्रो जाणप्पवराम्रो पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडीचक्कवालपरिकिण्णा जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो [जाव] पज्जुवासइ ।

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए भूयाए दारियाए य महइ० .....। धम्मकहा। धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ० वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—'सद्दहामि णं भन्ते ! निग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि णं भन्ते ! निग्गंथं पावयणं, से जहेयं तुब्भे वयह, जं नवरं, भन्ते ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं [जाव] पव्वइत्तए ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिए ।'

[९] उस काल और उस समय में पुरुषादानीय एवं नौ हाथ की अवगाहना वाले इत्यादि रूप से वर्णनीय अर्हत् पार्श्व प्रभु पधारे। दर्शन करने के लिए परिषद् निकली।

तब वह भूता दारिका इस संवाद को सुनकर हर्षित और संतुष्ट हुई और माता-पिता के पास गई। वहाँ जाकर उसने उनकी अनुमति—आज्ञा मांगी—'हे मात-तात ! पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् अनुक्रम से विचरण करते हुए यावत् शिष्यगण से परिवृत होकर विराजमान हैं। अतएव हे मात-तात ! आपकी आज्ञा-अनुमति लेकर मैं पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की पादवंदना के लिए जाना चाहती हूँ।

माता-पिता ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।'

तत्पश्चात् भूता दारिका ने स्नान किया यावत् शरीर को अलंकृत करके दासियों के समूह के साथ अपने घर से निकली। निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला (सभाभवन—बैठक) थी, वहाँ आई और आकर उत्तम धार्मिक यान—रथ पर आसीन हुई।

इसके बाद वह भूता दारिका अपने स्वजन-परिवार को साथ लेकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से निकली। निकलकर गुणशिलक चैत्य के समीप आई और आकर तीर्थंकरों के छत्रादि अतिशय देखे (देखकर धार्मिक रथ से नीचे उतरकर दासी-समूह के साथ जहाँ पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु विराजमान थे, वहाँ आई। आकर उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वंदना की यावत् पर्युपासना करने लगी।

तदनन्तर पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व प्रभु ने उस भूता बालिका और अति विशाल परिषद् को धर्मदेशना सुनाई। धर्मदेशना सुनकर और उसे हृदयंगम करके वह हृष्ट-तुष्ट हुई। फिर भूता

दारिका ने वंदन-नमस्कार किया और इस प्रकार उद्‌गार प्रकट किए—'भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ—श्रद्धालु हूँ—यावत् निर्ग्रन्थ-प्रवचन को अंगीकार करने के लिए तत्पर हूँ। वह वैसा ही है, जैसा आपने विवेचन किया है, किन्तु हे भदन्त ! माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर लूँ, तब मैं यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ।'

अर्हत् प्रभु ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिये ! इच्छानुसार करो।'

भूता का प्रव्रज्याग्रहण

तए णं सा भूया दारिया तमेव धम्मियं जाणप्पवरं [जाव] दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागया। रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागया। रहाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो, तेणेव उवागया। करयल०, जहा जमाली, आपुच्छइ।

'अहासुहं देवाणुप्पिए।'

तए णं से सुदंसणे गाहावई विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, मित्तनाइ० आमंतेइ आमंतित्ता जाव जिमियभुत्तुत्तरकाले सुईभूए निक्खमणमाणेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! भूयादारियाए पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता जाव पच्चप्पिणह।'

तए णं ते [जाव] पच्चप्पिणन्ति।

तए णं से सुदंसणे गाहावई भूयं दारियं ण्हायं विभूसियसरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मित्तनाइ० [जाव] रवेणं रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं, जेणेव गुणसिलए चेइए, तेणेव उवागए, छत्ताईए तित्थयराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता भूयं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ।

तए णं तं भूयं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए, तेणेव उवागए तिक्खुत्तो वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! भूया दारिया अम्हं एगा धूया, इट्ठा। एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा भीया [जाव] देवाणुप्पियाणं अन्तिए मुण्डा [जाव] पव्वयइ। तं एयं णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामो। पडिच्छन्तु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।"

"अहासुहं, देवाणुप्पिया।"

तए णं सा भूया दारिया पासेणं अरहया ... एवं वुत्ता समाणी हट्ठा, उत्तरपुरत्थिमं, सयमेव आभरणमल्लालंकारं उम्मुयइ, जहा देवाणन्दा, पुप्फचूलाणं अन्तिए [जाव] गुत्तबम्भयारिणी।

[७] इसके बाद वह भूता दारिका यावत् उसी धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ हुई। आरूढ होकर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आई और राजगृह नगर के मध्य भाग में होकर जहाँ अपना आवास स्थान— घर था, वहाँ आई। आकर रथ से नीचे उतर कर जहाँ माता-पिता थे उनके समीप

आई। आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् अंजलि करके जमालि की तरह[1] माता-पिता से आज्ञा मांगी। (अन्त में माता-पिता ने अपनी अनुमति देते हुए कहा—) देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो, तदनुकूल करो।

तदनन्तर सुदर्शन गाथापति ने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन बनवाया और मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमंत्रित किया यावत् भोजन करने के पश्चात् शुद्ध-स्वच्छ होकर अभिनिष्क्रमण कराने के लिए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, और बुलाकर उन्हें आज्ञा दी—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही दीक्षार्थिनी भूता दारिका के लिए सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाए ऐसी शिविका (पालकी) लाओ और लाकर यावत् कार्य होने की सूचना दो।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् आदेशानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तत्पश्चात् उस सुदर्शन गाथापति ने स्नान की हुई और आभूषणों से विभूषित शरीर वाली भूता दारिका को पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर आरूढ किया और वह मित्रों, जातिबांधवों आदि के साथ यावत् वाद्यघोषों पूर्वक राजगृह नगर के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ गुणशिलक चैत्य था, वहाँ आया और छत्रादि तीर्थंकरातिशयों को देखा। देखकर पालकी को रोका और उससे भूता दारिका को उतारा।

इसके बाद माता-पिता उस भूता दारिका को आगे करके जहाँ पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु विराजमान थे, वहाँ आए और तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया तथा इस प्रकार निवेदन किया—देवानुप्रिय ! यह भूता दारिका हमारी एकलौती पुत्री है। यह हमें इष्ट—प्रिय है। देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्विग्न-भयभीत होकर आप देवानुप्रिय के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित होना चाहती है। देवानुप्रिय ! हम इसे शिष्या-भिक्षा के रूप में आपको समर्पित करते हैं। आप देवानुप्रिय इस शिष्या-भिक्षा को स्वीकार करें।

अर्हत् पार्श्व प्रभु ने उत्तर दिया— 'देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो।'

तब उस भूता दारिका ने पार्श्व अर्हत् की अनुमति—स्वीकृति सुनकर हर्षित हो, उत्तर-पूर्व दिशा में जाकर स्वयं आभरण—अलंकार उतारे। यह वृत्तान्त देवानन्दा[2] के समान कह लेना चाहिए। अर्हत् प्रभु पार्श्व ने उसे प्रव्रजित किया और पुष्पचूलिका आर्या को शिष्या रूप में सौंप दिया। उसने पुष्पचूलिका आर्या से शिक्षा प्राप्त की यावत् वह गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई।

शरीरबकुशिका भूता

८. तए णं सा भूया अज्जा अन्नया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था। अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवइ, पाए धोवइ, एवं सीसं धोवइ, मुहं धोवइ थणगन्तराइं धोवइ, कक्खन्तराइं धोवइ, गुज्झन्तराइं धोवइ, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव पाणएणं अब्भुक्खेइ, तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।

---

१. भगवती सूत्र, श. ९ उ. ३३
२. भगवती सूत्र, श. ९ उ. ३३

तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ भूयं अज्जं एवं वयासी—'अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणीओ निग्गन्थीओ इरियासमियाओ [जाव] गुत्तबम्भचारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरबाओसियाणं होत्तए। तुमं च णं, देवाणुप्पिए, सरीरबाओसिया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवसि [जाव] निसीहियं चेएसि। तं णं तुमं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि' त्ति। सेसं जहा सुभद्दाए, जाव पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा भूया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छन्दमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवइ जाव चेएइ।

[८] कुछ काल के पश्चात् वह भूता आर्यिका शरीरबकुशिका हो गई। वह बारंबार हाथ धोती, पैर धोती, शिर धोती, मुख धोती, स्तानान्तर धोती, कांख धोती, गुह्यान्तर धोती और जहाँ कहीं भी खड़ी होती, सोती, बैठती अथवा स्वाध्याय करती उस-उस स्थान पर पहले पानी छिड़कती और उसके बाद खड़ी होती, सोती, बैठती या स्वाध्याय करती।

तब पुष्पचूलिका आर्या ने भूता आर्या को इस प्रकार समझाया—देवानुप्रिये! हम ईर्यासमिति से समित यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थ श्रमणी हैं। इसलिए हमें शरीरबकुशिका होना नहीं कल्पता है, किन्तु देवानुप्रिये! तुम शरीरबकुशिका होकर हाथ धोती हो यावत् पानी छिड़ककर बैठती यावत् स्वाध्याय करती हो। देवानुप्रिये! तुम इस स्थान—कार्यप्रवृत्ति की आलोचना करो। इत्यादि शेष वर्णन सुभद्रा के समान जानना चाहिये। यावत् (आर्या पुष्पचूलिका के समझाने पर भी वह नहीं समझी) और एक दिन उपाश्रय से निकल कर वह बिल्कुल अकेले उपाश्रय में जाकर निवास करने लगी।

तत्पश्चात् वह भूता आर्या निरंकुश, विना रोकटोक के स्वच्छन्द-मति होकर बार-बार हाथ धोने लगी यावत् स्वाध्याय करने लगी अर्थात् उसने अपना पूर्वोक्त आचार चालू रक्खा।

भूता का अवसान और सिद्धि गमन

९. तए णं सा भूया अज्जा बहूहिं चउत्थछट्ठ० बहूइं वासाइं सामण्णपरियाणं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कन्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि जाव ओगाहणाए सिरिदेवित्ताए उववन्ना, पञ्चविहाए पज्जत्तीए जाव भासामणपज्जत्तीए पज्जत्ता। 'एवं खलु गोयमा! सिरीए देवीए एसा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता। एगं पलिओवमं ठिई।

'सिरी णं भंते, देवी जाव कहिं गच्छिहिइ?'

'महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।'

॥ निक्खेवओ ॥

[९] तब वह भूता आर्या विविध प्रकार की चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त आदि तपश्चर्या करके और बहुत वर्षों तक श्रमणीपर्याय का पालन करके एवं अपनी अनुचित अयोग्य कायप्रवृत्ति की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए विना ही मरणसमय में मरण करके सौधर्मकल्प के श्रीअवतसक

विमान की उपपातसभा में देवशय्या पर यावत् अवगाहना से श्रीदेवी के रूप में उत्पन्न हुई, यावत् पांच—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति तथा भाषा-मनःपर्याप्ति से पर्याप्त हुई।

इस प्रकार हे गौतम ! श्रीदेवी ने यह दिव्य देवऋद्धि लब्ध और प्राप्त की है। वहाँ उसकी एक पल्योपम की आयु-स्थिति है।

'भदन्त ! यह श्रीदेवी देवभव का आयुष्य पूर्ण करके यावत् कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?' गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा।

भगवान् ने उत्तर दिया—'महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और (संयम की आराधना करके) सिद्धि प्राप्त करेगी।'

निक्षेप

१०. निक्खेवओ—तं एवं खलु, जम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं पुप्फचूलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि।

[१०] (श्रीसुधर्मा स्वामी ने कहा—) आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है, ऐसा मै कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

२–१० वाँ अध्ययन

११. एवं सेसाण वि नवण्हं भाणियव्वं। सरिसनामा विमाणा। सोहम्मे कप्पे पुव्वभवो। णयरचेइयपियमाईणं अप्पणो य नामादि जहा संगहणीए। सव्वा पासस्स अन्तिए निक्खंता। ताओ पुप्फचूलाणं सिस्सिणीयाओ, सरीरबाओसियाओ, सव्वाओ अणन्तरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिन्ति।

।। पुप्फचूलाओ समत्ताओ ।।

[११] इसी प्रकार शेष नौ अध्ययनों का भी वर्णन करना चाहिए। मरण के पश्चात् अपने-अपने नाम के अनुरूप नाम वाले विमानों में उनकी उत्पत्ति हुई। यथा--ह्री देवी की ह्रीविमान में, धृति देवी की धृतिविमान में, कीर्त्ति देवी की कीर्त्ति नामक विमान में, बुद्धि देवी की बुद्धिविमान में आदि। सभी का सौधर्मकल्प में उत्पाद हुआ। उनका पूर्वभव भूता के समान है। नगर, चैत्य, माता-पिता और अपने नाम आदि संग्रहणीगाथा के अनुसार हैं। सभी पार्श्व अर्हत् से प्रव्रजित हुईं और वे पुष्पचूला आर्या की शिष्याएँ हुई। सभी शरीरबकुशिका हुईं और देवलोक के भव के अनन्तर च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगी।

।। द्वितीय से दशम अध्ययन समाप्त ।।

।। पुष्पचूलिका उपांग समाप्त ।।

५

वण्हिदसाओ-वह्निदशा

प्रथम अध्ययन

उत्क्षेप

१. उक्खेवओ—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं चउत्थस्स णं पुष्फचूलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवङ्गाणं वण्हिदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

[१] (श्रीजम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—) भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्ष को प्राप्त हुए भगवान् महावीर ने चतुर्थ उपांग पुष्पचूलिका का यह अर्थ कहा है तो हे भदन्त ! श्रमण यावत् मोक्ष-संप्राप्त भगवान् महावीर ने पांचवें वण्हिदसाओ [अन्धकवृष्णिदशा] नामक उपांग-वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ?

२. एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं पंचमस्स णं वण्हिदसाणं दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

निसढे-माअणि-वह-वहे पगया जुत्ती दसरहे दढरहे य ।
महाधणू सत्तधणू दसधणू नामे सयधणू य ॥

[२] (सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—) हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने पांचवें वह्निदशा उपाग के बारह अध्ययन कहे हैं। उनके नाम इस प्रकार है—

(१) निषध (२) मातलि (३) वह (४) वहे (५) पगया (६) युक्ति (७) दशरथ (८) दृढरथ (९) महाधन्वा (१०) सप्तधन्वा (११) दशधन्वा और (१२) शतधन्वा।

३. 'जइ णं भंते ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं उवङ्गाणं पंचमस्स वग्गस्स वण्हिदसाणं दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?'

[३] हे भदन्त ! यदि श्रमण यावत् मोक्षसंप्राप्त भगवान् ने वह्निदशा नामक पांचवे उपांग-वर्ग के बारह अध्ययन प्ररूपित किए हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् संप्राप्त भगवान् ने उनमें से प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

४. तए णं से सुहम्मे जम्बू अणगारं एवं वयासी

[४] तब आर्य सुधर्मा ने उत्तर में जम्बू अनगार से इस प्रकार कहा—

द्वारका नगरी

५. एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा धणवइमइनिम्मिया चामीयरपवरपागार-नाणामणि-पञ्चवण्णकविसीसगसोहिया अलयापुरीसंकासा पमुइयपक्कीलिया पच्चक्खं देवलोयभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

[५] हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारवती— (द्वारका) नाम की नगरी थी। वह पूर्व-पश्चिम में बारह योजन लम्बी और उत्तर-दक्षिण में नौ योजन चौड़ी थी, अर्थात् उसकी चौड़ाई नौ योजन और लंबाई बारह योजन की थी। उसका निर्माण स्वयं धनपति (कुबेर) ने अपने मतिकौशल से किया था। स्वर्णनिर्मित श्रेष्ठ प्राकार (परकोटा) और पंचरंगी मणियों के बने कंगूरों से वह शोभित थी। अलकापुरी—इन्द्र की नगरी के समान सुन्दर जान पड़ती थी। उसके निवासीजन प्रमोदयुक्त एवं क्रीडा करने में तत्पर रहते थे। वह साक्षात् देवलोक सरीखी प्रतीत होती थी। मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप एव प्रतिरूप थी।

रैवतक पर्वत

६. तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवए नामं पव्वए होत्था-तुङ्गे गयणयलमणुलिहन्तसिहरे नाणाविहरुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लया-वल्लीपरिगयाभिरामे हंस-मिय-मयूर-कोञ्च-सारस-काग-मयणसाल-कोइल-कुलाववेए तडकडगवियरउज्झरपवायपब्भारसिहरपउरे अच्छरगण-देवसंघ-विज्जाहर-मिहुण-संनिचिण्णे निच्चच्छणए दसारवरवीरपुरिसतेल्लोक्कबलयगाणं सोमे सुभए पियदंसणे सुरूवे पासादीए [जाव] पडिरूवे ।

[६] उस द्वारका नगरी के बाहर उत्तरपूर्वदिशा - ईशान कोण मे रैवतक नामक पर्वत था। वह बहुत ऊँचा था और उसके शिखर गगनतल को स्पर्श करते थे। वह नाना प्रकार के वृक्षो, गुच्छों, गुल्मों, लताओं और वल्लियों से व्याप्त था। हंस, मृग, मयूर, क्रौंच, सारस, चक्रवाक, मदनसारिका (मैना) और कोयल आदि पशु-पक्षियों के कलरव से गूंजता रहता था। उसमें अनेक तट, मैदान और गुफाएँ थीं। झरने, प्रपात, प्राग्भार (कुछ-कुछ नमे हुए गिरिप्रदेश) और शिखर थे। वह पर्वत अप्सराओं के समूहों, देवों के समुदायों, चारणों और विद्याधरों के मिथुनों (युगलों) से व्याप्त रहता था। तीनों लोकों में बलशाली माने जाने वाले दसारवंशीय वीर पुरुषों द्वारा वहां नित्य नये-नये उत्सव मनाए जाते थे। वह पर्वत सौम्य, सुभग, देखने में प्रिय, सुरूप, प्रासादिक, दर्शनीय, मनोहर और अतीव मनोरम था।

नन्दनवन उद्यान, सुरप्रिय यक्षायतन

७. तत्थ णं रेवयगस्स पव्वयस्स अदूरसामन्ते एत्थ णं नन्दणवणे नामं उज्जाणे होत्था सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे रम्मे नन्दणवणप्पगासे पासादीए जाव दरिसणिज्जे ।

तस्स णं नन्दणवणे उज्जाणे सुरप्पियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था-चिराईए [जाव] बहुजणो आगम्म अच्चेइ सुरप्पियं जक्खाययणं ।

से णं सुरप्पिए जक्खाययणे एगेणं महया वणसण्डेणं सव्वम्रो समन्ता संपरिक्खित्ते जहा पुण्णभद्दे जाव सिलावट्टए ।

[७] उस रैवतक पर्वत से न अधिक दूर और न अधिक समीप किन्तु यथोचित स्थान पर नन्दनवन नामका एक उद्यान था। वह सर्व ऋतुओं संबन्धी पुष्पों और फलों से समृद्ध, रमणीय नन्दन-वन के समान आनन्दप्रद; दर्शनीय, मनमोहक और मन को आकर्षित करने वाला था।

उस नन्दनवन उद्यान के अति मध्य भाग में सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था। वह अति पुरातन था यावत् बहुत से लोग वहाँ आ-आकर सुरप्रिय यक्षायतन की अर्चना करते थे। यक्षायतन का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।[1]

वह सुरप्रिय यक्षायतन पूर्णभद्र चैत्य के समान चारों ओर से एक विशाल वनखंड से पूरी तरह घिरा हुआ था, इत्यादि वर्णन भी औपपातिक सूत्र के समान जान लेना चाहिए। यावत् उस वनखण्ड में एक पृथ्वीशिलापट्ट था।

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव, बलदेव

८. तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। से णं तत्थ समुद्दविजय-पामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं, बलदेवपामोक्खाणं पञ्चण्हं महावीराणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं राईसाहस्सीणं, पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धट्ठाणं कुमारकोडीणं, सम्बपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दन्तसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एक्कवीसाए वीरसाहस्सीणं, रुप्पिणिपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं, अणङ्ग-सेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं वेयड्ढगिरिसागरमेरागस्स दाहिणड्ढभरहस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, महया जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ।

तस्स णं बलदेवस्स रन्नो रेवई नामं देवी होत्था सोमाला जाव विहरइ।

तए णं सा रेवई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ताणं ··· , एवं सुमिणदंसणपरिकहणं, कलाओ जहा महाबलस्स, पन्नासओ दाओ, पन्नासराय-कन्नगाणं एगदिवसेणं पाणिग्गहणं ··· नवरं निसढे नामं, जाव उप्पिं पासायं विहरइ।

[८] उस द्वारका नगरी में कृष्ण नामक वासुदेव राजा निवास करते थे। वे वहाँ समुद्र-विजय आदि दस दसारों का, बलदेव आदि पांच महावीरों का, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं का, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमारों का, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त योद्धाओं का, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीरों का, रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियों का, अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाओं का तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से राजाओं, ईश्वरों यावत् तलवरों, माडंबिकों, कौटुम्बिकों, इभ्यों, श्रेष्ठियों, सेनापतियों, सार्थवाहों वगैरह का उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तथा अन्य तीन दिशाओं में लवण समुद्र पर्यन्त दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र का तथा द्वारका नगरी का

अधिपतित्व, नेतृत्व, स्वामित्व, भट्टित्व, महत्तरकत्व आज्ञैश्वर्यत्व और सेनापतित्व करते हुए उनका पालन करते हुए, उन पर प्रशासन करते हुए विचरते थे।

उसी द्वारका नगरी में बलदेव नामक राजा (श्रीकृष्ण वासुदेव के ज्येष्ठ भ्राता) थे। वे महान् थे यावत् राज्य का प्रशासन करते हुए रहते थे।

उन बलदेव राजा की रेवती नाम की देवी-पत्नी थी, जो सुकुमाल थी यावत् भोगोपभोग भोगती हुई विचरण करती थी।

किसी समय रेवती देवी ने अपने शयनागार में औपपातिक सूत्र में वर्णित विशिष्ट प्रकार की शय्या पर सोते हुए यावत् स्वप्न में सिंह को देखा। स्वप्न देखकर वह जागृत हुई। यहाँ स्वप्नदर्शन आदि का कथन करना चाहिए। अर्थात् स्वप्न देखकर वह अपने पति के पास गई। उन्हें स्वप्न देखने का वृत्तान्त कहा। पति बलदेव ने स्वप्न के फल का निर्देश किया। प्रातःकाल स्वप्नपाठकों को आमन्त्रित किया गया। उन्होंने स्वप्नफल कथन की पुष्टि की। यथासमय बालक का जन्म हुआ। वह जब आठ वर्ष का हो गया तो महाबल के समान उसने बेहत्तर कलाओं का अध्ययन किया। विवाह के समय उसे पचास वस्तुएँ दहेज में दी गईं। एक ही दिन पचास उत्तम राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ इत्यादि। विशेषता यह है कि उस बालक का नाम **निषध** था यावत् वह आमोद-प्रमोद के साथ प्रासाद में रहकर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगा।

अर्हत् अरिष्टनेमि का आगमन

९. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे दस धणूइं......वण्णओ जाव समोसरिए। परिसा निग्गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया, सभाए सुहम्माए सामुदाणियं भेरिं तालेहि।"

तए णं से कोडुम्बियपुरिसे जाव पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाणिया भेरी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाणियं भेरिं महया महया सद्देणं तालेइ।

[९] उस काल और उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु पधारे। वे धर्म की आदि करने वाले थे, इत्यादि वर्णन भगवान् महावीर के वर्णन के समान यहाँ करना चाहिए। विशेषता यह है कि अर्हत् अरिष्टनेमि दस धनुष की अवगाहना—शरीर की ऊंचाई वाले थे। धर्मदेशना श्रवण करने के लिए परिषद् निकली।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने यह संवाद सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट होकर कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही सुधर्मा सभा में जाकर सामुदानिक (जिसके बजने पर जनसमूह एकत्रित हो जाए, ऐसी) भेरी को बजाओ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् कृष्ण वासुदेव की आज्ञा स्वीकार करके जहाँ सुधर्मा सभा में सामुदानिक भेरी थी वहाँ आए और आकर उस सामुदानिक भेरी को जोर से बजाया।

कृष्ण वासुदेव का दर्शनार्थ गमन

१०. तए णं तीसे सामुदाणियाए भेरीए महया महया सद्देणं तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दसारा, देवीओ भाणियव्वाओ, जाव अणङ्गसेणापामोक्खा अणेगा गणियासहस्सा अन्ने य बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ ण्हाया जाव पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया जहाविभवइड्ढी-सक्कारसमुदएणं अप्पेगइया हयगया गयगया पायचारविहारेणं वंदावन्दएहिं पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेन्ति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं कप्पेह हयगयरहपवर ०" जाव पच्चप्पिणन्ति ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे मज्जणघरे जाव दुरूढे, अट्ठट्ठ मङ्गलगा, जहा कूणिए, सेयवरचामरेहिं उद्धुव्वमाणेहिं उद्धुव्वमाणेहिं समुद्दविजयपामोक्खेहिं दसहिं दसारेहिं जाव सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं,……सेसं जहा कूणिओ जाव पज्जुवासइ ।

[१०] उस सामुदानिक भेरी को जोर-जोर से बजाए जाने पर समुद्रविजय आदि दसार, देवियाँ यावत् अनंगसेना आदि अनेक सहस्र गणिकाएँ तथा अन्य बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह प्रभृति स्नान कर यावत् प्रायश्चित्त-मंगलविधान कर सर्व अलंकारों से विभूषित हो यथोचित अपने-अपने वैभव ऋद्धि सत्कार एवं अभ्युदय के साथ कोई घोड़े पर आरुढ़ होकर, कोई हाथी पर आरूढ़ होकर और कोई पैदल ही जनसमुदाय को साथ लेकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ उपस्थित हुए । उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर यावत् कृष्ण वासुदेव का जय-विजय शब्दों से अभिनन्दन किया ।

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को यह आज्ञा दी—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को विभूषित करो और अश्व, गज, रथ एवं पदातियों से युक्त चतुरगिणी सेना को सुसज्जित करो, यावत् मेरी यह आज्ञा वापिस लौटाओ ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने स्नानगृह में प्रवेश किया । यावत् स्नान करके, वस्त्रालंकार से विभूषित होकर वे आरूढ़ हुए । प्रस्थान करने पर उनके आगे-आगे आठ मांगलिक द्रव्य चले और कूणिक राजा के समान उत्तम श्रेष्ठ चामरों से विंजाते हुए समुद्रविजय आदि दस दसारों यावत् सार्थवाह आदि के साथ समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों के साथ द्वारवती नगरी के मध्य भाग में से निकले इत्यादि वर्णन समझ लेना चाहिए, यावत् पर्युपासना करने लगे—यहाँ तक का शेष समस्त वर्णन कूणिक के समान जानना चाहिए ।[1]

निषध कुमार का दर्शनार्थ गमन

११. तए णं तस्स निसहस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं च……जहा जमाली, जाव धम्मं सोच्चा निसम्म वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं, भंते, निग्गन्थं पावयणं, जहा चित्तो, जाव सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता पडिगए ।

१. देखिए औपपातिकसूत्र

[११] तब उस उत्तम प्रासाद पर रहे हुए निषधकुमार को उस जन-कोलाहल आदि को सुनकर कौतूहल हुआ और वह भी जमालि के समान ऋद्धि वैभव के साथ प्रासाद से निकला यावत् भगवान् के समवसरण में धर्म श्रवण कर और उसे हृदयंगम करके भगवान् को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार के उद्गार व्यक्त किए—भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ इत्यादि। चित्त सारथी के समान यावत् उसने श्रावकधर्म अंगीकार किया और श्रावकधर्म अंगीकार करके वापिस लौट गया।

वरदत्त अनगार की जिज्ञासा : अरिष्टनेमि का समाधान

१२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमिस्स अन्तेवासी वरदत्ते नामं अणगारे उराले जाव विहरइ। तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढं पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—"अहो णं, भंते, निसढे कुमारे इट्ठे इट्ठरूवे कंते कंतरूवे, एवं पिए पियरूवे मणुण्णए, मणामे मणामरूवे सोमे सोमरूवे पियदंसणे सुरूवे। निसढेणं भंते ! कुमारेण अयमेयारूवे माणुस्सइड्ढी किण्णा लद्धा, किण्णा पत्ता ?" पुच्छा जहा सूरियाभस्स।

एवं खलु वरदत्ता ! तेणं कालेणं तेणं समयेणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे रोहीडए नामं नयरे होत्था, रिद्ध० ……। मेहवण्णे उज्जाणे। माणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे। तत्थ णं रोहीडए नयरे महब्बले नामं राया। पउमावई नामं देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सीहं सुमिणे………, एवं जम्मणं भाणियव्वं जहा महाबलस्स, नवरं वीरङ्गओ नामं, बत्तीसओ दाओ, बत्तीसाए रायवरकन्नगाण पाणिं जाव ओगिज्जमाणे ओगिज्जमाणे पाउसवरिसारत्तसरयहेमन्तगिम्ह-वसन्ते छप्पि उऊ जहाविभवे समाणे इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पञ्चविहे माणुस्सगे कामभोए भुञ्जमाणे विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सिद्धत्था नाम आयरिया जाइसंपन्ना जहा केसी, नवरं बहुस्सुया बहुपरिवारा जेणेव रोहीडए नयरे, जेणेव मेहवण्णे उज्जाणे, जेणेव माणिदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे, तेणेव उवागए अहापडिरूवं जाव विहरइ। परिसा निग्गया।

[१२] उस काल और उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य वरदत्त नामक अनगार विचरण कर रहे थे। उन वरदत्त अनगार ने निषधकुमार को देखा। देखकर जिज्ञासा हुई यावत् अरिष्टनेमि भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार निवेदन किया—अहो भगवन् ! यह निषध कुमार इष्ट, इष्ट रूप वाला, कमनीय, कमनीय रूप से सम्पन्न एवं प्रिय, प्रिय रूप वाला, मनोज्ञ, मनोज्ञ रूप वाला, मणाम, मणाम रूपवाला, सौम्य, सौम्य रूपवाला, प्रियदर्शन और सुन्दर है ! भदन्त ! इस निषध कुमार को इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि कैसे उपलब्ध हुई, कैसे प्राप्त हुई ? इत्यादि सूर्याभदेव के विषय में गौतम स्वामी की तरह (वरदत्त मुनि ने) प्रश्न किया।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने वरदत्त अनगार का समाधान करते हुए कहा—आयुष्मन् वरदत्त ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रोहीतक नाम का नगर था। वह धन धान्य से समृद्ध था इत्यादि। वहाँ मेघवन नाम का उद्यान था और मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था। उस रोहीतक नगर के राजा का नाम महाबल था और रानी का नाम पद्मावती था। किसी एक रात

उस पद्मावती ने सुखपूर्वक शय्या पर सोते हुए स्वप्न में सिंह को देखा यावत् महाबल के समान पुत्रजन्म का वर्णन जानना चाहिए। विशेषता यह है कि पुत्र का नाम वीरांगद रखा गया। यावत् उसे बत्तीस-बत्तीस वस्तुएँ दहेज में दी गईं और बत्तीस श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ, यावत् वैभव के अनुरूप पावस, वर्षा, शरद्, हेमन्त, ग्रीष्म और वसन्त, इन छहों ऋतुओं के योग्य इष्ट शब्द यावत् स्पर्श, रस, रूप और गंध वाले पांच प्रकार के मानवीय कामभोगों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

उस काल और उस समय जातिसम्पन्न इत्यादि विशेषणों वाले केशीश्रमण जैसे किन्तु बहुश्रुत के धनी एवं विशाल शिष्यपरिवार सहित सिद्धार्थ नामक आचार्य जहाँ रोहीतक नगर था, जहाँ उसमें मेघवन उद्यान था, और उसमें भी जहाँ मणिदत्त यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पधारे और साधुओं के योग्य अवग्रह लेकर विराजे। दर्शनार्थ परिषद् निकली।

१३. तए णं तस्स वीरङ्गयस्स कुमारस्स उप्पिं पासायवरगयस्स तं महया जणसद्दं ...... जहा जमाली, निग्गओ। धम्मं सोच्चा ......, जं नवरं देवाणुप्पिया, अम्मापियरो आपुच्छामि, जहा जमाली, तहेव निक्खन्तो जाव अणगारे जाए जाव गुत्तबम्भयारी।

[१३] तब उत्तम प्रासाद में वास करने वाले उस वीरांगद कुमार ने महान् जनकोलाहल इत्यादि सुना और (एक ही दिशा में जाता हुआ) जनसमूह देखा। वह भी जमालि की तरह दर्शनार्थ निकला। धर्मदेशना श्रवण करके उसने अनगार-दीक्षा अगीकार करने का संकल्प किया और उसने भी जमालि की तरह निवेदन किया कि माता-पिता की अनुमति प्राप्त करके दीक्षा ग्रहण करूंगा। फिर जमालि को तरह ही प्रव्रज्या अंगीकार की और यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया।

१४. तए णं से वीरङ्गए अणगारे सिद्धत्थाणं आयरियाणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं जाव एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूइं जाव चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं पणयालीसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सवीसं भत्तसयं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बम्भलोए कप्पे मणोरमे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दससागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं वीरंगयस्स देवस्स वि दस सागरोवमा ठिई पण्णत्ता।

[१४] तत्पश्चात् उस वीरांगद अनगार ने सिद्धार्थ आचार्य से सामायिक से प्रारंभ करके यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, यावत् विविध प्रकार के चतुर्थभक्त आदि तपःकर्म से आत्मा को परिशोधित करते हुए परिपूर्ण पैंतालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर द्विमासिक संलेखना से आत्मा को शुद्ध करके एक सौ बीस भक्तों-भोजनों का अनशन द्वारा छेदनकर, आलोचना प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि सहित कालमास में मरण कर वह ब्रह्मलोक कल्प के मनोरम विमान में देव-रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ कितने ही देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। वीरांगद देव की भी दस सागरोपम की स्थिति हुई।

१५. से णं वीरङ्गए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव अनन्तरं चयं चइत्ता इहेव बारवईए नयरीए बलदेवस्स रन्नो रेवईए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववन्ने। तए णं सा रेवई देवी तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुमिणदंसणं, जाव उप्पिं पासायवरगए विहरइ।

तं एवं खलु वरदत्ता ! निसढेणं कुमारेणं अयमेयारूवे उराले मणुयइड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमन्नागया।

"पभू णं भंते ! निसढे कुमारे देवाणुप्पियाणं अन्तिए जाव पव्वइत्तए ?"

हन्ता, पभू। से एवं भंते ! इह वरदत्ते अणगारे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी अन्नया कयाइ बारवईओ नयरीओ जाव बहिया जणवयविहारं विहरइ। निसढे कुमारे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

[१५] वह वीरांगद देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन करके इसी द्वारवती नगरी में बलदेव राजा की रेवती देवी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

उस समय रेवती देवी ने सुखद शय्या पर सोते हुए स्वप्न देखा, यथासमय बालक का जन्म हुआ, वह तरुणावस्था में आया, पाणिग्रहण हुआ यावत् उत्तम प्रासाद में भोग भोगते हुए यह निषध कुमार विचरण कर रहा है।

इस प्रकार, हे वरदत्त ! इस निषध कुमार को यह और ऐसी उत्तम मनुष्य ऋद्धिलब्ध, प्राप्त और अधिगत हुई है।

वरदत्त मुनि ने प्रश्न किया—भगवन् ! क्या निषध कुमार आप देवानुप्रिय के पास यावत् प्रव्रजित होने के लिए समर्थ है ?

भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—हाँ वरदत्त ! समर्थ है।

यह इसी प्रकार है—आपका कथन यथार्थ है भदन्त ! इत्यादि कहकर वरदत्त अनगार अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

इसके बाद किसी एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी से निकले यावत् बाह्य जनपदों में विचरण करने लगे। निषध कुमार जीवाजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया यावत् (सुखपूर्वक) समय विताने लगा।

निषध कुमार का मनोरथ

१६. तए णं से निसढे कुमारे अन्नया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव दब्भसंथारोवगए विहरइ। तए णं तस्स निसढस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—"धन्ना णं ते गामागर जाव संनिवेसा जत्थ णं अरहा अरिट्ठणेमी विहरइ। धन्ना णं ते राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ जे णं

अरिट्ठणेमिं वंदन्ति, नमंसंति जाव पज्जुवासंति। जइ णं अरहा अरिट्ठणेमी पुव्वाणुपुव्विं ·······नन्दणवणे विहरेज्जा, तए णं अहं अरहं अरिट्ठणेमिं वन्दिज्जा जाव पज्जुवासिज्जा।

[१६] तत्पश्चात् किसी समय जहाँ पौषधशाला थी वहाँ निषध कुमार आया। आकर घास के संस्तारक—आसन पर बैठकर पौषधव्रत ग्रहण करके विचरने लगा। तब उस निषध कुमार को रात्रि के पूर्व और अपर समय के संधिकाल में अर्थात् मध्यरात्रि में धार्मिक चिन्तन करते हुए इस प्रकार का आंतरिक विचार उत्पन्न हुआ—'वे ग्राम, आकर यावत् सन्निवेश निवासी धन्य हैं जहाँ अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु विचरण करते हैं तथा वे राजा, ईश्वर (राजकुमार-युवराज) यावत् सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन-नमस्कार करते हैं यावत् पर्युपासना करने का अवसर प्राप्त करते हैं। यदि अर्हत् अरिष्टनेमि पूर्वानुपूर्वी से विचरण करते हुए, ग्रामानुग्राम गमन करते हुए, सुखपूर्वक चलते हुए यहाँ नन्दनवन में पधारें तो मैं उन अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन-नमस्कार करूंगा यावत् पर्युपासना करने का लाभ लूंगा।

निषध कुमार की दीक्षा : देवलोकोत्पत्ति

१७. तए णं अरहा अरिट्ठनेमी निसढस्स कुमारस्स अयमेयारूवमज्झत्थियं जाव वियाणित्ता अट्ठारसहिं समणसहस्सेहिं जाव नन्दणवणे·······। परिसा निग्गया।

तए णं निसढे कुमारे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ० चाउग्घण्टेणं आसरहेणं निग्गए जहा जमाली, जाव अम्मापियरो आपुच्छित्ता पव्वइए, अणगारे जाए जाव गुत्तबम्भयारी।

[१७] तदनन्तर निषधकुमार के यह और इस प्रकार के मनोगत विचार को जानकर अरिष्टनेमि अर्हन् अठारह हजार श्रमणों के साथ ग्राम-ग्राम आदि में गमन करते हुए यावत् नन्दनवन में पधारे और साधुओं के योग्य स्थान में आज्ञा-अनुमति लेकर विराजे। उनके दर्शन-वंदन आदि करने के लिए परिषद् निकली।

तब निषध कुमार भी अरिष्टनेमि अर्हत् के पदार्पण के वृत्तान्त को जान कर हर्षित एवं परितुष्ट होता हुआ चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ होकर जमालि की तरह अपने वैभव के साथ दर्शनार्थ निकला, यावत् माता-पिता से आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके प्रव्रजित हुआ। यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार हो गया।

१८. तए णं से निसढे अणगारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जइ, २ बहूइं चउत्थछट्ठ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं नववासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

[१८] तत्पश्चात् उस निषध अनगार ने अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और विविध प्रकार के चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त यावत् विचित्र तपःकर्मों (तपसाधना) से आत्मा को भावित करते हुए परिपूर्ण नौ वर्ष तक श्रमण

पर्याय का पालन किया। वह श्रमण पर्याय को पालन करके बयालीस भोजनों को अनशन द्वारा त्याग कर आलोचन और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुआ।

१९. तए णं से वरदत्ते अणगारे निसढं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए। से णं भन्ते! निसढे अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने?"

"वरदत्ता" इ अरहा अरिट्ठणेमी वरदत्तं अणगारं एवं वयासी—"एवं खलु, वरदत्ता, ममं अन्तेवासी निसढे नामं अणगारे पगइभद्दे जाव विणीए ममं तहारूवाणं थेराणं अन्तिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अङ्गाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं नव वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता बायालीसं भत्ताइं अणसणाए छेइत्ता आलोइयपडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चन्दिमसूरियगहनक्खत्ततारारूवाणं सोहम्मीसाण जाव अच्चुते तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता सव्वट्ठसिद्धविमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं निसढस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।"

[१९] तब वरदत्त अनगार निषधकुमार को कालगत जानकर अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास आए यावत् इस प्रकार निवेदन किया—देवानुप्रिय! प्रकृति से भद्र यावत् विनीत जो आपका शिष्य निषध अनगार था वह कालमास में काल (मरण) को प्राप्त होकर कहाँ गया है? कहाँ उत्पन्न हुआ है?

अर्हत् अरिष्टनेमि ने 'वरदत्त!' इस प्रकार से संबोधित-आमंत्रित कर वरदत्त अनगार से कहा—'हे भदन्त! प्रकृति से भद्र यावत् विनीत मेरा अन्तेवासी निषध नामक अनगार मेरे तथारूप स्थविरों से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अगों का अध्ययन करके, नौ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय में रहकर, अनशन द्वारा बयालीस भोजनों का त्याग करके आलोचन-प्रतिक्रमण पूर्वक समाधिस्थ हो, मरणावसर पर मरण करके ऊर्ध्वलोक में, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारारूप ज्योतिष्क देव विमानों, सौधर्म-ईशान आदि अच्युत देवलोकों का तथा तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानों का अतिक्रमण करके अर्थात् इनसे भी ऊपर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ पर देवों की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। निषधदेव की स्थिति भी तेतीस सागरोपम की है।'

निषध का मुक्तिगमन

२०. "से णं भन्ते! निसढे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणन्तरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?"

वरदत्ता! इहेव जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उन्नाए नगरे विसुद्धपिइवंसे रायकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। तए णं से उम्मुक्कबालभावे विन्नयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तहारूवाणं थेराणं अन्तिए केवलबोहिं बुज्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वज्जिहिइ। से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ

इरियासमिए जाव गुत्तबम्भयारी । से णं तत्थ बहूइं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणिस्सइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसिहिइ, झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेइहिइ, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुण्डभावे अण्हाणए जाव अदन्तवणए अच्छत्तए अणोवाहणाए फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बम्भचेरवासे परघरपवेसे पिण्डवाओ लद्धावलद्धे उच्चावया य गामकण्टगा अहियासिज्जइ, तमट्ठं आराहिइ, आराहित्ता चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ जाव सव्वदुक्खाणं अन्तं काहिइ ।"

निक्खेवओ—एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं वण्हिदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि ।

एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा संहगणी-अणुसारेण अहीणमइरित्त एक्कारससु वि ।

।। पञ्चमो वग्गो समत्तो ।।

[२०] तदनन्तर वरदत्त अनगार ने पूछा— 'भदन्त !' वह निषध देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के पश्चात् वहाँ से च्यवन करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—'आयुष्मन् वरदत्त ! इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र के उन्नाक नगर में विशुद्ध पितृवंश वाले राजकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। तब वह बाल्यावस्था के पश्चात् समझदार होकर युवावस्था को प्राप्त करके तथारूप स्थविरों से केवल-बोधि-सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर अगार त्याग कर अनगार प्रव्रज्या को अंगीकार करेगा। वह ईर्यासमिति से सम्पन्न यावत् गुप्त ब्रह्मचारी अनगार होगा और बहुत से चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दसमभक्त, द्वादशभक्त, मासखमण, अर्धमासखमणरूप विचित्र तपसाधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणावस्था का पालन करेगा। श्रमण साधना का पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करेगा, साठ भोजनों का अनशन द्वारा त्याग करेगा और जिस प्रयोजन के लिए नग्नभाव, मुंडभाव, स्नानत्याग यावत् दांत धोने का त्याग, छत्र का त्याग, उपानह (जूता, पादुका आदि) का त्याग तथा पाट पर सोना, काष्ठ तृण आदि पर सोना-बैठना, केशलोंच, ब्रह्मचर्य ग्रहण करना, भिक्षार्थ पर-गृह में प्रवेश करना, यथापर्याप्त भोजन की प्राप्ति होना या न होना, ऊँचे-नीचे अर्थात् तीव्र और सामान्य ग्रामकंटकों (कष्टों) को सहन किया जाता है, उस साध्य की आराधना करेगा और आराधना करके चरम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—'इस प्रकार हे आयुष्मन् जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने वृष्णिदशा (वह्निदशा) के प्रथम अध्ययन का यह आशय प्रतिपादित किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।'

शेष अध्ययन· इसी प्रकार से शेष ग्यारह अध्ययनों का आशय भी संग्रहणी-गाथा के अनुसार विना किसी हीनाधिकता के जैसा का तैसा जान लेना चाहिए।

।। पंचम वर्ग समाप्त ।।

ग्रन्थ की अंतिम प्रशस्ति

२१. निरयावलियासुयखंधो समत्तो। समत्ताणि उवङ्गाणि।

निरयावलियाउवङ्गे णं एगो सुयखंधो, पञ्च वग्गो पञ्चसु दिवसेसु उद्दिस्संति। तत्थ चउसु वग्गेसु दस दस उद्देसगा, पञ्चमवग्गे बारस उद्देसगा।

॥ निरयावलियासुत्तं समत्तं ॥

[२१] निरयावलिका नामक श्रुतस्कंध समाप्त हुआ। इसके साथ ही (पांच) उपांगों का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

निरयावलिका उपांग में एक श्रुतस्कन्ध है। उसके पांच वर्ग हैं, जिनका पांच दिनों में निरूपण किया जाता है। आदि के चार वर्गों में दस-दस उद्देशक हैं और पांचवें वर्ग में बारह उद्देशक हैं।

॥ निरयावलिका सूत्र समाप्त ॥

महाबलचरितम्

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था, वण्णग्रो। सहसम्बवणे उज्जाणे, वण्णग्रो। तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे बले नामं राया होत्था, वण्णग्रो। तस्स णं बलस्स रन्नो पभावई नामं देवी होत्था, सुकुमाल० वण्णग्रो जाव विहरइ।

[१] उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नामक नगर था। औपपातिक सूत्र में वर्णित चंपानगरी के समान उसका वर्णन जानना चाहिए।

नगर के ईशान कोण में सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के उद्यानवर्णन के समान जान लेना चाहिए।

उस हस्तिनापुर नगर में बल नाम का राजा था। वह हिमवन आदि पर्वतों के समान महान् था, इत्यादि वर्णन औपपातिक सूत्र के राजवर्णन के समान समझ लेना चाहिए।

उस बल राजा की प्रभावती नाम की देवी—रानी थी। उसकी शारीरिक शोभा आदि का वर्णन औपपातिक सूत्रगत राज्ञीवर्णन के अनुरूप जानना चाहिए यावत् बल राजा के साथ विपुल भोगोपभोगों का अनुभव करती हुई समय व्यतीत करती थी।

२. तए णं सा पभावई देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिन्तरओ सचित्त-कम्मे बाहिरओ दूमियघट्टमट्ठे विचित्तउल्लोगचिल्लियतले मणिरयणपणासियन्धयारे बहुसमसुविभत्त-देसभाए पञ्चवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुञ्जोवयारकलिए कालागरुपवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघम-घेन्तगन्धुद्धुयाभिरामे सुगन्धवरगन्धिए गन्धवट्टिभूए तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोयणे दुहओ उन्नए मज्झे नय-गम्भीरे गङ्गापुलिणवालुयउद्दालसालिसए उवचियखोमिय-दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणगरूयबूरनवणीयतूलफासे सुगन्धवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं कल्लाणं सिवं धन्नं मंगलं सस्सिरियं महासुविणं पासित्ताणं पडिबुद्धा।

[२] उस प्रभावती देवी ने किसी समय उत्तम और सुरुचिपूर्ण चित्रों के आलेखन से युक्त भीतरी भाग वाले और बाहर से लिपे-पुते, कोमल पाषाण से घिसे जाने से चिकने, उपरिम एवं अधोभाग वाले विविध प्रकार के दीप्यमान चित्रामों से सुशोभित, मणि एवं रत्नों के प्रकाश से अंधकार रहित, बहुसम, सुविभक्त कक्ष और प्रकोष्ठों वाले पंच वर्ण के सरस और सुगंधित पुष्पपुंजों से उपचरित—सजाए हुए, उत्तम कृष्ण अगर, कुन्दरुष्क, तुरुष्क एवं धूप की सुगंध से महकते, सुरभित पदार्थों से सुवासित एवं सुगंध-गुटिका के समान अनुपम वासगृह (भवन) में स्थित और शरीर प्रमाण लंबी

चौड़ी, सिरहाने और पैंहताने दोनों ओर से तकिया युक्त, दोनों ओर से उन्नत, मध्य में कुछ नमी हुई, गंगा की तटवर्ती रेती के अवदाल (पैर रखने पर धंसती हुई) वालू के समान कोमल, क्षोमिक—रेशमी दुकूल पट से आच्छादित, रजस्त्राण से ढँकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) से परिवेष्टित, सुरम्य आजिनक (मृगछाला), रुई, बूर, नवनीत, अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्शवाली, सुगंधित, उत्तम पुष्प-चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त पुण्यशालियों के योग्य शैया पर अर्धरात्रि के समय अर्धनिद्रित अवस्था में सोते हुए उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलकारक, शोभायुक्त महास्वप्न देखा और देखकर जाग्रत हुई।

३. हाररययखीरसागरससङ्ककिरणदगरयरययमहासेलपण्डुरतरोरुरमणिज्जपेच्छणिज्जं थिर-लट्ठपउट्ठवट्टपीवरसुसिलिट्ठविसिट्ठतिक्खदाढाविडम्बियमुहं परिकम्मियजच्चकमलकोमलमाइयसोभन्त-लट्ठउट्ठं रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहं मूसागयपवरकणगताविअआवत्तायन्तवट्टतडिविमलसरिस-नयणं विसालपीवरोरुपडिपुण्णविपुलखन्धं मिउविसदसुहुमलक्खणपसत्थवित्थिण्णकेसरसडोवसोभियं ऊसियसुनिम्मितसुजायअप्फोडियलङ्गुलं सोमं सोमाकारं लीलायन्तं जम्भायन्तं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवयणमतिवयन्तं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा।

[३] वह प्रभावती रानी मोतियों का हार, रजत (चांदी), क्षीरसमुद्र, चंद्रकिरण, जलबिन्दु, रजत महाशैल (वैताढ्य पर्वत) के समान श्वेत—धवल वर्ण वाले, विशाल, रमणीय, दर्शनीय, स्थिर और सुन्दर प्रकोष्ठ वाले; गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढाओं से युक्त मुंह को फाड़े हुए, संस्कारित उत्तम कमल के समान सुकोमल, प्रमाणोपेत ओष्ठों से अतीव सुशोभित, रक्त कमल-पत्र के समान अत्यन्त कोमल तालु और जीभ वाले, मूस में रहे हुए एवं अग्नि में तपाए और आवर्त्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्ण वाले, गोल तथा बिजली के समान निर्मल आंखों वाले, विशाल और पुष्ट जंघाओं वाले, परिपूर्ण एवं विपुल स्कंधयुक्त, मृदु विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षणों से युक्त केसर से शोभित, सुन्दर और उन्नत पूंछ को पृथ्वी पर फटकारते हुए, सौम्य, सौम्य आकार वाले, लीला करते हुए, उवासी (जंभाई) लेते हुई सिंह को आकाश से नीचे उतरकर अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देख जाग्रत हुई।

४. तए णं सा पभावई देवी अयमेयारूवं ओरालं जाव सस्सिरियं महासुविणं पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया धाराहयकलम्बपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभन्ताए अविलम्बियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव बलस्स रन्नो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मङ्गलाहिं सस्सिरीयाहिं मियमहुरमञ्जुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता बलेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीयित्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया बलं रायं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं जाव संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

[४] तदनन्तर इस प्रकार के उदार यावत् सश्रीक महास्वप्न को देखकर जाग्रत हुई वह प्रभावती देवी हर्षित, संतुष्ट यावत् विकसितहृदय और मेघ की धारा से विकसित कदम्ब पुष्प के

समान रोमांचित होती हुई स्वप्न का स्मरण करने लगी और स्वप्न का स्मरण करती हुई शय्या से उठी एवं शीघ्रता, चपलता, संभ्रम और विलंब के बिना राजहंस के समान उत्तम गति से गमन कर बल राजा के शयनगृह में आई। आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (मनोहर), उदार, कल्याण शिव, धन्य, मंगल, सुन्दर, मित, मधुर और मंजुल वाणी से बोलते हुए बल राजा को जगाया। जागने पर बल राजा की आज्ञा—अनुमति स्वागतपूर्वक विचित्र मणिरत्नों से रचित चित्रामों से युक्त भद्रासन पर बैठी। सुखासन पर बैठने के अनन्तर स्वस्थ एवं शांतमना होकर इष्ट, प्रिय यावत् मधुर वाणी से उसने बल राजा से इस प्रकार निवेदन किया—

५. "एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगण० तं चेव जाव नियगवयणमइवयन्तं सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा। तं णं देवाणुप्पिया! एतस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?"

तए णं से बले राया पभावईए देवीए अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमंव चञ्चुमालइयतणुयऊसवियरोमकूवे तं सुविणं ओगिण्हइ, ईहं पविसइ, ईहं पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तस्स सुविणस्स अत्थग्गहणं करेइ, करित्ता पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं जाव मङ्गलाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं.... संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—

[५] देवानुप्रिय! **बात यह है कि** आज मैंने सुख-शय्या पर शयन करते हुए स्वप्न में एक मनोहर सिंह को अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए देखा है। हे देवानुप्रिय! इस उदार यावत् महास्वप्न का क्या कल्याण रूप फलविशेष होगा?

तब प्रभावती देवी की इस बात तो सुन कर और विचार कर बल राजा हर्षित, संतुष्ट, विकसितहृदय यावत् मेघधारा के स्पर्श होने पर विकसित सुगंधित कदम्ब-पुष्प के समान रोमांचित शरीर वाला हुआ। उसने स्वप्न का अवग्रह (सामान्य विचार) किया, फिर ईहा (विशेष विचार) की। ईहा करके अपने स्वाभाविक मतिविज्ञान से उस स्वप्न के फल का अर्थावग्रह-निश्चय किया और निश्चय करके इष्ट, कात, यावत् मंगल, मित, मधुर सश्रीक वाणी से संलाप करते हुए इस प्रकार कहा—

६. ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे जाव सस्सिरीए णं तुमे देवी सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मङ्गलकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! रज्जलाभो देवाणुप्पिए! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणयराइंदियाणं विइक्कन्ताणं अम्हं कुलकेउं कुलनन्दिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्ण-पञ्चिन्दियसरीरं जाव ससिसोमाकारं कन्तं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि।

[६] देवी! तुमने उदार - उत्तम स्वप्न देखा है, तुमने कल्याणकारक यावत् शोभनीय स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य-दायक, कल्याण-मंगलकारक स्वप्न देखा

है। देवानुप्रिये ! अर्थलाभ होगा, देवानुप्रिये ! भोगलाभ होगा, देवानुप्रिये ! पुत्रलाभ होगा, देवानुप्रिये ! राज्यलाभ होगा। देवानुप्रिये ! परिपूर्ण नौ मास और साढे सात दिन बीतने पर तुम अपने कुल के ध्वज समान, कुल को आनंद देने वाले, कुल की यशोवृद्धि करने वाले, कुल के लिए आधारभूत, कुल में वृक्ष के समान, कुल-वृद्धिकारक, सुकुमाल हाथ-पैर प्रमाणोपेत अंग-प्रत्यंग एवं परिपूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त शरीर वाले यावत् चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त (ओजस्वी) प्रिय-दर्शन, सुरूप एवं देवकुमारवत् प्रभावाले पुत्र का प्रसव करोगी।

७. से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरियणमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कन्ते वित्थिण्णविउलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ। तं उराले णं तुमे, जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि० जाव मङ्गलकारए णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठेत्ति कट्टु पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं दोच्चं पि तच्चं पि अणुवूहइ।

[७] वह पुत्र भी बालभाव से मुक्त होकर विज्ञ एवं परिणत—पुष्ट शरीर हो युवावस्था को प्राप्त करके शूरवीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण—विशाल और विपुल बल (सेना) तथा वाहन वाले राज्य का अधिपति—राजा होगा। अतएव तुमने उदार यावत् स्वप्न देखा है, देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टिप्रद, यावत् मंगलकारक स्वप्न देखा है, इस प्रकार कहकर इष्ट वाणी से इसी बात को दूसरी और तीसरी बार भी प्रभावती देवी से कहा।

८. तए णं सा पभावई देवी बलस्स रन्नो अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल जाव एवं वयासी—'एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुब्भे वयह' त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवल जाव गईए सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एवं वयासि—'मा मे से उत्तमे पहाणे मङ्गल्ले सुविणे अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिसइ' त्ति कट्टु देवगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मङ्गलाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरियं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

[८] बल राजा से इस फलकथन को सुनकर और हृदय में धारण कर प्रभावती देवी हृष्ट-तुष्ट हो यावत् दोनों हाथ जोड़कर अंजलि पूर्वक इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय ! आपने जो कहा, वह इसी प्रकार है, देवानुप्रिय ! वह यथार्थ है, देवानुप्रिय ! सत्य है, देवानुप्रिय ! संदेहरहित है देवानुप्रिय ! वह मुझे इच्छित है, देवानुप्रिय ! मुझे स्वीकृत है, देवानुप्रिय ! इच्छित एवं अभिलषित है। वह वैसा ही है, जैसा आपने कहा है। इस प्रकार कहकर उसने स्वप्न के आशय (भाव) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया। फिर बल राजा से अनुमति लेकर अनेक प्रकार के मणिरत्नों से रचित चित्रामों वाले भद्रासन से उठकर शीघ्रता एवं चपलता रहित गति से चलकर अपने शयनागार में आई और आकर अपनी शैया पर बैठी।

शैया पर बैठकर इस प्रकार विचार करने लगी—यह मेरा उत्तम, प्रधान, मंगलरूप स्वप्न अन्य दूसरे पाप-स्वप्नों से प्रतिहत न हो जाए ! ऐसा सोचकर देव-गुरुजन संबन्धी प्रशस्त मांगलिक कथाओं से जागरण करती रही।

९. तए णं से बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव, भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गन्धोदयसित्तसुइअसंमज्जिओवलित्तं सुगन्धवर-पञ्चवण्णपुप्फोवयारकलियं कालागरुपवरकुंदुरुक्क० जाव गन्धवट्टिभूयं करेह य करावेह य, करित्ता सीहासणं रएह, रइत्ता ममेयं जाव पच्चप्पिणह।

तए णं ते कोडुम्बिय० जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं जाव पच्चप्पिणन्ति।

[९] तत्पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही आज बाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को विशेष रूप से गंधोदक का छिड़काव करके स्वच्छ करो, लीप-पोतकर शुद्ध करो, सुगंधित और उत्तम पंच वर्ण के पुष्पों से उपचरित करो—सजाओ यावत् काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरूष्क, तुरुष्क और धूप को जलाकर गंधवर्तिका के समान करो और करवाओ। फिर सिंहासन रखो और ऐसा करके आज्ञानुरूप कार्य होने की मुझे सूचना दो।

इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् आदेश स्वीकार करके शीघ्र ही बाहरी उपस्थान-शाला को विशेष रूप से स्वच्छ आदि करके आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

१०. तए णं से बले राया पच्चुसकालसमयंसि सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, अट्टणसालं अणुपविसइ, जहा उववाइए, तहेव मज्जणघरे, जाव ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थगकयमङ्गलो-वयाराइं रयावइ, रयावित्ता अप्पणो अदूरसामन्ते नाणामणिरयणमण्डियं अहियपेच्छणिज्जं महग्घवर-पट्टणुग्गयं सण्हपट्टबहुभत्तिसयचित्तताणं ईहामियउसभ जाव भत्तिचित्तं अब्भिन्तरियं जवणियं अञ्छावेइ, अञ्छावित्ता नाणामणिरयणभत्तिचित्तं अत्थरयमउयमसूरगोत्थयं सेयवत्थपच्चत्थुयं अङ्गसुहफासुयं सुमउय पभावईए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

[१०] तदनन्तर प्रातःकाल होने पर राजा अपनी शय्या से उठा और पादपीठ से नीचे उतरा। उतरकर जहाँ व्यायामशाला थी, वहाँ गया। जाकर व्यायामशाला में प्रवेश किया और जैसा औपपातिक सूत्र में व्यायामशाला और स्नानगृह संबन्धी कूणिक राजाकृत कार्यों का वर्णन है, तदनुरूप करके यावत् चन्द्र के समान प्रियदर्शन नरपति स्नानगृह से बाहर निकला। निकलकर जहाँ सभाभवन था, वहाँ आया और आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठ गया।

बैठने के पश्चात् अपने उत्तर-पूर्व दिग्भाग—ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरसों आदि मांगलिक पदार्थों से उपचरित—संस्कारित आठ भद्रासन रखवाए और फिर अपने समीप ही अनेक प्रकार के मणिरत्नों से मंडित अतीव दर्शनीय, महामूल्यवान् उत्तम वस्त्र से निर्मित चिकनी, ईहामृग, वृषभ आदि विविध प्रकार के चित्रामों से चित्र विचित्र एक यवनिका डलवाई और उसके अन्दर प्रभावती देवी के लिए भाँति-भाँति के मणिरत्नों से रचित, विचित्र श्वेत वस्त्र से आच्छादित, सुखद स्पर्श वाला सुकोमल, गद्दीयुक्त भद्रासन रखवाया और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा—

११. 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठङ्गमहानिमित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह।'

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता बलस्स रन्नो अन्तियाओ पडिनिक्खमइ, सिग्घं तुरियं चवलं चण्डं वेइयं हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेसिं सुविणलक्खणपाढगाणं गिहाइं, तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेन्ति।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रन्नो कोडुम्बियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कय० जाव सरीरा सिद्धत्थगहरियालियकयमङ्गलमुद्धाणा सएहिंतो गिहेहिंतो निग्गच्छन्ति, हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव बलस्स रन्नो भवणवरवडिसए तेणेव उवागच्छन्ति, करयल बलरायं जएणं विजएणं वद्धावेन्ति।

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलेणं रन्ना वन्दियपूइयसक्कारियसंमाणिया पत्तेयं पत्तेयं पुव्व-न्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयन्ति।

[११] देवानुप्रियो! शीघ्र ही सूत्र और अर्थ सहित अष्टांग महानिमित्तों के ज्ञाता, विविध-शास्त्रों में प्रवीण स्वप्नलक्षणपाठकों को बुलाओ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञा स्वीकार करके बल राजा के पास से निकले और शीघ्र, त्वरित, चपल और प्रचंड गति से हस्तिनापुर नगर के मध्य में से होते हुए जहाँ स्वप्नलक्षणपाठकों के घर थे, वहाँ पहुँचे और स्वप्नलक्षणपाठकों को बुलाया।

तत्पश्चात् उन बल राजा के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा आमंत्रित किये जाने पर स्वप्नलक्षणपाठक हर्षित एवं संतुष्ट हुए। स्नान, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त किये हुए यावत् शरीर को अलंकृत कर तथा मस्तक पर सरसों और हरी-दूब से मंगल करके वे अपने-अपने घर से निकले तथा हस्तिनापुर नगर के मध्य भाग से होकर जहाँ बल राजा का श्रेष्ठ राजप्रासाद था, वहाँ आये। आकर दोनों हाथ जोड़ जय-विजय शब्दों से बल राजा को बधाया—उसका अभिवादन किया।

तदनन्तर बल राजा द्वारा वंदित, पूजित-सत्कारित और सम्मानित किए हुए वे स्वप्नलक्षण-पाठक अपने लिए पहले से रखे हुए भद्रासनों पर बैठे।

१२. तए णं से बले राया पभावइं देविं जवणियन्तरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—'एवं खलु, देवाणुप्पिया! पभावई देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, तं णं, देवाणुप्पिया! एयस्स ओरालस्स जाव के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ?

[१२] तब बल राजा ने प्रभावती देवी को बुलाकर यवनिका के पीछे बिठाया और हाथों में पुष्प-फल लेकर अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्नलक्षणपाठकों से इस प्रकार निवेदन किया—

'देवानुप्रिय! आज तथारूप (पूर्ववर्णित) वासगृह में शयन करते हुए प्रभावती देवी स्वप्न में सिंह को देखकर जाग्रत हुई है, तो हे देवानुप्रियो! इस उदार यावत् मंगलरूप स्वप्न का क्या कल्याणकारक फल विशेष होगा?

१३. तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा बलस्स रन्नो अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ तं सुविणं ओगिण्हन्ति, ईहं अणुप्पविसन्ति, तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेन्ति, करेत्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेन्ति, तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा बलस्स रन्नो पुरओ सुविणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरि सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिया, तित्थगरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थगरंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ताणं पडिबुज्झन्ति, तं जहा—

'गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुम्भं।
पउमसर-सागर-विमाण-भवण-रयणुच्चय-सिहिं च॥

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं सत्त महासुविणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति। बलदेवमायरो बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति। मंडलियमायरो मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अन्नयरं एगं महासुविणं पासित्ताणं पडिबुज्झन्ति। इमे य णं, देवाणुप्पिया! पभावईए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! रज्जलाभो देवाणुप्पिए! एवं खलु देवाणुप्पिए! पभावई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव वीइक्कन्ताणं तुम्हं कुलकेउं जाव पयाहिइ। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा। तं ओराले णं देवाणुप्पिया! पभावईए देवीए सुविणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउअं कल्लाणं जाव दिट्ठे।'

[१३] राजा के इस प्रश्न को सुनकर और अवधारित कर उन स्वप्नपाठकों ने हृष्ट-तुष्ट होकर उस स्वप्न के विषय में सामान्य विचार किया। फिर विशेष विचार किया। स्वप्न के अर्थ

का निश्चय किया। आपस में एक-दूसरे से विचार-परामर्श किया और स्वप्न के अर्थ को स्वयं जानकर एक-दूसरे से पूछकर, जिज्ञासा का समाधान कर और अर्थ का भलीभांति निर्णय करके, स्वप्नशास्त्र के मत को कहते हुए बल राजा ने इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! हमने स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न सब मिलाकर बहत्तर स्वप्न देखे हैं। देवानुप्रिय ! उनमें से तीर्थंकर की माताएँ तथा चक्रवर्ती की माताएँ जब तीर्थ या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं तो तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागती हैं। यथा—

१. हाथी २. बैल. ३. सिंह ४. अभिषेक ५. पुष्पमाला ६. चन्द्र ७. सूर्य ८. ध्वजा ९. कलश १०. पद्मसरोवर ११. सागर १२. भवन अथवा विमान १३. रत्नराशि १४. निर्धूम अग्नि।

इन चौदह महास्वप्नों में से वासुदेव की माता जब वासुदेव गर्भ में आते हैं तब कोई भी सात महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं। जब बलदेव गर्भ में आते हैं, तब उनकी माताएँ इन चौदह महास्वप्नों में से कोई चार महास्वप्न देखती हैं। मांडलिक राजा के गर्भ में आने पर उसकी माता इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखती हैं।

देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने इनमें से एक महास्वप्न देखा है। देवानुप्रिय ! इससे आपको अर्थलाभ होगा, देवानुप्रिय ! भोगलाभ होगा, देवानुप्रिय ! पुत्रलाभ होगा, देवानुप्रिय ! राज्य का लाभ होगा, देवानुप्रिय ! नौ मास और साढे सात दिन बीतने पर प्रभावती देवी आपके कुल में ध्वज के समान (यावत्) पुत्र को जन्म देगी और वह बालक भी बाल्यावस्था पारकर यावत् राज्याधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा।

अतएव हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी ने यह उदार स्वप्न देखा है यावत्, तुष्टि, दीर्घायुष्य और कल्याणकारी स्वप्न देखा है।

१४. तए णं से बले राया सुविणलक्खणपाढगाणं अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एवं वयासी—'एवमेयं, देवाणुप्पिया ! जाव से जहेयं तुब्भे वयह' त्ति कट्टु तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविणलक्खणपाढए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गन्ध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ संमाणेइ, संमाणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव पभावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं जाव संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरि सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिए तित्थगरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तं चेव जाव अन्नयरं एगं महासुविणं पासित्ताणं पडिबुज्झन्ति। इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए ! एगे महासुविणे दिट्ठे, तं ओराले णं तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे, जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा, तं ओराले णं तुमे, देवी ! सुविणे दिट्ठे' त्ति कट्टु पभावइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं जाव दोच्चं पि तच्चं पि अणुबूहइ।

[१४] स्वप्नलक्षणपाठकों से उपर्युक्त स्वप्न-फल सुनकर एवं अवधारित कर बल राजा हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह हाथ जोड़कर यावत् अंजलि करके उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार बोला—

देवानुप्रियो ! जैसा आपने स्वप्नफल बताया है, वह उसी प्रकार है। इस प्रकार कहकर उसने स्वप्न के अर्थ को समीचीन रूप में स्वीकार किया और फिर उन स्वप्नलक्षण-पाठकों का विपुल अशन पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कृत सम्मानित करके आजीविका के योग्य पुष्कल प्रीतिदान देकर उन्हें विदा किया।

इसके बाद सिंहासन से उठकर जहाँ प्रभावती देवी थी, वहाँ आया। आकर इष्ट, कान्त यावत् वार्तालाप करते हुए प्रभादेवी से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! स्वप्नशास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न सब मिलाकर बहत्तर स्वप्न बताए हैं। उनमें से देवानुप्रिये ! तीर्थंकर की माता अथवा चक्रवर्ती की माता चौदह स्वप्न देखती हैं, इत्यादि पूर्वोक्त कथन यहाँ जान लेना चाहिए। देवानुप्रिये ! तुमने इनमें से एक महास्वप्न देखा है। देवी ! तुमने इनमें से एक उत्तम महास्वप्न देखा है यावत् जन्म लेकर बालक राज्याधिपति राजा होगा। अथवा भावितात्मा अनगार होगा। देवी ! तुमने श्रेष्ठ स्वप्न को देखा है, इस प्रकार से इष्ट, कान्त यावत् मधुर वाणी से दो तीन बार (बारबार) कहकर प्रभावती देवी की प्रशंसा की।

१५. तए णं सा पभावई देवी बलस्स रन्नो अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं वयासी—'एवमेयं देवाणुप्पिया ! जाव तं सुविणं सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता बलेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्त जाव अब्भुट्ठेइ। अतुरियमचवल जाव गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणमणुपविट्ठा।

[१५] तब प्रभावती देवी बल राजा का कथन सुनकर और हृदयंगत कर हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय ! यह ऐसा ही है, जैसा आप कहते है यावत् उसने स्वप्नफल को भलीभांति ग्रहण किया। बल राजा की अनुमति लेकर अनेक प्रकार के मणिरत्नों के चित्रामों से युक्त भद्रासन से उठी और विना किसी शीघ्रता तथा चपलता के यावत् (हंस) गति से चलकर अपने आवासगृह में आई। भवन में प्रविष्ट हुई।

१६. तए णं सा पभावई देवी ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं नाइउण्हेहिं नाइतित्तेहिं नाइकडुएहिं नाइकसाएहिं नाइमहुरेहिं उउभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायणगन्धमल्लेहिं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणाणुकुलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला संमाणियदोहला अविमाणियदोहला वोच्छिन्नदोहला विणीयदोहला ववगयरोगमोहभयपरित्तासा तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तए णं सा पभावई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाणं वीइक्कताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपञ्चिन्दियसरीरं लक्खणवञ्जणगुणोववेयं जाव ससिसोमाकारं कन्तं पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया॥

[१६] तत्पश्चात् प्रभावती देवी ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् सर्व अलंकारों से विभूषित होकर न अत्यन्त शीतल, न अतीव उष्ण, न अति तिक्त, कटुक, काषायिक, मधुर किन्तु

प्रत्येक ऋतु के अनुकूल, गर्भ के लिए हितकारी, मित, पथ्य, गर्भ को पोषण करने वाले देश और काल के अनुसार आहार करती हुई, विविक्त-एकान्त में सुकोमल शैया आसन पर सोते-बैठते अत्यन्त सुखद, मनोनुकूल विहार भूमि में विचरण करते हुये प्रशस्तदोहद, संपन्नदोहद, सम्मानितदोहद, सत्कारितदोहद, विच्छिन्नदोहद, व्यपनीतदोहद वाली होकर तथा राग, मोह, भय, परित्रास रहित होकर उस गर्भ का सुखपूर्वक पोषण करने लगी।

इस प्रकार से परिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन के बीतने पर प्रभावती देवी ने सुकुमाल हाथ-पैर वाले, निर्दोष प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिययुक्त शरीर वाले तथा लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त यावत् चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन, सुरूप पुत्र का प्रसव किया।

१७. तए णं तीसे पभावईए देवीए अङ्गपडियारियाओ पभावइं देविं पसूयं जाणेत्ता जेणेव बले राया तेणेव उवागच्छन्ति, करयल जाव बलं रायं जएणं विजएणं वद्धावेन्ति, वद्धावित्ता एवं वयासी—'एवं खलु, देवाणुप्पिया! पभावईपियट्ठयाए पियं निवेदेमो, पियं ते भवउ।'

तए णं से बले राया अङ्गपडियारियाणं अन्तियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव धाराहयणीव जाव रोमकूवे तासिं अङ्गपडियारियाणं मउडवज्जं जहामालियं ओमेयं दलयइ, सेयं रययामयं विमलसलिलपुण्णं भिङ्गारं च गिण्हइ, गिण्हित्ता मत्थए धोवइ, धोवित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ संमाणेइ पडिविसज्जेति॥

[१७] तत्पश्चात् प्रभावती देवी की अंगपरिचारिकाएँ प्रभावती देवी के पुत्रप्रसव को जानकर जहाँ बल राजा था, वहाँ आईं। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर यावत् जय-विजय शब्दों से बल राजा को बधाई दी। फिर इस प्रकार निवेदन किया—'देवानुप्रिय! प्रभावती देवी की प्रीति के लिए हम प्रिय (समाचार) निवेदन करती हैं। आपको प्रिय हो।'

तब बल राजा ने अंगपरिचारिकाओं से इस वृत्तान्त को सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित, संतुष्ट यावत् मेघधारा से सिंचित नीप-कुटज पुष्प के समान रोमांचित हो उन अंग-परिचारिकाओं को मुकुट को छोड़कर शेष समस्त धारण किए हुए आभूषण उतारकर पारितोषिक रूप में दे दिए और फिर श्वेत रजतमय निर्मल पानी से भरे हुए भृंगार-कलश को लिया, लेकर उनका मस्तक धोया, अर्थात् उन्हें दासीपन से मुक्त किया। उन्हें जीवन-निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर सत्कारित-सम्मानित कर विदा किया।

१८. तए णं से बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव, भो देवाणुप्पिया! हत्थिणापुरे नयरे चारगसोहणं करेह, करेत्ता माणुम्माणवड्ढणं करेह, करेत्ता हत्थिणापुरं नगरं सब्भिन्तरबाहिरियं आसियसंमज्जिओवलित्तं जाव करेह कारवेह, जूयसहस्सं वा चक्कसहस्सं वा पूयामहामहिमसक्कारं वा उस्सवेह, उस्सवेहित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा बलेणं रन्ना एवं वुत्ता जाव पच्चप्पिणन्ति।

तए णं से बले राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तं चेव जाव मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ। उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदण्डकोदण्डिमं अधरिमं

गणियावरनाडइज्जकलियं अणगतालाचराणुचरियं अणुद्धुयमुइङ्गं अमिलायमल्लादामं पमुइयपक्कीलियं सपुरजणजाणवयं दसदिवसे ठिइवडियं करेइ।

तए णं से बले राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए सइए य साहस्सिए सयसाहस्सिए य जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावमाणे य, सए य साहस्सिए य लम्भमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छावेमाणे एवं विहरइ।

[१८] तत्पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में कारागृह से बन्दियों को मुक्त करो और मान-उन्मान (माप-तोल) की वृद्धि करो। हस्तिनापुर नगर को भीतर और बाहर छिड़काव कर, बुहारकर, साफ-स्वच्छ करो और करवाओ। पूजा महिमा और सत्कार के लिए यूप सहस्रों और चक्र सहस्रों को सजाओ और मुझे कार्य होने की सूचना दो।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने बल राजा के इस आदेश को सुनकर हर्षित हो यावत् वापस कार्य पूर्ण होने की सूचना दी।

तत्पश्चात् बल राजा व्यायामशाला में आया इत्यादि पूर्ववत् स्नानगृह से निकला। फिर दस दिन तक निःशुल्क (मूल्य न लेना) कर मुक्त, क्रय-विक्रय, मान-उन्मान का वर्द्धन, ऋण मुक्त धरणा देने का निषेध, घर में सुभटों का प्रवेश निषेध कर तथा अनेक गणिकाओं के नृत्य-गान और अनेक तालानुचरों द्वारा निरन्तर बजाए जा रहे मृदंगों के साथ अम्लान मालाओं द्वारा नगर को विभूषित करते हुए नगरवासी और देशवासी जनों सहित स्थितिपतिका महोत्सव—पुत्रजन्मोत्सव मनाया।

इस दस दिवसीय पुत्र-जन्मोत्सव में बल राजा ने सैकड़ों-हजारों-लाखों रुपये व्यय करते हुए, देते हुए, दिलवाते हुए एवं इसी प्रकार सैकड़ों हजारों और लाखों रुपयों की भेंट उपहार में लेते और देते हुए समय व्यतीत किया।

१९. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइवडियं करेइ, तइए दिवसे चन्दसूरदंसणियं करेइ, छट्ठे दिवसे जागरियं करेइ, एक्कारसमे दिवसे वीइक्कन्ते निव्वुत्ते असुइजायकम्मकरणे, संपत्ते बारसाहदिवसे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावेत्ता जहा सिवो, जाव खत्तिए य आमन्तेन्ति, आमन्तेत्ता, तओ पच्छा ण्हाया कय० तं चेव जाव सक्कारेन्ति संमाणेन्ति, संमाणित्ता तस्सेव मित्तणाइ जाव राईण य खत्तियाण य पुरओ अज्जयपज्जयपिउपज्जयागयं बहुपुरिसपरंपरप्परूढं कुलाणुरूवं कुलसरिसं कुलसंताणतन्तुवद्धणकरं अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेन्ति—'जम्हा णं अम्हं इमे दारए बलस्स रन्नो पुत्ते पभावईए देवीए अत्तए; तं होउ णं अम्हं एयस्स दारगस्स नामधेज्जं महब्बले।' तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेन्ति 'महब्बले' त्ति॥

[१९] तत्पश्चात् उस दारक के माता-पिता ने पहले दिन स्थितिपतिका की। तीसरे दिन बालक को सूर्य-चन्द्र का दर्शन कराया। छठे दिन जागरणरूप उत्सव विशेष किया और ग्यारह

दिन व्यतीत होने पर जन्म सम्बन्धी अशुचि निवृत्ति का कार्य करके बारहवें दिन विपुल अशन, पान, खाद्य स्वाद्य पदार्थ बनवाए और शिव राजा के समान यावत् मित्रों तथा क्षत्रियों आदि को आमंत्रित किया तत्पश्चात् स्नान एवं बलि-कर्म किये हुये बल राजा ने भोजन आदि द्वारा उनका सत्कार-सम्मान किया। फिर उन्हीं मित्रों, जाति बन्धुओं यावत् राजन्यों और क्षत्रियों के समक्ष पितामह, पिता, प्रपितामह आदि से चली आ रही कुलपरम्परा के अनुसार कुलानुरूप, कुलोचित, कुलसंतान (परम्परा) की वृद्धि करने वाला इस प्रकार का यह गुण-युक्त और गुण-निष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि हमारा यह बालक बल राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, अतएव हमारे इस बालक का नाम 'महाबल' हो। तब उस बालक के माता-पिता ने उसका 'महाबल' यह नामकरण किया।

२० तए णं से महब्बले दाए पञ्चधाईपरिग्गहिए, तं जहा—खीरधाईए, एवं जहा दढपइन्ने, जाव निवायनिव्वाघायंसि सुहं सुहेणं परिवड्ढइ।

तए णं तस्स महब्बलस्स दारगस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं वा चंदसूरदंसावणियं वा जागरियं वा नामकरणं वा परंगामणं वा पयचंकमणं वा जेमामणं वा पिण्डवद्धणं वा पज्जपावणं वा कण्णवेहणं पा संवच्छरपडिलेहणं वा चोलोयणगं वा उवणयणं वा अन्नाणि य बहूणि गब्भाधाण-जम्मणमाइयाइं कोउयाइं करेन्ति।

[२०] तत्पश्चात् वह महाबल बालक क्षीरधात्री आदि पांच धाय माताओं द्वारा दृढ़-प्रतिज्ञ कुमार के समान पालन किया जाता हुआ निर्वात और निर्व्याघात स्थान में रहे हुये चंपक वृक्ष के समान सुखपूर्वक परिवर्धित होने—बढ़ने लगा। इसके बाद उस महाबल बालक के माता-पिता ने अनुक्रम से स्थितिपतिका जन्म दिवस से लेकर चन्द्र-सूर्य दर्शन, जागरण, नामकरण, परंगामण घुटनो चलना, पदचंक्रमण—पैरों से चलना, अन्नप्राशन, पिण्डवर्धन, (भोजन की मात्रा बढ़ाना), सभाषण करना, कर्णवेधन, वर्षगांठ, चोलोपनयन (सिरमुण्डन) उपनयन आदि बहुत से गर्भाधान से लेकर जन्ममहोत्सव आदि तक के कौतुक (संस्कार) किए।

२१. तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि, एवं जहा दढप्पइन्नो, जाव अलंभोगसमत्थे जाए यावि होत्था।

तए णं तं महब्बलं कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाव अलंभोगसमत्थं वियाणित्ता अम्मापियरो अट्ठ पासायवडिसए करेन्ति, अब्भुग्गयमूसिए पहसिए इव, वण्णओ जहा रायपसेणइज्जे, जाव पडिरूवे। तेसिं णं पासायवडिसगाणं बहुमज्झदेसभागे एत्थ ण महेगं भवणं करेन्ति अणेगखम्भसयसंनिविट्ठं, वण्णओ जहा रायपसेणइज्जे, पेच्छाघरमण्डवंसि जाव पडिरूवे।

[२१] तत्पश्चात् माता-पिता ने उस महाबल कुमार को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के समान कलाचार्य के पास कलाध्ययन के लिए भेजा यावत् वह भोग भोगने में समर्थ हो गया।

इसके बाद उस महाबल कुमार को बाल्यावस्था को पार कर यावत् भोग भोगने के योग्य

जानकर माता-पिता ने आठ प्रासादावतंसकों का निर्माण कराया। वे प्रासाद अपनी ऊंचाई से आकाश को स्पर्श करते थे इत्यादि जैसा राजप्रश्नीय सूत्र में प्रासादों का वर्णन किया गया है तदनुरूप अतीव मनोहर थे, इत्यादि वर्णन जानना चाहिए।[1] उन प्रासादावतंसकों के ठीक मध्य भाग में एक विशाल भवन का निर्माण कराया। उसमें सैकड़ों खंभे लगे थे, प्रेक्षागृह मण्डप बना था। वह अतीव मनोहर था इत्यादि उसका भी वर्णन राजप्रश्नीय के अनुसार करना चाहिए।[2]

२२. तए णं तं महब्बलं कुमारं अम्मापियरो अन्नया कयावि सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमङ्गलपायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं पमक्खणग-ण्हाण-गीय-वाइय-पसाहणट्ठङ्गतिलककङ्कण अविहववहुउवणीयं मङ्गलसुजम्पिएहि य वरकोउयमङ्गलोवयार-कयसन्तिकम्मं सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं विणोयाणं कयकोउय-मङ्गलपायच्छित्ताणं सरिसएहिंतो रायकुलेहिंतो आणिल्लियाणं अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।

[२२] तत्पश्चात् माता-पिता ने किसी समय शुभ-तिथि, करण, दिन, नक्षत्र और मुहूर्त्त में महाबल कुमार को स्नान, बलिकर्म और कौतुक मांगलिक प्रायश्चित्त कराकर सर्व अलंकारों से विभूषित किया। उबटन, स्नान, गीत, वाद्य, प्रसाधन, तिलक आदि करके कंकण आदि पहनाए, सौभाग्यवती नारियों ने मंगलगान किया, उत्तम कौतुक, मंगलोपचार और शान्तिकर्म किए गये। समान, समान त्वचा, समान वय, समान लावण्य, रूप एवं यौवन गुण से युक्त विनीत, समान राजकुलों से लाई हुई आठ उत्तम राजकन्याओं से उसका एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया।

२३. तए णं तस्स महाबलस्स कुमारस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं पीइदाणं दलयन्ति, तं जहा—अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, अट्ठ मउडे मउडप्पवरे, अट्ठ कुण्डलजुए कुण्डलजुयप्पवरे, अट्ठ हारे हारप्पवरे, अट्ठ अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, अट्ठ एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एवं अट्ठ मुत्तावलीओ, एवं कणगावलीओ एवं रयणावलीओ, अट्ठ कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए-अट्ठ खोमजुयलाइं खोमजुयलप्पवराइं एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं, अट्ठ सिरीओ, अट्ठ हिरीओ, एवं धिईओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, अट्ठ नन्दाइं, अट्ठ भद्दाइं, अट्ठ तले तलप्पवरे, सव्वरयणामाए, णियगवरभवणकेऊ, अट्ठ झए झयप्पवरे, अट्ठ वए वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अट्ठ नाडगाइं, नाडगप्पवराइं बत्तीसबद्धेणं नाडएणं, अट्ठ आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे, सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए,, अट्ठ जाणाइं जाणप्पवराइं, अट्ठ जुगाइं जुगप्पवराइं एवं सिवियाओ, एवं सन्दमाणीओ, एवं गिल्लीओ, थिल्लीओ, अट्ठ वियडजाणाइं वियडजाणप्पवराइं, अट्ठ रहे पारिजाणिए, अट्ठ रहे संगामिए, अट्ठ आसे आसप्पवरे, अट्ठ हत्थी हत्थिप्पवरे, अट्ठ गामे गामप्पवरे, दसकुलसाहस्सिएणं गामेणं, अट्ठ दासे दासप्पवरे, एवं चेव दासीओ, एवं किङ्करे एवं कञ्चुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, अट्ठ सोवण्णिए ओलम्बण-

१-२. राजप्रश्नीय सूत्र ५० (आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर)

दीवे, अट्ठ रुप्पामए ओलम्बणदीवे, अट्ठ सुवण्णरुप्पामए ओलम्बणदीवे, अट्ठ सोवण्णिअ उक्कञ्चणदीवे, अट्ठ पञ्जरदीवे, एवं चेव तिण्णि वि, अट्ठ सोवण्णिए थाले, रुप्पामए थाले, अट्ठ सुवण्णरुप्पमए थाले, अट्ठ सोवण्णियाओ पत्तीओ ३, अट्ठ सोवण्णियाइं थासयाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, अट्ठ सोवण्णियाओ तालियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ कावइआओ ३, अट्ठ सोवण्णिए अवएडए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पायपीढए ३, अट्ठ सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, अट्ठ सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, अट्ठ सोवण्णिए पल्लंके ३, अट्ठ सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, अट्ठ हंसासणाइं कोञ्चासणाइं, एवं अट्ठ गरुलासणाइं, उन्नयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दासणाइं, पक्खासणाइं, मगरासणाइं, अट्ठ पउमासणाइं, अट्ठ दिसासोवत्थियासणाइं, अट्ठ तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठ सरिसवसमुग्गे, अट्ठ खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव अट्ठ पारिसीओ, अट्ठ छत्ते, अट्ठ छत्तधारीओ चेडीओ, अट्ठ चामराओ, अट्ठ चामरधारीओ चेडीओ, अट्ठ तालियण्टे, अट्ठ तालियण्टधारीओ चेडीओ, अट्ठ करोडियाधारीओ चेडीओ, अट्ठ खीरधाईओ, जाव अट्ठ अङ्कधाईओ, अट्ठ अङ्गमद्दियाओ, अट्ठ ण्हावियाओ, अट्ठ पसाहियाओ, अट्ठ वण्णगपेसीओ, अट्ठ चुण्णगपेसीओ, अट्ठ कोट्ठागारीओ, अट्ठ दवकारीओ, अट्ठ उवत्थाणियाओ, अट्ठ नाडइज्जाओ, अट्ठ कोडुम्बिणीओ, अट्ठ महाणसिणीओ, अट्ठ भाण्डागारिणीओ, अट्ठ अज्झाधारिणीओ, अट्ठ पुप्फधारिणीओ, अट्ठ पाणिधारिणीओ, अट्ठ बलिकारीओ, अट्ठ सेज्जाकारीओ, अट्ठ अभिन्तरियाओ, पडिहारीओ, अट्ठ बाहिरियाओ पडिहारीओ, अट्ठ मालाकारीओ, अट्ठ पेसणकारीओ अन्नं वा सुबहुं हिरण्णं वा कंसं वा दूसं वा विउलधणकणग जाव सन्तसारसावएज्जं, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं ।

तए णं से महब्बले कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडिं दलयइ, एगमेगं मउडं मउडप्पवरं दलयइ, एवं तं चेव सव्वं जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अन्नं वा सुबहुं हिरण्णं वा जाव परिभाएउं ।

तए णं से महब्बले कुमारे उप्पिं पासायवरगए जहा जमाली जाव विहरइ ।

[२३] तब माता-पिता ने उस महाबल कुमार को यह और इस प्रकार प्रीतिदान दिया—आठ कोटि हिरण्य (चांदी की) मुद्राएं, आठ कोटि स्वर्ण मुद्राएं, आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुंडल-युगल, आठ श्रेष्ठ हार, आठ उत्तम अर्ध हार, आठ उत्तम एकावली हार, इसी प्रकार आठ मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, आठ उत्तम कटक युगल, त्रुटित युगल (बाजूबन्दों की जोड़ी), उत्तम आठ क्षौम युगल (रेशमी वस्त्रों की जोड़ी) । इसी प्रकार वटक युगल (वस्त्र विशेष की जोड़ी) आठ उत्तम सूती वस्त्र-युगल, आठ दुकूल युगल, आठ श्री, आठ ह्री, आठ-आठ धृत्ति, कीर्ति, बुद्धि; एवं लक्ष्मी की प्रतिकृतियाँ, आठ नन्द, आठ भद्र, आठ उत्तम तल ताड़ वृक्ष दिए, जो सभी रत्न निर्मित थे । अपने उत्तम भवन की केतु (चिह्न) रूप आठ श्रेष्ठ ध्वजा, दस हजार गायों के एक व्रज के हिसाब से आठ व्रज-गोकुल, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले एक नाटक के हिसाब से आठ

नाटक, आठ उत्तम अश्व (घोड़े) दिए जो सभी रत्नों से बने हुए थे और श्रीगृह-कोष के प्रतिरूप थे। आठ उत्तम हाथी दिये। ये भी रत्नों के बने हुए और भांडागार के समान शोभासम्पन्न थे। आठ यान प्रवर (श्रेष्ठ रथ), आठ उत्तम युग्य (एक प्रकार का वाहन) इसी प्रकार आठ-आठ शिविकाएँ, स्यन्दमानी, गिल्ली, थिल्ली (यान विशेष), विकट यान (खुले रथ) पारियानिक (क्रीड़ा रथ), सांग्रामिक रथ (युद्ध में काम आने वाले रथ), आठ अश्व प्रवर, आठ श्रेष्ठ हाथी, दस हजार घरों वाले श्रेष्ठ आठ ग्राम, आठ श्रेष्ठ दास, ऐसे ही आठ दासी, आठ उत्तम किंकर, कंचुकी, वर्षधर (अन्तःपुर रक्षक) महत्तरक, आठ सोने के, आठ चांदी के, आठ सोने-चांदी के अवलंबन दीप (लटकने वाले दीपक—झाड़फानूस), आठ स्वर्ण के, आठ चांदी के और आठ स्वर्ण-चांदी के उत्कंचन दीपक (दंड युक्त दीपक—समाई), इसी तरह तीन प्रकार के पंजर दीप, आठ स्वर्ण के थाल, आठ चांदी के थाल, आठ स्वर्ण-रजतमय थाल, आठ सोने, चांदी और सोने-चांदी की पात्रियां, आठ तसलियां, आठ मल्लक (कटोरे) आठ तलिका (रकाबियां) आठ कलाचिका (चमचा-सींका), आठ अवएज (पात्र-विशेष—तापिका हस्तक—संडासी) आठ अवयक्क (चीमटा) आठ पादपीठ (बाजौठ) आठ भिषिका (आसन विशेष), आठ करोटिका (लोटा), आठ पलंग, आठ प्रतिशैया (खाट) आठ-आठ हंसासन, क्रौंचासन, गरुडासन, उन्नतासन, प्रणतासन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्षासन, मकरासन, दिशासौवस्तिकासन, तथा आठ तेलसमुद्गक आदि राजप्रश्नीय सूत्रगत वर्णन के समान यावत् आठ सर्षपसमुद्गक, आठ कुब्जा दासी, इत्यादि औपपातिक सूत्र के अनुसार यावत् आठ पारस देश की दासियां, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी चेटिकाएँ, आठ चामर, आठ चामरधारिणी चेटिकाएँ, आठ पंखे, आठ पंखाधारिणी चेटिकाएँ, आठ करोटिका धारिणी चेटिकाएँ, आठ क्षीर धात्रियां (दूध पिलाने वाली धायें) यावत् आठ अंकधात्रियां, आठ अंगमर्दिकाएँ, आठ स्नान कराने वाली दासियाँ, आठ प्रसाधन (शृंगार) करने वाली दासियां, आठ वर्णक (चंदन आदि विलेपन) पीसने—घिसने वाली दासियां, आठ चूर्ण पीसने वाली दासियां, आठ कोष्ठागार में काम करने वाली दासियाँ, आठ हास-परिहास करने वाली दासियाँ, आठ अंगरक्षक दासियाँ, आठ नृत्य-नाटककारिणी दासियाँ, आठ कौटुम्बिक दासियाँ (अनुचरी) आठ रसोई बनाने वाली दासियां, आठ भंडागारिणी (भंडार में काम करने वाली) दासिया, आठ पुस्तकें आदि पढ़कर सुनाने वाली दासियां, आठ पुष्पधारिणी दासिया, आठ जल लाने वाली दासियां, आठ वलिकर्म करने वाली (लौकिक मांगलिक कार्य करने वाली) दासियां, आठ सेज बिछाने वाली, आठ आभ्यन्तर और आठ बाह्य प्रतिहारी दासियां, आठ माला गूथने वाली दासिया, आठ प्रेषणकारिणी दासियां (संदेशवाहक दासिया) तथा इनके अतिरिक्त बहुत सा हिरण्य, स्वर्ण, वस्त्र और विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन-वैभव दिया, जो सात कुलवश परंपरा तक इच्छानुसार देने, भोग-परिभोग करने के लिए पर्याप्त था।

उस महाबल कुमार ने भी अपनी प्रत्येक पत्नी को एक-एक हिरण्य कोटि-स्वर्ण कोटि दी, एक एक उत्तम मुकुट दिया, इस प्रकार पूर्वोक्त सभी वस्तुएं यावत् एक-एक दूती दी तथा बहुत सा हिरण्य-स्वर्ण आदि दिया, जो सात पीढी तक भोगने के लिए पर्याप्त था।

तत्पश्चात् वह महाबल कुमार जमाली के समान यावत् प्रासाद में रहकर आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करने लगा।

२४. तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे जाइ-संपन्ने, वण्णओ, जहा केसिसामिस्स, जाव पञ्चहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे

गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे, जेणेव सहसम्बवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं हत्थिणापुरे नगरे सिंघाडगतिय० जाव परिसा पज्जुवासइ।

[२४] उस काल और उस समय केशी स्वामी के समान जातिसम्पन्न आदि विशेषणों से युक्त अर्हत् विमल के प्रपौत्र शिष्य (शिष्यानुशिष्य) धर्मघोष नामक अनगार यावत् पांच सौ अनगारों के साथ अनुक्रम से विहार करते हुए ग्रामानुग्राम गमन करते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवन उद्यान में पधारे और यथायोग्य अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तब हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, त्रिकों आदि में उनके आगमन की चर्चा होने लगी यावत् परिषद पर्युपासना करने लगी।

२५. तए णं तस्स महब्बलस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं वा जणवूहं वा एवं जहा जमाली तहेव चिन्ता, तहेव कञ्चुइज्जपुरिसं सद्दावेइ, कञ्चुइज्जपुरिसो वि तहेव अक्खाइ, नवरं धम्मघोसस्स अणगारस्स आगमणगहियविणिच्छए करयल० जाव निग्गच्छइ। एवं खलु देवाणुप्पिया, विमलस्स अरहओ पउप्पए धम्मघोसे नामं अणगारे, सेसं तं चेव जाव सो वि तहेव रहवरेणं निग्गच्छइ। धम्मकहा जहा केसिसामिस्स। सो वि तहेव अम्मापियरो आपुच्छइ, नवरं धम्मघोसस्स अणगारस्स अन्तियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तहेव वुत्तपडिवुत्तया, नवरं इमाओ य ते जाया, विउलरायकुलबालियाओ, कला० सेसं तं चेव जाव ताहे अकामाइं चेव महब्बलकुमारं एवं वयासी—'तं इच्छामो ते, जाया, एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए।'

तए णं से महब्बले कुमारे अम्मापियराणं वयणमणुयत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

[२५] तत्पश्चात् उस महाबल कुमार ने उस महान् जन-कोलाहल को सुनकर और जन-समूह एक ही दिशा में जाते देखकर जमालिकुमार के समान विचार किया। कंचुकी पुरुषों को बुलाया। कंचुकी पुरुषों ने उसी प्रकार कारण बतलाया। किन्तु इतना अन्तर है कि उन कंचुकी पुरुषों ने धर्मघोष अनगार के आगमन के निश्चित समाचार जानकर हाथ जोड़ महाबल कुमार से निवेदन किया—देवानुप्रिय ! अर्हत् विमल प्रभु के प्रपौत्र शिष्य धर्मघोष अनगार यहाँ पधारे हैं, यावत् जनसमूह उनकी उपासना करने जा रहा है। शेष वर्णन उसी प्रकार है यावत् वह महाबल कुमार भी जमाली की तरह उत्तम रथ पर आरूढ़ होकर दर्शन-वंदनार्थ निकला।

धर्मघोष अनगार ने केशी स्वामी के समान धर्मोपदेश दिया। उस महाबल कुमार ने भी उसी प्रकार माता-पिता से पूछा किन्तु अन्तर यह है कि धर्मघोष अनगार के पास मुंडित होकर अगार त्याग कर अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित होना चाहता हूँ, ऐसा कहा।

जमालि कुमार के समान महाबल कुमार और उसके माता-पिता के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर हुए यावत् उन्होंने कहा—हे पुत्र ! यह विपुल धन और उत्तम राज्यकुल में उत्पन्न हुई, कलाओं में कुशल आठ बालाओं को त्याग कर अभी दीक्षा मत लो आदि यावत् जब माता-पिता उसे समझाने में

समर्थ नहीं हुए तब अनिच्छापूर्वक महाबलकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! एक दिन के लिए ही सही किन्तु हम तुम्हारी राज्यश्री को देखना चाहते हैं ।'

तब महाबल कुमार माता-पिता को उत्तर न देकर मौन ही रहा ।

२६. तए णं से बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ एवं जहा सिवभद्दस्स तहेव रायाभिसेओ भाणियव्वो, जाव अभिसिञ्चइ । करयलपरिग्गहियं महब्बलं कुमारं जएणं विजएणं बद्धावेन्ति, बद्धाविता जाव एवं वयासी—'भण, जाया, किं पयच्छामो,' सेसं जहा जमालिस्स तहेव, जाव ।

[२६] तत्पश्चात् बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । यावत् महाबल कुमार को शिवभद्र के समान राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया, इत्यादि वर्णन यहाँ जान लेना चाहिए । अभिषेक के पश्चात् दोनों हाथ जोड़ जय-विजय शब्दों से महाबल कुमार को बधाया, यावत् इस प्रकार कहा –हे पुत्र ! बताओ हम तुम्हें क्या दें ? इत्यादि शेष समस्त वर्णन जमालि के समान जानना चाहिए ।

२७. तए णं से महब्बले अणगारे धम्मघोसस्स अन्तियं सामाइयाइं चोद्दस्स पुव्वाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए आलोइय पडिक्कन्ते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चन्दिमसूरियं जहा अम्मडो, जाव बम्भलोए कप्पे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता, तत्थ णं महब्बलस्स वि दस सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता ।

तत्पश्चात् महाबल अनगार ने धर्मघोष स्थविर के पास सामायिक से प्रारम्भ कर चौदह पूर्वों का अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत से चतुर्थभक्त (उपवास) यावत् विविध विचित्र तपः-कर्म से आत्मा को भावित-शोधित करते हुए परिपूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया, पालन करके एक मास की संलेखना पूर्वक साठ भक्तों का अनशन द्वारा त्याग कर आलोचना—प्रतिक्रमण करते हुए समाधि सहित काल मास में कालप्राप्त हो यावत् अम्बड के समान ऊर्ध्व दिशा में चन्द्र सूर्य आदि से बहुत दूर ऊपर ब्रह्मलोक कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुए । वहाँ कितने ही देवों की दस सागरोपम की स्थिति होती है । महाबल देव की भी दस सागर की स्थिति हुई ।

(हे सुदर्शन ! तुम पूर्वभव में दस सागरोपम पर्यन्त दिव्य भोगोपभोगों को भोगकर आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर इसी वाणिज्यग्राम नगर के श्रेष्ठी कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न हुए हो ।)

(भगवतीसूत्र शतक ११, उद्देशक ११ से)

दृढप्रतिज्ञ : (सम्बद्ध अंश)

१. तए णं तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणनक्खत्तमुहुत्तंसि ण्हाणं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता महया इड्ढिसक्कारसमुदएणं कलायरियस्स उवणेहिन्ति ।

[१] तत्पश्चात् दृढप्रतिज्ञ बालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर माता-पिता शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में स्नान, बलिकर्म, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कराके और अलंकारों से विभूषित कर ऋद्धि-वैभव, सत्कार, समारोहपूर्वक कलाशिक्षण के लिए कलाचार्य के पास ले जाएंगे ।

२. तए णं से कलायरिए तं दढपइन्नं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ पसिक्खावेहिइ य सेहावेहिइ य । तं जहा—लेहं गणियं रूवं नट्टं गीयं वाइयं सरगयं पोक्खरगयं समतालं जूयं जणवायं पासगं अट्ठावयं पोरेकव्वं दगमट्टियं अन्नविहिं पाणविहिं वत्थविहिं विलेवणविहिं सयणविहिं अज्जं पहेलियं मागहियं गाहं गीइयं सिलोगं हिरण्णजुत्तिं सुवण्णजुत्तिं चुण्णजुत्तिं आभरणविहिं तरुणीपडिकम्मं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं कुक्कुडलक्खणं छत्तलक्खणं दण्डलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं कागणिलक्खणं वत्थुविज्जं नगरमाणं खन्धवारं चारं पडिचारं वूहं पडिवूहं चक्कवूहं सगडवूहं जुद्धं नियुद्धं जुद्धाइजुद्धं अट्ठिजुद्धं मुट्ठिजुद्धं बाहुजुद्धं लयाजुद्धं ईसत्थं छरुप्पवायं धणुव्वेयं हिरण्णपागं सुवण्णपागं सुत्तखेड्डं वट्टखेड्डं नालियाखेड्डं पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं सज्जीवं निज्जीवं सउणरुयमिति ।

[२] तब कलाचार्य उस दृढप्रतिज्ञ बालक को गणित जिनमें प्रधान है, ऐसी लेख (लिपि) आदि शकुनिरुत (पक्षियों की स्वर ध्वनि—बोली) पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र (मूल) से, अर्थ से (विस्तार से व्याख्या करके), ग्रन्थ से (पठन-पाठन) तथा प्रयोग से सिद्ध करायेंगे, अभ्यास कराएंगे। गणित से शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—१. गणित, २. लेखन, ३. रूप सजाने की कला, ४. नाटक अथवा नृत्य करने की कला, ५. संगीत, ६. वाद्य बजाना, ७. स्वर जानना (ऋषभ, गंधार आदि संगीत स्वरों का ज्ञान), ८. वाद्य सुधारना, ९. गीत और वाद्यों के सुर-ताल की समानता का ज्ञान, १०. द्यूत—जुआ खेलना, ११. वार्तालाप और वाद-विवाद करने की प्रक्रिया का ज्ञान, १२. पासों से खेलना, १३. चौपड़ खेलना, १४. तत्काल काव्य-कविता की रचना करना, १५. जल और मिट्टी को मिलाकर वस्तु निर्माण करना, अथवा जल और मिट्टी के गुणों की परीक्षा करना, १६. अन्न उत्पन्न करने अथवा भोजन बनाने की कला, १७. नया पानी उत्पन्न करना अथवा ओषधि आदि के संयोग-संस्कार से पानी को शुद्ध करना, स्वादिष्ट पेय पदार्थों को बनाना, १८. नवीन वस्त्र

बनाना, वस्त्रों को रंगना, सीना, १९. विलेपन विधि—शरीर पर लेप करने की विधि, २०. शैया बनाने और शयन करने की विधि, २१. मात्रिक छन्दों को बनाना और पहचानना, २२. पहेलियाँ बनाना, २३. मागधिक—मागधी भाषा में गाथा आदि बनाना, २४. निद्रायिका—नींद में सुलाने की कला, २५. प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना, २६. गीति-छन्द बनाना, २७. श्लोक (अनुष्टुप छन्द) बनाना, २८. हिरण्ययुक्ति—चांदी बनाना और चाँदी शुद्ध करना, २९. स्वर्णयुक्ति—स्वर्ण बनाना और स्वर्ण शुद्ध करना, ३०. आभूषण-अलंकार बनाना, ३१. तरुणीप्रतिकर्म—स्त्रियों का शृंगार, प्रसाधन करना, ३२. स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को जानना, ३३. पुरुष के लक्षण जानना, ३४. अश्व के लक्षण जानना, ३५. हाथी के लक्षण जानना, ३६. मुर्गों के लक्षण जानना, ३७. छत्र के लक्षण जानना, ३८. चक्र के लक्षण जानना, ३९. दंड-लक्षण जानना, ४०. असि (तलवार) लक्षण जानना, ४१. मणि-लक्षण जानना, ४२. काकणी (रत्न विशेष) लक्षण जानना, ४३. वास्तुविद्या—गृह, गृहभूमि के गुण दोषों को जानना, ४४. नया नगर बसाने की कला, ४५. स्कन्धावार—सेना के पड़ाव की रचना करने की कला, ४६. मापने-नापने-तोलने के साधनों को जानना, ४७. प्रतिचार—शत्रु सेना के सामने अपनी सेना का संचालन, ४८. व्यूह रचना—मोर्चा जमाना, ४९. चक्रव्यूह—चक्र के आकार की मोर्चाबन्दी करना, ५०. गरुड़व्यूह—गरुड़ के आकार की व्यूह रचना करना, ५१. शकटव्यूह रचना, ५२. सामान्य युद्ध रचना, ५३. नियुद्ध—मल्ल युद्ध करना, ५४. युद्ध-युद्ध—शत्रु सेना की स्थिति के अनुसार युद्ध विधि बदलने की कला, घमासान युद्ध करना, ५५. अट्ठियुद्ध—लकड़ी से युद्ध करना, ५६. मुष्ठियुद्ध करना, ५७. बाहुयुद्ध करना, ५८. लतायुद्ध करना, ५९. इक्ष्वस्त्र—नागबाण आदि विशिष्ट बाणों के प्रक्षेपण की विधि, ६०. तलवार चलाने की कला, ६१. धनुर्वेद—धनुषबाण सम्बन्धी कौशल, ६२. चाँदी का पाक बनाना, ६३. सोने का पाक बनाना, ६४. मणियों के निर्माण की कला, अथवा मणियों की भस्म आदि औषध बनाना, ६५. धातु पाक—औषध के लिए अभ्रक आदि की भस्म बनाना, ६६. सूत्र-खेल—रस्सी पर खेल, तमाशे, क्रीड़ा करने की कला, ६७. वृत्त खेल—क्रीड़ा विशेष, ६८. नालिका खेल—जुआ विशेष, ६९. पत्र को छेदने की कला, ७०. पर्वतीय भूमि की छेदने—काटने की कला, ७१. मूर्च्छित को होश में लाने और अमूर्च्छित को मृत तुल्य करने की कला, ७२. काक, घूक आदि पक्षियों की बोली और उसके शुभ-अशुभ शकुन का ज्ञान।

३. तए णं से कलायरिए तं दढपइन्नं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्ज-वसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गन्थओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेहिइ।

[३] तत्पश्चात् कलाचार्य गणित, लेखन आदि से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र (मूल पाठ) अर्थ-व्याख्या एवं प्रयोग से सिखला कर, सिद्ध कराकर दृढ़प्रतिज्ञ बालक को माता-पिता के पास ले जाएंगे।

४. तए णं तस्स दढपइन्नस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइम-साइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारिस्सन्ति संमाणिस्सन्ति, संमाणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्सन्ति, दलइत्ता पडिविसज्जेहिन्ति।

[४] तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक के माता-पिता विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार, वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से कलाचार्य का सत्कार-सम्मान करेंगे और जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान (भेंट) देंगे और देकर ससम्मान विदा करेंगे।

५. तए णं से दढपइन्ने दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते बावत्तरिकलापण्डिए अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए नवङ्गसुत्तपडिबोहए गीयरई गन्धव्वनट्टकुसले सिङ्गारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचिट्ठियविलाससंलावनिउणजुत्तोवयारकुसले हयजोही गयजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलंभोगसमत्थे साहसिए वियालचारी यावि भविस्सइ।

[५] इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ बालक बालभाव से मुक्त हो विज्ञानयुक्त परिपक्व युवावस्था-सम्पन्न हो जाएगा। बहत्तर कलाओं में पंडित होगा, बाल्यावस्था के कारण मनुष्य के जो नौ अंग (दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जीभ, त्वचा और मन) सुप्त-से अर्थात् अव्यक्त चेतना वाले रहते है, वे जागृत हो जाएंगे—अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में सक्षम हो जाएंगे। अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में कुशल हो जाएगा। वह गीत संगीत का अनुरागी और नृत्य में कुशल हो जाएगा। अपने सुन्दर वेष से शृंगार का आगार जैसा प्रतीत होगा। उसकी चाल, हास्य, भाषण, शरीर और नेत्र की भावभंगिमाएं आदि सभी संगत होंगी। पारस्परिक आलाप-संलाप एवं व्यवहार में निपुण-कुशल हो जाएगा। अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध करने एवं अपने बाहुबल से विपक्षी का मर्दन करने में सक्षम एवं भोग भोगने की सामर्थ्य से सम्पन्न हो जाएगा तथा साहसी ऐसा हो जाएगा कि विकालचारी (मध्य रात्रि में इधर-उधर जाना-आना) होगा और उस समय भयभीत नहीं होगा।

६. तए णं तं दढपइन्नं दारगं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं जाव वियालचारिं च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहि य पाणभोगेहि य लेणभोगेहि य वत्थभोगेहि य सयणभोगेहि य उवनिमन्तेहिन्ति।

[६] तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक को बाल्यावस्था से मुक्त यावत् विकालचारी जानकर माता-पिता विपुल अन्न भोगों, पान भोगों, प्रासाद भोगों, वस्त्र भोगों और शैया भोगों के योग्य भोगों को भोगने के लिए आमंत्रित करेंगे—भोगोपभोग भोगने का संकेत करेंगे।

७. तए णं से दढपइन्ने दारए तेहिं विउलेहिं अन्नभोएहिं जाव सयणभोगेहिं नो सज्जिहिइ नो गिज्झिहिइ नो मुच्छिहिइ नो अज्झोववज्जिहिइ। से जहानामए पउमुप्पले इ वा पउमे इ वा जाव सयसहस्सपत्ते इ वा पङ्के जाए जले संवुड्ढे नोवलिप्पइ जलरएणं एवामेव दढपइन्ने वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं संवड्ढिए नोवलिप्पहिइ मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणेणं। से णं तहारूवाणं थेराणं अन्तिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ बुज्झिहित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ। से णं अणगारे भविस्सइ, ईरियासमिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलन्ते।

[७] लेकिन वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक उन विपुल अन्न रूप भोग्य पदार्थो यावत् शयन रूप भोग्य पदार्थों में आसक्त नहीं होगा, गृद्ध नहीं होगा, मूर्च्छित नहीं होगा, और अनुरक्त नहीं होगा। नीलकमल, पद्मकमल यावत् शतपत्र और सहस्रपत्र कमल जैसे कीचड़ में उत्पन्न होते हैं, जल में वृद्धिगत होते हैं, फिर भी वे पंकरज और जलरज से लिप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह दृढप्रतिज्ञ

दारक भी कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों के बीच लालन-पालन किए जाने पर भी उन कामभोगों में एवं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों, परिजनों में अनुरक्त नहीं होगा और तथारूप स्थविरों से केवलबोधि-सम्यग्ज्ञान का लाभ प्राप्त करेगा एवं मुंडित होकर, गृहत्याग कर अनगार-प्रव्रज्या अंगीकार कर ईर्यासमिति आदि अनगार धर्म का पालन करते हुए सुहुत (अच्छी तरह से होम की गई) हुताशन (अग्नि) की तरह अपने तपस्तेज से चमकेगा, दीप्तिमान् होगा।

८. तस्स णं भगवओ अणुत्तरेणं नाणेणं एवं दंसणेणं चरित्तेणं आलएणं विहारेणं अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं खन्तीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेणं सव्वसंजमतवसुचरियफलनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणन्ते अणुत्तरे कसिणे पडिपुण्णे निरावरणे निव्वाघाए केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिइ।

[८] इसके साथ ही अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र अप्रतिबद्ध विहार, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति (निर्लोभता), सर्व संयम एवं निर्वाण की प्राप्ति जिसका फल है, ऐसे तपोमार्ग से आत्मा को भावित करते हुए, (उन भगवान् दृढ़प्रतिज्ञ को) अनन्त, अनुत्तर सकल, परिपूर्ण, निरावरण, निर्व्याघात, अप्रतिहत, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होगा।

९. तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियागं जाणिहिइ। तं जहा—आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं कडं मणोमाणसियं खइयं भुत्तं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं-अरहा अरहस्सभागी, तं तं मणवयजोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ।

[९] तब वे दृढप्रतिज्ञ भगवान् अर्हंत जिन केवली हो जाएंगे। जिसमें देव, मनुष्य तथा असुर आदि रहते हैं, ऐसे लोक की समस्त पर्यायों को वे जानेंगे। वे प्राणिमात्र की आगति – एक गति से दूसरी गति में आगमन को, गति— वर्तमान गति को छोड़कर अन्य गति में गमन को, स्थिति, च्यवन, उपपात (देव या नारक जीवों की उत्पत्ति-जन्म) तर्क (विचार), क्रिया, मनोभावों, क्षय प्राप्त (भोगे जा चुके) प्रतिसेवित (भुज्यमान भोगोपभोग की वस्तुओं), आविष्कर्म (प्रकट कार्यों), रहः कर्म (एकान्त में किए गुप्त कार्यों) प्रकट और गुप्त रूप से होने वाले उस-उस मन, वचन और काय योग में विद्यमान लोकवर्ती सभी जीवों के सर्वभावों को जानते-देखते हुए विचरण करेंगे।

१०. तए णं दढपइन्ने केवली एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता अप्पणो आउसेसं आभोएत्ता बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ। पच्चक्खाइत्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ। छेइत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुण्डभावे केसलोए बम्भचेरवासे अण्हाणगं अदन्तवणं अणुवहाणगं भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ परघरपवेसो लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइं परेसिं हीलणाओ खिसणाओ गरहणा उच्चावया विरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा गामकण्टया अहियासिज्जन्ति तमट्ठं आराहेइ। आराहित्ता चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमन्तं करेहिइ।

[१०] तत्पश्चात् वे दृढप्रतिज्ञ केवली इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए और अनेक वर्षों तक केवलि-पर्याय का पालन कर आयु के अन्त को जानकर, अनेक भक्तों—भोजनों का प्रत्याख्यान व त्याग करेंगे और अनशन द्वारा बहुत से भोजनों का छेदन करेंगे और जिस (साध्य) की सिद्धि के लिए नग्नभाव, केशलोंच, ब्रह्मचर्य धारण, स्नान का त्याग, दंतधावन का त्याग, पादुका का त्याग, भूमि पर शयन करना, काष्ठासन पर सोना, भिक्षार्थ परगृह प्रवेश, लाभ-अलाभ में सम रहना, मानापमान सहना, दूसरों के द्वारा की जाने वाली हीलना (तिरस्कार), निन्दा, खिसना (अवर्णवाद), तर्जना (धमकी), ताड़ना, गर्हा (घृणा) एवं अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार के बाईस परीषह, उपसर्ग तथा लोकापवाद (गाली-गलौच) सहन किए जाते हैं, उस साध्य—मोक्ष की साधना करके चरम श्वासोच्छ्वास में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जायेंगे, सकल कर्ममल का क्षय और समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

(राजप्रश्नीय सूत्र से उद्धृत)

व्यक्तिनाम-सूची

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झाय करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

उपर्युक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलों के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय: ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत: आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्लपक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत: आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिकशरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहां से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश: आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिकशरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

□□

श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बेताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी, सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी बोकड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी बोकड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी चेसती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री शा० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) जाड़न
११. श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९. श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूंठा
२७. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरलालजी मूलचंदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बेंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जबरचन्दजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२. श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सेलम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचंदजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बेंगलोर
४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बेंगलोर
४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कलां
६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगांव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१. श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी, बेंगलोर
९५. श्रीमती कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगांव

९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, भरतपुर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मांगलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु बड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी चोरड़िया, भैरूंदा
१११. श्री मांगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुलीचंदजी बोकड़िया, मेड़तासिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकंवरबाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढा, बम्बई
११७. श्री मांगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बेंगलोर
११८. श्री सांचालालजी बाफणा, औरंगाबाद
११९. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बेंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़ □□